॥ ॐ ॥

वेदान्त छन्दावली

सम्पूर्ण पांचों भाग

रचयिता

स्वामी भोले बाबा

भण्डारी सरदारचंदजी जैन, बुकसेलर्स
जोधपुर वालों की ओर से सादर भेंट

प्राप्ति-स्थान

देहाती पुस्तक भण्डार,
चावडी बाजार, दिल्ली-६
फोन २००३०

तीन रुपया पचास नये पैसे] [मूल्य ३-५० न पै.

अध्यक्ष—लक्ष्मीचन्द तायला

बारहवां संस्करण
अगस्त, १९६२

मूल्य तीन रुपया पचास नये पैसे

मुद्रक
कुमार फाइन आर्ट प्रेस,
चाह रहट, दिल्ली ६

आमुख

विज्ञान से चमत्कृत इस युग मे धर्म-प्रिय मानव भटकता ही रहता है। उसकी धर्म-पिपासा की निवृत्ति का स्थान कम ही दिखाई देता है। वेद, दर्शन, उपनिषद्, स्मृति आदि का अगाध-ज्ञान-भण्डार विद्यमान है परन्तु आज का व्यस्त मानव उन तक पहुचने की सामर्थ्य कहाँ रखता है। वह तो चाहता है कि धर्म के इन महान् ग्रन्थो का नवनीत कही से मिले जिससे मैं अपनी शुष्क ज्ञानपिपासा को स्निग्ध कर पाऊँ। इसके लिए वह दुरूह मार्ग का परित्याग कर सुलभ एव सरल की खोज मे रहता है। सौभाग्य-वश मानव की यह अभिलाषा कभी-कभी पूर्ण भी हो जाती है। "भोलेबाबा" महाराज जैसे तपो-धन्य, त्यागी, तपस्वी, गुरु सकल श्रुति-स्मृति के गूढ-गम्भीर ज्ञान सागर को मथ कर "वेदान्त-छन्दावली" नामक अमृत धर्म-पिपासुओ को पान के लिये देने का अनुग्रह करते हैं।

वेदान्त-छन्दावली धर्म-प्रेमी उन सज्जनो की मनोकामना को कृत-कार्य कर रही थी। यह ग्रन्थ क्या है, मानो गागर मे सागर भर दिया है, जिससे आबाल वृद्ध, नर-नारी, राजा-रक सब समान रूप से लाभ उठा सकते हैं। सरल तथा सुगम राष्ट्र-भाषा की पद्यमयी यह रचना न केवल इहलौकिक समस्याओ का अनुसन्धान है अपितु पारलौकिक समस्याओ का समाधान भी इससे अवश्यम्भावी है। इसका अध्येता न तो इस ससार मे भटक सकता है और न ही परलोक की प्राप्ति से वञ्चित रहता है।

वेदान्त छन्दावली के पाच भाग हैं। धर्म-स्नेही बन्धु सदा दु खी रहते थे। क्योकि प्रेस एव कागज़ की असुविधा-वश कभी

कोई भाग अप्राप्य हो जाता था तो कभी कोई। प्रेमी-समाज की भूख तीव्र हो जाती थी। सर्वत्र भटकने पर भी वह भूख मिटती न थी। इस कमी को यथार्थ मे अनुभव कर सत्य-प्रेमी प्रकाशको ने इन सब भागो को एक स्थान पर छपा कर तथा इन सब पुस्तको के ४५२ पृष्ठ का एक महान् ग्रन्थ के रूप मे प्रकाशित कर धर्म-जिज्ञासुओ की जिज्ञासा को शान्त किया है। अब जो भी प्रकरण देखने तथा पढने की अभिलाषा हो, सुगमता से पूर्ण की जा सकती है। एक अलभ्य एव दुष्प्राप्य ज्ञान-भण्डार अध्येताओ के हस्त-गत हो गया है। अब निराधार भटकने की सम्भावना नही रही है। धर्म-प्रेमी सज्जन प्रकाशको के इस शुभ-कार्य की सराहना किए बिना नही रह सकेंगे।

अध्येता गरण की गुरण-ग्राहिकता ही है कि यह पुस्तक अनेक भागो मे छपते ही हाथो-हाथ बिक जाती है। इस महान् ग्रन्थ के भी शीघ्र ही बिक जाने की सम्भावना है। धर्म-धारी धार्मिको के धर्म-प्रेम की धारणा का ध्यान धरते हुए यह प्रयास किया गया है। आशा है कि वे इसकी कृत-कृत्यता एव सफलता का सफल प्रमाण देंगे। जिस धारणा से यह कार्य किया गया है, भगवान् करे, वह आश्रय भी सर्वथा साशय हो।

अन्त मे कर्त्तव्य-निष्ठ, त्याग-मूर्ति, तपोधन्य, स्वनाम-धन्य स्वामी "भोलेबाबा" जी महाराज के गुणानुवाद के साथ उनका धन्यवाद करना भी कर्त्तव्य-पालन होगा, जिन्होंने सकल धर्म ग्रन्थों का सार एक सरल एव सुगम ग्रन्थ मे भर कर इस गूढ ज्ञान को सर्वगम्य कर दिया है।

ओ३म् शम्

लक्ष्मीचन्द तायला

वेदान्त छन्दावली

प्रथम भाग

— ❀ —

भण्डारी सरदारचंदजी जैन, बुकसेलर्स
जोधपुर वालों की ओर से सादर भेंट

सुखी शान्त होवो, मिटे मैल जो का।
कही भी नही चिह्न पावे दुई का॥
जहाँ देखिये दर्श हो ईश ही का।
करो पाठ वेदान्त-छन्दावली का॥

—भोला

ॐ ओ३म् श्री गुरवे नम

निवेदन

श्रुति, स्मृति, इतिहासादि का सिद्धान्त है और सन्त-महात्माओ का भी अनुभव है कि सम्यग्ज्ञान बिना सर्व प्रकार के दु खो की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष सिद्ध नही होता । पर-वैराग्य विना सम्यग्ज्ञान होना असम्भव है । तत्त्व विचार पर-वैराग्य का कारण है । आदर-सत्कार पूर्वक तत्व के निरन्तर विचार से ससार की निस्सारता, विषय भोगो की तुच्छता और सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मात्मभाव की दृढ अपरोक्षता सिद्ध होती है । वहुत से सज्जनो की अभिलाषा थी कि हिन्दी-भाषा मे पद्यरूप से कोई ऐसा वेदान्त-प्रतिपादक छोटा-सा ग्रन्थ होना चाहिए, जिसका मनन करना भाषा-प्रेमी सभी वर्ण-आश्रमो के स्त्री-पुरुषो के लिये सुलभ और बुद्धिग्राह्य हो । उन्ही सज्जनो की इच्छानुसार 'वेदान्त-छन्दावली' नामक इस छोटे-से ग्रन्थ मे तत्व का अनेक प्रकार से निरूपण किया गया है और पर-वैराग्य का स्वरूप भी दिखलाया है । आशा है कि यह छोटी-सी पुस्तक मुमुक्षुओ और सत्य के जिज्ञासुओ को उपयोगी, तत्वदर्शी विद्वानो के विनोद का कारण और हरिहर विश्वेश्वर की प्रीति का हेतु होगी ।

ओ३म् सर्वेषा शिव भूयात् ।

सकल चराचरानुचर

भोला

❀ ओ३म् ❀

पद्य-सूची प्रथम भाग

पद्य	पृष्ठ-संख्या
मङ्गलाचरण (संस्कृत)	५
हो जा अजर ! हो जा अमर !!	८
सुख से विचर !	१०
आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!	१२
प्राज्ञ-वाणी	१४
कैसे भला फिर दीन हो ?	१६
सब हानि लाभ समान है ।	१८
पुतली नही तू मास की !	२०
सर्वात्म अनुसन्धान कर !	२२
बस, आपमे लवलीन हो !	२४
छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे !	२६
बन्धन यही कहलाय है ।	२८
इच्छा बिना ही मुक्त है ।	३०
ममता अहन्ता छोड दे ।	३२
मत भोग मे आसक्त हो ।	३४
होता तुरन्त ही शान्त है ।	३६
निज आत्म मे डट जाय है ।	३८
यह ही परम पुरुषार्थ है ।	४०
ससार मे सो छुट गया ।	४२

पद्य	पृष्ठ-स
सोच का क्या काम है ?	
अद्वैत है, एकत्व है ।	
शान्ति अक्षय पायगा ।	
विरला कही पर पाय है ।	
सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है ।	
सब कर चुका ! सब धर चुका !	
भय शोक सब भग जाय है !	
उस-सा सुखी क्या अन्य है ?	
करना उसे क्या शेष है ?	
सो धीर शोभा पाय है ।	
मर से अमर हो जाय है ।	
साम्राज्य अविचल पाय है ।	
है जन्म उसका ही सफल ।	
भव-सिन्धु से सो पार है ।	
सो धन्य है सो मन्य है ।	
अवधूत किसका नाम है ?	
अवधूत की पहिचान क्या ?	
वैसा हि विरला जानता ।	

—❀—

॥ श्री ॥

ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी भोलेबाबा

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

वेदान्त-छन्दावली

— ❁ —

॥ मंगलाचरणम् ॥

निर्वासन निराकाङक्ष सर्वदोषविवर्जितम् ।
निरालम्ब निरातक ह्यवधूत नमाम्यहम् ॥१॥
निर्मम निरहकार समलोष्टाश्मकाञ्चनम् ।
समदु खसुखं धीर ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥२॥
अविनाशिनमात्मान ह्येक विज्ञाय तत्त्वत: ।
वीतरागभयक्रोध ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥३॥
नाह देहो न मे देहो जीवो नाहमह हि चित् ।
एव विज्ञान सन्तुष्टं ह्यवधूत नमाम्यहम् ॥४॥
समस्त कल्पनामात्र ह्यात्मा मुक्त. सनातन: ।
इति विज्ञाय सन्तृप्त ह्यवधूत नमाम्यहम् ॥५॥

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं कामसंकल्पवर्जितम् ।
हेयोपादेयहीनं तं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥६॥

व्यामोहमात्रविरतौ स्वरूपादानमात्रतः ।
वीतशोकं निरायासं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥७॥

आत्मा ब्रह्मेतिनिश्चित्य भावाभावौ च कल्पितौ ।
उदासीनं सुखासीन ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥८॥

स्वभावेनैव यो योगी सुख भोग न वाञ्छति ।
यदृच्छालाभसन्तुष्टं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥९॥

नैव निन्दाप्रशंसाभ्यां यस्य विक्रियते मनः ।
आत्मक्रीडं महात्मान ह्यवधूत नमाम्यहम् ॥१०॥

नित्यं जाग्रदवस्थायाँ स्वप्नवद्याऽवतिष्ठते ।
निश्चिन्तचिन्मयात्मानह्यवधूत नमाम्यहम् ॥११॥

द्वेष्यंनास्तिप्रियनास्तिनास्तियस्यशुभाशुभम् ।
भेदज्ञानविहीन त ह्यवधूत नमाम्यहम् ॥१२॥

जडं पश्यति नो यस्तु जगत्पश्यति चिन्मयम् ।
नित्ययुत्क गुणातीत ह्यवधूत नमाम्यहम् ॥१३॥

यो हि दर्शनमात्रेण पवते भुवनत्रयम् ।
पावनं जंगमं तीर्थं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥१४॥

सर्वपूज्यं सदा पूर्णं ह्यखण्डानन्दविग्रहम् ।
स्वप्रकाश चिदानन्द ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥१५॥
निष्कल निष्क्रिय शान्त निर्मल परमामृतम् ।
अनन्तं जगदाधार ह्यवधूत नमाम्यहम् ॥१६॥
सर्वाधिष्ठानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम् ।
सच्चिद नन्दरूप त ह्यवधूत नमाम्यहम् ॥१७॥
तिष्ठन्गच्छन्स्पृशञ्जिघ्रन्नपि तल्लेपवर्जितम् ।
अजड वासनाहीन ह्यवधूत नम.म्यहम् ॥१८॥
विशेष सम्परित्यज्य सन्मात्रं यदलेपकम् ।
एकरूप महारूप ह्यवधूत नमाम्यहम् ॥१९॥
आभासमात्रमेवेद न सन्नासज्जगत्त्रयम् ।
इत्यन्यकलनाहीन ह्यवधूत नमाम्यहम् ॥२०॥
दिक्कालाद्यनवच्छिन्न स्वच्छ नित्योदित ततम् ।
सर्वार्थमयमेकार्थं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥२१॥

हो जा अजर ! हो जा अमर !!

(१)

जो मोक्ष है तू चाहता, विष सम विषय तज तात रे !
आर्जव क्षमा संतोष शम दम पी सुधा दिन रात रे !!
ससार जलता आग है, इस आग से झट भाग कर !
आ शान्त शीतल देश मे, हो जा अजर ! हो जा अमर !!

(२)

पृथिवी नही, जल भी नही, नहि अग्नि तू नहि है पवन।
आकाश भी तू है नही, तू नित्य है चैतन्यघन ॥
इन पाँच का साक्षी सदा, निर्लेप है तू सर्वपर।
निज रूपको पहिचानकर, हो जा अजर ! हो जा अमर !!

(३)

चैतन्यको कर भिन्न तन से, शांति सम्यक् पायगा।
होगा तुरत ही तू सुखी, संसारसे छुट जायगा ॥
आश्रम तथा वर्णादिका, किञ्चित् न तू अभिमानकर।
सम्बन्ध तज दे देह से, हो जा अजर ! हो जा अमर !!

(४)

नहि धर्म है न अधर्म तुझमे दुख-सुख भी लेश ना।
हैं ये सभी अज्ञानमे कर्तापना, भोक्तापना ॥
तू एक द्रष्टा सर्वका, इस दृश्य से है दूरतर।
पहिचान अपने आपको, हो जा अजर ! हो जा अमर !!

(५)

कर्तृत्वके अभिमान काले सर्प से है तू डसा।
नहिं जानता है आपको, भव-पाश में इससे फँसा॥
कर्त्ता न तू तिहुँ काल मे, श्रद्धा सुधा का पान कर।
पीकर उसे हो जा सुखी, हो जा अजर हो जा अमर॥

(६)

मैं शुद्ध हूं मैं बुद्ध हूं ज्ञानाग्नि ऐसी ले जला।
मत पाप, मत संताप कर, अज्ञान वन को दे जला॥
ज्यो सर्प रस्सी माँहि जिसमे भासता ब्रह्माण्डभर।
सो बोध सुख तू आप है, हो जा अजर! हो जा अमर!!

(७)

अभिमान रखता मुक्ति का, सो धीर निश्चय मुक्त है।
अभिमान करता बन्ध का, सो मूढ बन्धन युक्त है॥
'जैसी मती' वैसी गती, लोकोक्ति यह सच मानकर।
भव-बन्ध से निर्मुक्त हो, हो जा अजर! हो जा अमर!!

(८)

आत्मा अमल, साक्षी अचल, विभु, पूर्ण शाश्वत मुक्त है।
चेतन असंगी निरीही, शुचि, शान्त अच्युत तृप्त है॥
निज रूप के अज्ञान से, जन्मा करे फिर जाय मर।
भोला! स्वयं को जानकर, हो जा अजर! हो जा अमर!!

सुख से विचर !

(१)

'कूटस्थ हू' अद्वैत हूं, मैं बोध हूँ मै नित्य हूं।
अक्षय तथा निस्संग आत्मा, एक शाश्वत सत्य हूँ ॥
नहिं देह हूँ, नहिं इन्द्रियां हूँ, स्वच्छ से भी स्वच्छतर।
ऐसो किया कर भावना, निःशोक हो सुख से विचर ॥

(२)

'मैं देह हू' फाँसी महा, इस पास में जकडा गया।
चिरकाल तक फिरता रहा जन्मा किया फिर मर गया ॥
मैं बोध हू ज्ञानास्त्र ले अज्ञान का दे काट सर।
स्वच्छन्द हो, निर्द्वन्द्व हो, आनन्द कर सुख से विचर ॥

(३)

निष्क्रिय सदा निस्सग तू कर्ता नही भोक्ता नहीं।
निर्भय निरञ्जन है अचल, आता नही जाता नही ॥
मत राग कर मत द्वेषकर, चिन्ता रहित हो जा निडर।
आशा किसी की क्यो करे, संतृप्त हो सुख से विचर !!

(४)

यह विश्व तुझ से व्याप्त है, तू विश्व में भरपूर है।
तू वार है, तू पार है, तू पास है तू दूर है ॥
उत्तर तुही दक्षिण तुही, तू है इधर तू है उधर।
दे त्याग मन की क्षुद्रता, निःशँक हो सुख से विचर !!

(५)

'निरपेक्ष द्रष्टा सर्वका, इस दृश्य से तू अन्य है।
अक्षुब्ध है, चिन्मात्र है, सुख-सिन्धु-पूर्ण, अनन्य है ॥
छः उर्मियों से है रहित, मरता नही तू है अमर, ।
ऐसी किया कर भावना, निर्भय सदा सुखसे विचर !!

(६)

आकार मिथ्या जान सब, 'आकार विनु तू है अचल ।
जीवन मरण है कल्पना, तू एकरस निर्मल अटल ॥
ज्यो जेवरी मे सर्प त्यो अध्यस्त तुझमे चर अचर' ।
ऐसी क्रिया कर भावना. निश्चिन्त हो सुख से विचर !!

(७)

दर्पण धरें जब सामने, तब ग्राम उसमे भासता ।
दर्पण हटा लेने जभी, तब ग्राम होता लापता ॥
ज्यो ग्राम दर्पण माहिं, तुझमे विश्व त्यो आता नजर ।
संसार को मत देख, निजको देख तू, सुखसे विचर !!

(८)

आकाश घटके बाह्य है, आकाश घट भीतर बसा ।
सब विश्वमे है पूर्ण, तू ही बाह्य भीतर एकसा ॥
श्रुति, सन्त गुरुके वाक्य ये, सच मान रे विश्वास कर ।
भोला ! निकल जग-जाल से, निर्बन्ध हो सुखसे विचर !!

सुख से विचर !

(१)

"कूटस्थ हूं" अद्वैत हू, मैं बोध हूं मैं नित्य हूं।
अक्षय तथा निस्संग आत्मा, एक शाश्वत सत्य हूं॥
नहिं देह हूं, नहिं इन्द्रियां हूं, स्वच्छ से भी स्वच्छतर।
ऐसो किया कर भावना, नि.शोक हो सुख से विचर॥

(२)

'मैं देह हूं' फाँसी महा, इस पास में जकडा गया।
चिरकाल तक फिरता रहा जन्मा किया फिर मर गया॥
मै बोध हू ज्ञानास्त्र ले अज्ञान का दे काट सर।
स्वच्छन्द हो, निर्द्वन्द्व हो, आनन्द कर सुख से विचर॥

(३)

निष्क्रिय सदा निस्सग तू कर्ता नही भोक्ता नहीं।
निर्भय निरञ्जन है अचल, आता नही जाता नही॥
मत राग कर मत द्वेषकर, चिन्ता रहित हो जा निडर।
आशा किसी की क्यो करे, संतृप्त हो सुख से विचर!!

(४)

यह विश्व तुझ से व्याप्त है, तू विश्व में भरपूर है।
तू वार है, तू पार है, तू पास है तू दूर है॥
उत्तर तुही दक्षिण तुही, तू है इधर तू है उधर।
दे त्याग मन की क्षुद्रता, नि.शँक हो सुख से विचर!!

(५)

'निरपेक्ष द्रष्टा सर्वका, इस दृश्य से तू अन्य है।
अक्षुब्ध है, चिन्मात्र है, सुख-सिन्धु-पूर्ण, अनन्य है ॥
छः उर्मियों से है रहित, मरता नही तू है अमर, ।
ऐसी किया कर भावना, निर्भय सदा सुखसे विचर !!

(६)

आकार मिथ्या जान सब, 'आकार बिनु तू है अचल ।
जीवन मरण है कल्पना, तू एकरस निर्मल अटल ॥
ज्यो जेवरी मे सर्प त्यो अध्यस्त तुझमे चर अचर ।
ऐसी किया कर भावना. निश्चिन्त हो सुख से विचर !!

(७)

दर्पण धरें जब सामने, तब ग्राम उसमे भासता ।
दर्पण हटा लेते जभी, तब ग्राम होता लापता ॥
ज्यो ग्राम दर्पण माहि, तुझमे विश्व त्यो आता नजर ।
ससार को मत देख, निजको देख तू, सुखसे विचर !!

(८)

आकाश घटके बाह्य है, आकाश घट भीतर बसा ।
सब विश्वमे है पूर्ण, तू ही बाह्य भीतर एकसा ॥
श्रुति, सन्त गुरुके वाक्य ये, सच मान रे विश्वास कर ।
भोला ! निकल जग-जाल से, निर्बन्ध हो सुखसे विचर !!

आश्चर्य है ? आश्चर्य है ??

(१)

छूता नहीं मैं देह फिर भी देह तीनों धारता ।
रचना करूं मै विश्वकी, नहिं विश्व से, कुछ वासता ॥
कर्तार हूँ मै सर्वका, यह सर्व मेरा कार्य है ।
फिर भी न मुझमें सर्व है, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

(२)

नहिं ज्ञान, ज्ञाता ज्ञेय मे से एक भी है वास्तविक ।
मैं एक केवल सत्य हूं, ज्ञानादि तीनों काल्पनिक ॥
अज्ञानसे जिस माहिं भासे ज्ञान, ज्ञाता ज्ञेय है ।
सो मैं निरञ्जन देव हूं, आश्चर्य है ! आश्चर्य है ॥

(३)

है दुःख सारा द्वैत में, कोई नही उसकी दवा ।
यह दृश्य सारा है मृषा, फिर द्वैत कैसा वाह ! वा !!
चिन्मात्र हूं मैं एकरस, मम कल्पना यह दृश्य है !
मैं कल्पना से बाह्य हूँ, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

(४)

नहिं बन्ध है नहिं मोक्ष है, मुझमे न किञ्चित् भ्रान्ति है ।
माया नहीं काया नही, परिपूर्ण अक्षत शान्ति है ॥
मम कल्पना है शिष्य मेरी कल्पना आचार्य है ।
साक्षी स्वयं हूँ सिद्ध मै, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

(५)

सशरीर सारे विश्व की, किञ्चित् नहीं सम्भावना ।
शुद्धात्म मुझ चिन्मात्र मे, बनती नहीं है कल्पना ।।
तिहु काल, तीनों लोक, चौदह भुवन माया-कार्य है ।
चिन्मात्र मैं निस्सग हू, आश्चर्य है । आश्चर्य है ।।

(६)

रहता जनो मे द्वैत का फिर भी न मुझमें नाम है ।
दंगल मुझे जगल जचे फिर प्रीति का क्या काम है ।।
'मै देह हूं', जो मानता, सो प्रीति करि दुख पाय है ।
चिन्मात्र मे भी सग हो, आश्चर्य है आश्चर्य है ।।

(७)

नहि देह मैं नहि जीव मैं, चैतन्यघन मैं शुद्ध हूं ।
बन्धन यही मुझ माहि था, थी चाह मैं जीता रहू ।।
ब्रह्माण्डरूपी लहर उठ-उठ कर बिला फिर जाय है ।
परिपूर्ण मुझ सुख सिधु मे, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

(८)

निस्सीम मुझ चित्सिधु मैं जब मन-पवन हो जाय लय ।
व्यापार लय हो जीव का, जग नाव भी होवे विलय ।।
इस भाँति से करके मनन, नर प्राज्ञ चुप हो जाय है ।
भोला ! न अब तक चुप हुआ, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

प्राज्ञ-वाणी

(१)

मैं हू निरञ्जन शान्त निर्मल, बोध माया से परे।
हू कालका भी काल मैं, मन बुद्धि काया से परे ॥
मैं तत्व अपना भूल कर, व्यामोह में था पड़ गया।
श्रुति, सन्त, गुरु ईश्वर कृपा, अब मुक्त बन्धन से भया ॥

(२)

जैसे प्रकाशूं देह मैं, त्योही प्रकाशूं विश्व सब।
हूँ इसलिये मै विश्व सब, अथवा नही हू विश्व अब ॥
सशरीर सारे विश्व का है, त्याग मैंने कर दिया।
सब ठौर मै ही दीखता हूं, ब्रह्म केवल नित नया ॥

(३)

जैसे तरंगे झाग बुद्बुद्, सिन्धु से नहि भिन्न कुछ।
मुझ आत्म से उत्पन्न जग, मुझमें नही है अन्य कुछ ॥
ज्यों तन्तुओ से भिन्न पटकी है नही सत्ता कही।
मुझ आत्मसे इस विश्व की, त्यो भिन्न सत्ता है नहीं ॥

(४)

ज्यो ईख के रस माँहि शक्कर व्यापत होकर पूर्ण है।
आनन्दघन मुझ आत्म से सब विश्व त्यो परिपूर्ण है ॥
अज्ञान से ज्यो रज्जु अहि हो ज्ञान से हट जाय है।
अज्ञान निज से जग बना, निज ज्ञान से मिट जाय है ॥

(५)

जब है प्रकाशक तत्व मम तो क्यो न होउ प्रकाश मैं।
जब विश्वभर को भासता, तो आप भी हू भास ं।
ज्यो सीप मे चाँदी मृषा मरुभूमि मे पानी यथा ॥
अज्ञान से कल्पा हुआ, यह विश्व मुझमे है तथा ॥

(६)

ज्यो मृत्तिका से घट बने, फिर मृत्तिका मे होय लय ।
उठती यथा जल से तरगे, होय फिर जल मे विलय ॥
ककरण, कटक बनते कनक से, लय कनक मे हो यथा ।
मुझसे निकल कर विश्व यह मुझमाहि लय होता तथा ॥

(७)

होवे प्रलय इस विश्व का मुझको न कुछ भी त्रास है :
ब्रह्मादि सवका नाश हो मेरा न होता नाश है ॥
मै सत्य हू मै ज्ञान हू मै ब्रह्मदेव अनन्त हूं ।
कैसे भला हो भय मुझे निर्भय सदा निश्चिन्त हूँ ॥

(८)

आश्चर्य है, आश्चर्य है, मै देह वाला हूँ यदपि ।
आता न जाता हू कही, भूमा अचल हूं मै तदपि ॥
सुन प्राज्ञ वाणी चित्त दे, निज रूप मे अब जागजा ।
भोला ! प्रमादी मत बने, भव जेल से उठ भागजा ॥

कैसे भला फिर दीन हो!

(1)

ज्यों सीप की चाँदी लुभाती, सीप के जाने बिना।
त्यों ही विषय सुखकर लगे हैं, आत्म पहिचाने बिना॥
अज, अमर, आत्मा जानकर, जो आत्म में तल्लीन हो।
सब रस विरस लगते उसे, कैसे भला फिर दीन हो॥

(2)

सुन्दर परम आनन्दघन, निज आत्म जो नहिं जानता।
आसक्त होकर भोग में, सो मूढ हो सुख मानता॥
ज्यों सिंधु में से लहर, जिसमें विश्व उपजे लीन हो।
'मैं हूं वही' जो जानता, कैसे भला फिर दीन हो॥

(3)

सब प्राणियों में आपको, सब प्राणियों को आप में।
जो प्राज्ञ मुनि है जानता, कैसे फंसे फिर पाप मे॥
अक्षय सुधा के पान में, जिस सन्त का मन लीन हो।
क्यो कामवश सो हो विकल, कैसे भला फिर दीन हो॥

(4)

है काम वैरी ज्ञान का, बलवान के बल को हरे।
नर धीर ऐसा जान कर, क्यों भोग की इच्छा करे॥
जो आज है कल ना रहे, प्रत्येक क्षण ही क्षीण हो।
ऐसे विनश्वर भोग में कैसे भला फिर दीन हो॥

(५)

तत्त्वज्ञ विषय न भोगता, ना खेद मन में मानता।
निज आत्म केवल देखता, सुख दुःख सम है जानता॥
करता हुआ भी नहिं करे, सशरीर भी तनहीन हो।
निन्दा प्रशंसा सम जिसे, कैसे भला फिर दीन हो ?

(६)

सब विश्व मायामात्र हैं, ऐसा जिसे विश्वास है।
सो मृत्यु सम्मुख देख कर, लाता न मन मे त्रास है॥
नहिं आश जाने की जिसे हो त्रास मरने की न हो।
हो तृप्त अपने आप मे, कैसे भला फिर दीन हो ?

(७)

नहिंग्राह्य कुछ नहिं त्याज्य कुछ, अच्छा बुरा नहिं है कहीं।
यह विश्व है सब कल्पना, बनता बिगडता कुछ नहीं॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, क्यो अन्य के स्वाधीन हो।
सन्तुष्ट नर निर्द्वन्द्व सा, कैसे भला फिर दीन हो ?

(८)

श्रुति सन्त सब ही कह रहे, ब्रह्मादि गुरु सिखला रहें।
श्रीकृष्ण भी बतला रहे, शुक आदि मुनि दिखला रहे॥
सुखसिन्धु अपने पास है, सुखसिन्धु-जल की मीन हो।
भोला ! लगा डुबकी सदा, मत हो दुःखी, मत दीन हो ?

सब हानि-लाभ समान है !

(१)

संसार कल्पित मानता, नहिं भोग में अनुरागता।
सम्पत्ति पा नहिं हर्षता, आपत्ति से नहिं भागता॥
निज आत्म मे संतृप्त है, नहिं देह का अभिमान है।
ऐसे विवेकी के लिये, सब हानि-लाभ समान है !

(२)

संसारवाही बैल सम, दिनरात बोझा ढोय है।
त्यागी तमाशा देखता, सुखसे जगे है सोय है॥
समचित्त है, स्थिरबुद्ध, केवल आत्म-अनुसन्धान है।
तत्त्वज्ञ ऐसे धीरको सब हानि-लाभ समान है !

(३)

इन्द्रादि जिस पदके लिये, करते सदा ही चाहना।
उस आत्मपदको पायके, योगी हुआ निर्वासना॥
है शोक कारण राग, कारण रागका अज्ञान है।
अज्ञान जब जाता रहा, सब हानि-लाभ समान है !

(४)

आकाश से ज्यों धूम का, सम्बन्ध होता है नहीं।
त्यो पुण्य अथवा पाप को तत्त्वज्ञ छूता है नही॥
आकाश सम निर्लेप जो, चैतन्यघन प्रज्ञान है।
ऐसे असगी प्राज्ञको, सब हानि-लाभ समान है !

[५]

यह विश्व सब है आत्म ही इस भाति से जो जानता।
यश वेद उसका गा रहे, प्रारब्धवश वह वर्तता॥
ऐसे विवेकी सन्त को न निषेध है, न विधान है।
सुख-दुःख दोनों एक से, सब हानि लाभ समान है !

[६]

सुर, नर, असुर, पशु आदि जितने जीव हैं ससार में।
इच्छा अनिच्छा वश हुए सब लिप्त है व्यवहार मे॥
इच्छा अनिच्छा से छुटा बस एक सन्त सुजान है।
उस सन्त निर्मल चित्त को, सब हानि-लाभ समान है !

[७]

विश्वेश अद्वय आत्म को, विरला जगत मे जानता।
जगदीश को जो जानता, नहिं भय किसी से मानता॥
ब्रह्माण्डभरको प्यार करता, विश्व जिसका प्राण है।
उस विश्व-प्यारे के लिए, सब हानि-लाभ समान है !

[८]

कोई न उसका शत्रु है, कोई न उसका मित्र है।
कल्याण सबका चाहता है, सर्व का सन्मित्र है॥
सब देश उसको एक-से, बस्ती भले सुनसान है।
भोला ! उसे फिर भय कहाँ, सब हानि-लाभ समान है !

पुतली नहीं तू मांस की !

[१]

जहँ विश्व-लय हो जाय, तहँ भ्रम-भेद सब बह जाय है।
अद्वय स्वयं हो सिद्ध केवल एक ही रह जाय है।।
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नही तू मांस की !
नहिं वीर्य तू, नहिं रक्त तू नहिं धोंकनी तू सास की ।।

[२]

जहँ हो अहन्ता लीन, तहँ रहता नहीं जीवत्व है।
अक्षय निरामय शुद्ध संवित्, शेष रहता तत्त्व है।।
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नही तू मांस की !
नहिं जन्म तुझमे नहिं मरण, नही पोल है आकाशकी ।।

[३]

दिक्काल जहँ नहि भासते, होता जहां नहिं शून्य है।
सच्चित् तथा आनन्द आत्मा भासता परिपूर्ण है।।
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नही तू मांस की !
नहिं त्याग तुझ मे नहिं ग्रहण,नहिं गाठ है अध्यासकी ।।

[५]

चेष्टा नहीं, जड़ता नही,नहिं आवरण,नहिं तम जहां ।।
अव्यय अखण्डित ज्योति शाश्वत जगमगाती सम जहां।।
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नही तू मांस की !
कैसे तुझे फिर बन्ध हो, नहिं मूर्ति तू आभास की ।।

(५)

जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, नहिं व्योम पंचक है जहां ।
परसे परे ध्रुव शात शिव ही नित्य भासे हैं वहां ॥
सो ब्रह्म है, तू है वही, 'पुतली नही तू मास की !
गुण तीन से तू है परे, चिन्ता नही तुझे नाश की ?

(६)

जो ज्योतियो का ज्योति है, सबसे प्रथम जो भासता ।
अक्षर सनातन दिव्य दीपक सर्व विश्व प्रकाशता ॥
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नही तू मास की ।
तुझको प्रकाशे कौन, तू है दिव्य मूर्ति प्रकाश की ॥

(७)

शंका जहा उठती नही, किंचित् जहाँ न विकार है ।
आनन्द अक्षय से भरा, नित ही नया भडार है ॥
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नही तूं मास की ।
फिर शोक तुझमे हो कहा, तू है अवधि संन्यास की ॥

(८)

जिस तत्त्व को प्राप्त परदा मोहका फट जाय है ।
जल जाय हैं सब कर्म, चिज्जड-ग्रन्थि जड कट जाय है ॥
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नही तू मांस की ।
भोला ! स्वय हो तृप्त, सुतली काट दे भव-पाश की ।

सर्वात्म अनुसन्धान कर !

(१)

मायारचित यह देह है, मायारचित ही गेह है ।
आसक्ति फांसी है कड़ी, मजबूत रस्सी स्नेह है ॥
भय भेद में है सर्वदा, मत भेद पर तू ध्यान धर !
सर्वत्र आत्मा देख तू सर्वात्म अनुसन्धान कर !!

(२)

माया महा है मोहिनी, बन्धन-अमंगल-कारिणी ।
व्यामोह-कारिणी, शोकदा, आनन्द-मंगल हारिणी ॥
माया मरी को मार दे, मत देह में अभिमान कर !
दे भेद मनसे मेट सब, सर्वात्म अनुसन्धान कर !!

(३)

जो ब्रह्म सब में देखते हैं, ध्यान धरते ब्रह्मका ।
भव जाल से है छूटते, साक्षात् करे हैं ब्रह्म का ॥
नर मूढ़ पाता क्लेश है, अपना पराया मानकर !
ममता अहंता त्याग दे, सर्वात्म अनुसन्धान कर !!

(४)

वैरी भयंकर है विषय, कीड़ा न बन तू भोग का ।
चंचलपना मनका मिटा, अभ्यास करके योग का ॥
यह चित्त होता मुक्त है, 'सब ब्रह्म है' यह जानकर !
कर दर्श सबमें ब्रह्म का, सर्वात्म अनुसन्धान कर !!

(५)

जब नाश होता चित्तका, योगी महा फल पाय है।
ज्यों पूर्ण शशि है शोभता, सब विश्व में भर जाय है ।।
चिन्मात्र संवित् शुद्ध जलमें, नित्य ही तू स्नान कर !
मन मैल सारा डाल धो, सर्वात्म अनुसन्धान कर !!

(६)

जो दीखता, होता स्मरण, जो कुछ श्रवण में आय है।
मिथ्या नदी मरु भूमि की है मूढ़ धोखा खाय है ।।
धोखा न खा, सुखपूर्ण आत्म-सिन्धुका जल पान कर।
प्यासा न मर, पीयूष पी, सर्वात्म अनुसन्धान कर।

(७)

ममतारहित, निर्द्वन्द्व हो, भ्रम-भेद सारे दे हटा।
मत राग कर, मत द्वेष कर, सब दोष मन के दे मिटा ।।
निर्मूल करदे वासना, निज आत्म का कल्याण कर।
भाडा दुई का फोड दे, सर्वात्म अनुसन्धान कर ।।

(८)

देहान्त होती बुद्धि जब, धन मित्र सुत हो जायँ हैं।
ब्रह्मात्म होती दृष्टि जब, धन आदि सब खो जायँ हैं ।।
मल-मूत्र के भण्डार नश्वर देह को पहचान कर।
भोला ! प्रमादी मत बने, सर्वात्म अनुसन्धान कर ।।

बस, आपमें लवलीन हो।

[१]

तू शुद्ध है, तेरा किसी से लेश भी नहीं संग है।
क्या त्यागना तू चाहता ? चिन्मात्र तू निस्संग है॥
निस्संग निजको जान ले, मत हो दुखी मत दीन हो।
इस देह से तज संग दे, बस, आप में लवलीन हो ?

[२]

जैसे तरंगे बुलबुले, झागादि बनते सिन्धु से।
त्यों ही चराचर विश्व बनता एक तुझ चित्सिन्धु से॥
तू सिन्धु-सम है एक सा, नहिं जीर्ण हो ने नवीन हो।
अपना पराया भेद तज, बस आपमें लवलीन हो ?

[३]

अपरोक्ष यद्यपि दीखता, नहिं वस्तुतः संसार है।
तुझ शुद्ध निर्मल तत्व में, सम्भव न कुछ व्यापार है॥
ज्यों सर्प रस्सी का बना, फिर रज्जु में ही लीन हो।
सब विश्व लय कर आपमे, बस, आप मे लवलीन हो॥

[४]

सुख-दुःख दोनों जान सम, आशा निराशा एक-स
जीवन-मरण भी एक-सा, निन्दा प्रसंशा एक-सी॥
हर हाल में खुशहाल रह, निर्द्वन्द्व चिन्ता हीन हो।
मत ध्यान कर तू अन्य का, बस, आपमें लवलीन हो ?

(५)

भूमा अचल, शाश्वत अमल सम, ठोस है तू सर्वदा ।
यह देह है पोला घडा, बनता बिगडता है सदा ॥
निर्लेप रह जल विश्व में, मत विश्व जल की मीन हो ।
अनुरक्त मत हो देह में, बस आपमें लवलीन हो ॥

[६]

यह विश्व लहरो के सदृश, तू सिधु ज्यो गम्भीर है ।
बनते विगडते विश्व हैं, तू नित्य निश्चल ही रहे ॥
मत विश्व से सम्बन्ध रख, मत भोग के आधीन हो ।
नित आत्म अनुसधान कर, बस आपमे लवलीन हो ॥

(७]

तू सीप सच्ची वस्तु है, यह विश्व चाँदी है मृषा ।
तू वस्तु सच्ची रज्जु है, यह विश्व आहिनी है मृषा ॥
इसमे नही सदेह कुछ, प्यारे ! न श्रद्धाहीन हो ।
विश्वास कर, विश्वास कर, बस आप मे लवलीन हो ॥

[८]

सब भूत तेरे माहिं हैं, तू सर्व भूतो माहि है ।
तू सूत्र सब मे पूर्ण है, तेरे सिवा कुछ नाहिं है ॥
यदि हो न सत्ता एक तो, फिर चर अचर कुछ भी न हो ।
भोला ! यही सिद्धान्त है, बस आपमे लवलीन हो ॥

छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे ?

[१]

अक्षुब्ध मुझ अम्बोधिमे ये विश्व नावें चल रही।
मन वायु की प्रेरी हुई, मुझ सिंधु में हलचल नही ॥
मन वायु से मै हूं परे, हिलता नही मन वायु से।
कूटस्थ ध्रुव अक्षोभ हूं, छोड़ूँ किसे ? पकड़ूँ किसे ?

[२]

निस्सीम मुझ सुख सिंधु में जग-बीचियां उठती रहे।
बढ़ती रहे घटती रहें, बनती रहें मिटती रहे।
अव्यय, रहित उत्पति से हू, वृद्धि से अरु अस्तसे।
निश्चल सदा ही एक सा, छोड़ूँ ? किसे पकड़ूं किसे ?

[३]

अध्यक्ष हूं मै विश्व का, यह विश्व मुझमें कल्पना।
कल्पे हुए से सत्य को, होती कभी कुछ हानि ना ॥
अति शान्त बिन आकार हूं, पर रूप से पर नाम से।
अद्वय अनामयतत्त्व मैं, छोड़ूं किसे ? पकड़ूं किसे ?

(४]

देहादि नहिं हैं आत्म में, नहिं आत्म है देहादि में।
आत्मा निरञ्जन एक-सा है, अन्त मे क्या आदि मे ॥
निस्संग अच्युत निस्पृही, अति दूर सर्वोपाधि से।
सो आत्म अपना आप है, छोड़ूं किसे ? पकड़ूँ किसे ?

(५)

चिन्मात्र मै ही सत्य हू, यह विश्व बध्यापुत्र है।
नहिं वांझ सुत जनती कभी, तब विश्व कहने मात्र है॥
ज। विश्व कुछ है ही नही,सम्बन्ध क्या फिर विश्व से।
सम्बन्ध ही जब है नही, छोड़ू किसे ? पकड़ू किसे ?

(६)

नहिं देह मैं, नहिं इन्द्रियाँ, मन भी नही नहिं, प्राण हू।
नहिं चित्त हूं. नहिं बुद्धि हूं, नहिं जीव, नहिं विज्ञान हूं॥
कर्त्ता नहिं भोक्ता नही, निर्मुक्त हू मैं कर्म से।
निरुपाधि सवित् शुद्ध हूँ, छोड़ू किसे पकड़ू किसे॥

(७)

है देह मुझमे दीखता, पर देह मुझमे है नही।
द्रष्टा कभी नहिं दृश्य से, परमार्थ से मिलता कही॥
नहिं त्याज्य हू नहिं ग्राह्य हू, पर हू ग्रहण से त्याग से।
अक्षर परम आनन्दघन छोड़ू किसे ? पकड़ू किसे ?

(८)

अज्ञान मे रहते सभी, कर्तापना भोक्तापना।
चिद्रूप मुझमें लेश भी, सम्भव नही है कल्पना॥
यों स्वात्म अनुसधान कर, छूटे चतुर भवबन्ध से।
भोला ! न अब सकोच कर छोड़ूं किसे पकड़ूं किसे ?

बन्धन यही कहलाय है।

(१)

'मै' 'तू' नही पहचानना, विषयी विषय नहि जानना।
आत्मा अनात्मा मानना, निज अन्य नहिं पहिचानना॥
चेतन अचेतन जानना, अति पाप माना जाय है।
सन्ताप यह ही देय है, बन्धन यही कहलाय है॥

(२)

क्या ईश है ? क्या जीव हैं ? यह विश्व कैसे बन गया ?
पावन परम निस्संग आत्मा, संग में क्यो सन गया॥
सुख-सिन्धु आत्मा एक रस, सो दुःख कैसे पाय है ?
कारण न इसका जानना बन्धन यही कहलाय है॥

(३)

इस देह को 'मैं' मानना, या इन्द्रियाँ 'मैं' जानना।
अभिमान करना चित्त मे, या बुद्धि 'मैं' पहचानना॥
देहादिके अभिमान से, नर मूढ़ दुःख उठाय है।
बहु योनियों मे जन्मता, बन्धन यही कहलाय है॥

(४)

बेड़ी कठिन है कामना, आसक्ति दृढतम जाल है।
ममता भयंकर राक्षसी, संकल्प काल व्याल है॥
इन शत्रुओं के वश हुआ, जन्मे मरे पछताय है।
सुख से कभी सोता नही, बन्धन यही कहलाय है॥

(५)

यह है भला यह है बुरा यह पुण्य है यह पाप है।
यह लाभ है यह हानि हैं यह शीत है यह ताप है॥
यह ग्राह्य है यह त्याज्य है यह आय है यह जाय है।
इस भांति मन की कल्पना, वन्दन यही कहलाय है॥

(६)

श्रोतादिको 'मैं' मान नर, शब्दादि मे फस जाय है।
अनुकूल मे सुख मानता, प्रतिकूल से दुख पाय है॥
पाकर विषय है हर्षता, नहिं पाय तब घबराय है।
आसक्त होना भोग में, वन्धन यही कहलाय है।

(७)

सत्सग मे जाता नही, नहिं वेद आज्ञा मानता।
सुनता न हित उपदेश, अपनी तान उल्टी तानता॥
शिष्टाचरण करता नही, दुष्टाचरण हो भाय है।
कहते इसे हैं मूढता, बन्धन यही कहलाय है॥

(८)

यह चित जब तक चाहता, या विश्व मे है दौड़ता।
करता किसी को है ग्रहण, अथवा किसी को छोडता॥
सुख पाय के है हर्षता, दु ख देखकर सकुचाय हैं।
भोला! न तब तक मोक्ष हो, बन्धन यही कहलाय है॥

बन्धन यही कहलाय है।

(१)

'मै' 'तू' नही पहचानना, विषयी विषय नहि जानना।
आत्मा अनात्मा मानना, निज अन्य नहिं पहिचानना॥
चेतन अचेतन जानना, अति पाप माना जाय है।
सन्ताप यह ही देय है, बन्धन यही कहलाय है॥

(२)

क्या ईश है ? क्या जीव हैं ? यह विश्व कैसे बन गया ?
पावन परम निस्संग आत्मा, सग मे क्यो सन गया॥
सुख-सिन्धु आत्मा एक रस, सो दु.ख कैसे पाय है ?
कारण न इसका जानना बन्धन यही कहलाय है॥

(३)

इस देह को 'मै' मानना, या इन्द्रियाँ 'मैं' जानना।
अभिमान करना चित्त में, या बुद्धि 'मैं' पहचानना॥
देहादिके अभिमान से, नर मूढ़ दु:ख उठाय है।
बहु योनियों मे जन्मता, बन्धन यही कहलाय है॥

(४)

बेड़ी कठिन है कामना, आसक्ति दृढ़तम जाल है।
ममता भयंकर राक्षसी, संकल्प काल ब्याल है॥
इन शत्रुओं के वश हुआ, जन्मे मरे पछताय है।
सुख से कभी सोता नहीं, बन्धन यही कहलाय है॥

(५)

यह है भला यह है बुरा यह पुण्य है यह पाप है ।
यह लाभ है यह हानि हैं यह शीत है यह ताप है ।।
यह ग्राह्य है यह त्याज्य है यह आय है यह जाय है ।
इस भाति मन की कल्पना, बन्दन यही कहलाय है ।।

(६)

श्रोतादिको 'मैं' मान नर, शब्दादि मे फस जाय है ।
अनुकूल में सुख मानता, प्रतिकूल से दुख पाय है ।।
पाकर विषय है हर्षता, नहिं पाय तब घबराय है ।
आसक्त होना भोग में, बन्धन यही कहलाय है ।

(७)

सत्सग में जाता नही, नहिं वेद आज्ञा मानता ।
सुनता न हित उपदेश, अपनी तान उल्टी तानता ।।
शिष्टाचरण करता नही, दुष्टाचरण ही भाय है ।
कहते इसे हैं मूढ़ता, बन्धन यही कहलाय है ।।

(८)

यह चित जब तक चाहता, या विश्व मे है दौड़ता ।
करता किसी को है ग्रहण, अथवा किसी को छोडता ।।
सुख पाय के है हर्षता, दु ख देखकर सकुचाय हैं ।
भोला ! न तब तक मोक्ष हो, बन्धन यही कहलाय है ।।

इच्छा विना ही मुक्त है।

(१)

ममता नही सुतदार में, नहिं देह मे अभिमान है।
निन्दा प्रशसा एक सो, सम मान अरु अपमान है॥
जो भोग आते भोगता, होता न विषयाशक्त है।
निर्वासना निर्द्वन्द्व सो, इच्छा बिना हो मुक्त है।

(२)

सब विश्व अपना जानता, या कुछ न अपना मानता।
क्या मित्र हो क्या शत्रु, सबको एक सम सन्मानता॥
सब विश्व का है भक्त जो,सब विश्व जिसका भक्त है।
निर्हेतु सबका सुहृद सो, इच्छा बिना ही मुक्त है॥

(३)

रहता सभी के संग पर, करता न किञ्चित् संग है।
है रंग पक्के मे रंगा, चढ़ता न कच्चा रंग है॥
है आपमें संलग्न, अपने आपमें अनुरक्त है।
है आपमे संतुष्ट, सो इच्छा बिना ही मुक्त है॥

(४)

सुन्दर कथाएँ जानता, देता घने दृष्टाँत है।
देता दिखाई भ्रांत-सा, भीतर परम ही शांत है॥
नहिं राग है, नहिं द्वेष है, सब दोष से निर्मुक्त है।
करता सभी को प्यार सो, इच्छा बिना हो मुक्त है॥

(५)

नहिं दुखसे घबराय है, सुखकी जिसे नहिं चाह है।
सन्मार्गमे विचरे सदा, चलता न खोटी राह है॥
पावन परम अंतकरण, गम्भीर धीर विरक्त है।
शम दम क्षमासे युक्त सो, इच्छा विना ही मुक्त है॥

(६)

जीवन जिसे रुचता नही, नहिं मृत्यु से घबराय है।
जीवन मरण है कल्पना, अपना न कुछ भी जाय है॥
अक्षय, अजर शाश्वत, अमर, निज आत्ममे सतृप्त है।
ऐसा विवेकी प्राज्ञ, नर, इच्छा विना ही मुक्त है॥

(७)

माया नही, काया नही, वन्ध्या रचा यह विश्व है।
नहिं नाम ही, नहिं रूप ही, केवल निरामय तत्त्व है॥
यह ईश है, यह जीव माया माँहिं सब सक्लृप्त है।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, इच्छा विना ही मुक्त है॥

(८)

कर्तव्य था सो कर लिया, करना न कुछ भी शेष है।
था प्राप्त करना पा लिया, पाना न अब कुछ लेश है॥
जो जानना था जानकर, स्व-स्वरूप मे सयुक्त है।
भोला ! नही सदेह, सो इच्छा विना ही मुक्त है॥

ममता अहंता छोड़ दे ।

[१]

पूरे जगत् के कार्य कोई, भी कभी नहिं कर सका ।
शीतोष्ण से सुख-दुःख से, कोई भला क्या तर सका ।।
निस्संग हो, निश्चिन्त हो, नाता सभी से तोड दे ।
करता भले रह देह से, ममता अहंता छोड दे ।।

[२]

संसारियोकी दुर्दशाको, देख मनमें शांत हो ।
मत आशका हो दास तू, मत भोग सुखमें भ्रांत हो ।।
निज आत्म सच्चा जानकर, भाँडा जगत् का फोड दे ।
अपना पराया मान मत, ममता अहंता छोड दे ।।

[३]

नश्वर अशुचि यह देह, तीनों तापसे संयुक्त है ।
आसक्त हड्डी मांसपर, होना तुझे नहिं युक्त है ।।
पावन परम निज आत्म में, मन वृति अपनी जोड़ दे ।
सन्तोष समता कर ग्रहण, ममता अहंता छोड़ दे ।।

[४]

है काल ऐसा कौन-सा, जिसमें न कोई द्वन्द्व है ।
बचपन तरुणपन वृद्धपन, कोई नही निर्द्वन्द्व है ।।
कर पीठ पीछे द्वन्द्व सब मुख आत्म की दिश मोड़ दे ।
कैवल्य निश्चय पायगा, ममता अहंता छोड़ दे ।।

[५]

योगी, महर्षी, साधुओं की, हैं घनी पगडण्डियाँ।
कोई सिखाते सिद्धिया, कोई बताते ऋद्धियाँ॥
ऊंचा न चढ नीचा न गिर, तज धूप दे तज दौड़ दे।
सम शान्त हो जा एक रस, ममता अहता छोड दे॥

[६]

सुखरूप सच्चित् ब्रह्म को, जो आत्म अपना जानता।
इन्द्रादि सुरके भोग सारे, ही मृषा है मानता॥
दश, सौ, हजारो शून्य मिथ्या, छोड लाख करोड दे।
यक आत्म सच्चा ले पकड, ममता अहंता छोड़ दे॥

[७]

गुण तीन पाँचो भूतका, यह विश्व सब विस्तार है।
गुण भूत जड निस्सार सब, तू एक द्रष्टा सार है॥
चैतन्यकी कर होड प्यारे! त्याग जड़की होड दे।
तू शुद्ध है, तू बुद्ध है, ममता अहंता छाड दे॥

[८]

शुभ होय अथवा हो अशुभ, सब वासनाएं छाँट दे।
निर्मूल करके वासना, अध्यासकी जड़ काट दे॥
अध्यास खुजली कोढ है, कोढी न वन, तज कोढ़ दे।
सुख शान्ति भोला! ले पकड़, ममता अहता छोड़ दे॥

ममता अहंता छोड़ दे।

[१]

पूरे जगत् के कार्य कोई, भी कभी नहिं कर सका।
शीतोष्ण से सुख-दुःख से, कोई भला क्या तर सका॥
निस्संग हो, निश्चिन्त हो, नाता सभी से तोड़ दे।
करता भले रह देह से, ममता अहता छोड दे॥

[२]

संसारियोंकी दुर्दशाको, देख मनमें शांत हो।
मत आशका हो दास तू, मत भोग सुखमें भ्रांत हो॥
निज आत्म सच्चा जानकर, भाँडा जगत् का फोड़ दे।
अपना पराया मान मत, ममत अहता छोड दे॥

[३]

नश्वर अशुचि यह देह, तीनों तापसे संयुक्त है।
आसक्त हड्डी मासपर, होना तुझे नहिं युक्त है॥
पावन परम निज आत्म में, मन वृत्ति अपनी जोड़ दे।
सन्तोष समता कर ग्रहण, ममता अहंता छोड़ दे॥

[४]

है काल ऐसा कौन-सा, जिसमें न कोई द्वन्द्व है।
बचपन तरुणपन वृद्धपन, कोई नही निर्द्वन्द्व है॥
कर पीठ पीछे द्वन्द्व सब, मुख आत्म को दिश मोड़ दे।
कैवल्य निश्चय पायगा, ममता अहंता छोड़ दे॥

[५]

योगी, महर्षी, साधुओं की, हैं घनी पगडण्डियां।
कोई सिखाते सिद्धियां, कोई बताते ऋद्धियां॥
ऊंचा न चढ नीचा न गिर, तज धूप दे तज दौड़ दे।
सम शान्त हो जा एक रस, ममता अहता छोड दे॥

[६]

सुखरूप सच्चित् ब्रह्म को, जो आत्म अपना जानता।
इन्द्रादि सुरके भोग सारे, ही मृषा है मानता॥
दश, सौ, हजारो शून्य मिथ्या, छोड़ लाख करोड़ दे।
यक आत्म सच्चा ले पकड, ममता अहंता छोड़ दे॥

[७]

गुण तीन पाँचो भूतका, यह विश्व सब विस्तार है।
गुण भूत जड निस्सार सब, तू एक द्रष्टा सार है॥
चैयन्यकी कर होड प्यारे! त्याग जड़की होड़ दे।
तू शुद्ध है, तू बुद्ध है, ममता अहता छोड़ दे॥

[८]

शुभ होय अथवा हो अशुभ, सब वासना
निर्मूल करके वासना, अध्यासकी जड़
अध्यास खुजली कोढ है, कोढी न बन,
सुख शान्ति भोला! ले पकड, ममता अहंता

मत भोगमें आसक्त हो !

[१]

है काम वैरी ज्ञानका, तज काम हो निष्काम रे।
है अर्थ साधक काममें. मत अर्थसे रख काम रे॥
कामार्थं कारण धर्म है, मत धर्म में अनुरक्त हो।
कर चाह केवल मोक्ष की, मत भोग में आसक्त हो॥

[२]

निस्सार यह संसार दुःख-भण्डार मायाजाल है।
ऐसा यहां पर कौन है, खाता जिसे नहिं काल है?
फिरमित्र सुत-दारादिमें, क्यों व्यर्थ हो संसक्त हो।
यदि इष्ट निज कल्याण है, मत भोग में आसक्त हो॥

[३]

तृष्णा जहाँ होवे वहां ही जान ले संसार है।
होवे नहीं तृष्णा जहां संसारका सो पार है॥
वैराग्य पक्का धारकर, मत भूल विषयासक्त हो।
तृष्णा न कर हो जा सुखी, मत भोगमें आसक्त हो॥

[४]

है बन्ध तृष्णामात्र तृष्णा-त्याग सुखका मूल है।
तृष्णा भयंकर व्याधि है, छेदें अनेकों शूल हैं॥
दे त्याग तृष्णा भोगकी, निज आत्ममे अनुरक्त हो।
तृष्णा न भज, सन्तोष भज, मत भोगमें आसक्त हो॥

[५]

तू एक चेतन शुद्ध है, यह देह जड अपवित्र है।
तू सत्य अव्यय तत्व है, यह विश्व वन्ध्या-पुत्र है।
पहिचान कर तू आपको, हे तात ! सशय-मुक्त हो।
नहि है अधिक अब जानना, मत भोग में आसक्त हो ॥

[६]

धारी हजारों देह, सुत दारा हजारो कर चुका।
हसता रहा, रोता रहा सौ बार तनु धर मर चुका ॥
जहँ जहँ गया दु ख ही सहा, अब तो न व्याकुलचित हो।
ब्रह्मात्म में तल्लीन हो, मत भोग में आसक्त हो !!

[७]

धिक्कार है उस अर्थ को, धिक्कार है उस कर्म को।
धिक्कार है उस काम को, धिक्कार है उस धर्म को ॥
जिससे न होवे शाँति, उस व्यापार मे क्यो सक्त हो ?
पुरुषार्थ अन्तिम सिद्ध कर, मत भोग में आसक्त हो !!

[८]

मन, कर्म, वाणी से तथा, सब कर्म है तू कर चुका।
ऊँचा गया स्वर्गादि मे, पाताल मे भी गिर चुका ॥
अब कर्म करना छोड दे, भोला ! न देहासक्त हो।
आसक्त हो स्व-स्वरूप में, मत भोग मे आसक्त हो ॥

होता तुरत ही शान्त है।

(१)

संसार की सब वस्तुएँ बनती-बिगड़ती है सदा।
क्षण एक सी रहती नही, बदला करे है सर्वदा।
आत्मा सदा है एक रस, गतक्लेश शाश्वत मुक्त है।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, होता तुरत ही शांत है॥

(२)

ईश्वर यहाँ, ईश्वर वहा, ईश्वर सिवा नहिं अन्य है।
सर्वत्र ही परिपूर्ण अच्युत, एक देव अनन्य है॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, होता न सो फिर भ्रान्त है।
आशा जगत की छोड़ कर होता तुरत ही शान्त है॥

(३)

क्या सम्पदा क्या आपदा प्रारब्धवश सब आयं हैं।
ईश्वर उन्हे नहिं भेजता, निज कर्म वश आ जायँ है॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, रहता सदा निश्चिन्त है।
नहिं हर्षता, नहिं सोचता, होता तुरत हो शान्त है॥

(४)

सुख दुःख औ जीवन मरण, सब कर्म के आधीन है।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ होता नही फिर दीन है॥
जो भोग आते भोगता, होता न भोगासक्त है।
निर्लेप रहता कर्म से, होता तुरत ही शान्त है।

[५]

चिन्ता किये से दुःख हो, चिन्ता बुरी फाका भला।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, सो क्यों करे चिन्ता भला ?
चिन्ता नहीं करता कभी, होता न व्याकुल-चित्त है।
रहता सुखी हर हाल में, होता तुरत ही शांत है॥

[६]

नहिं देह मैं नहि देह मेरा, शुद्ध हू मै बुद्ध हू।
कूटस्थ हूँ निस्सग हूँ, नहिं देह से संबद्ध हूँ॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, फिर क्या उसे एकान्त है ?
बस्ती भले जगल रहे, होता तुरत ही शांत है॥

[७]

ले कीटसे ब्रह्मा तलक, मेरे सिवा नहिं अन्य है।
मैं पूर्ण हूँ, मैं सर्व हूँ, ऐसा विवेकी धन्य है।
सम प्राप्ति में अप्राप्ति मे, मन इन्द्रियाजित दान्त है।
नहिं देर कुछ लगती उसे, होता तुरत ही शात है॥

[८]

आश्चर्यमय है विश्व यह, सो वस्तुत कुछ है नही।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, उसको नही है भय कही॥
निष्काम फुरणामात्रको, रहता न कुछ भी चिन्त्य है।
भोला ! हुआ निश्चिन्त जो, होता तुरत ही शात है॥

निज आत्म में डट जाय है !

(१)

कायिक क्रियाएँ त्यागदे, वाचिक क्रियाएँ छोड़दे।
संकल्प करना चित्त का, व्यापार सम्यक् तोड़ दे॥
जब चित्त थिरता पाय है, संसार सब हट जाय है।
साक्षी स्वय रह जाय तब, निज आत्म में डट जाय है॥

(२)

विष सम विषय सब जान कर, शब्दादि में मत राग कर।
आत्मा-सुधाका पान कर, मत देह में अनुराग कर॥
आत्मासुधा के पान से, विक्षेप सब छुट जाय है।
विक्षेप मिटते ही तुरत, निज आत्म में डट जाय है॥

(३)

कर्तापने, भोक्तापनेका जब तलक अध्यास है।
तब तक समाधी के लिये, करना पड़े अभ्यास है॥
कर्तापना, भोक्तापना, अध्यास जब मिट जाय है।
कर्तव्य सब छुट जाय है, निज आत्म में डट जाय है॥

(४)

यह ग्राह्य है, यह त्याज्य है, अध्यास ऐसा मत करे।
मत हर्ष कर, मत शोक कर, रह सर्व द्वन्द्वों से परे॥
निर्द्वन्द्व जब हो जाय है, तब शाँति अविचल पाय है।
संशय सभी मिट जायं है, नित आत्म मे डट जाय है॥

(५)

'मन बुद्धि से मैं हूँ परे, 'नहिं ध्यान ध्याता ध्येय मैं'।
'निष्काम निस्सकल्प हूँ' 'नहिं ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय मैं'॥
ऐसे निरन्तर मननसे, भ्रम-भेद सब मिट जाय है।
सब कामना निर्मूल हो, निज आत्म मे डट जाय है॥

(६)

करना न करना कर्म का, ज्ञान से सब होय है।
तुझ आत्म मे बनता नही, करना न करना कोय है॥
यह तत्त्व सम्यक् जानकर, अज्ञान जड कट जाय है।
होता नही है मोह फिर, निज आत्म मे डट जाय है॥

(७)

चिंतन करे है जब तलक नहि ब्रह्म जाना जाय है।
चितन-राहत है ब्रह्म सो चिंतन-रहित हो पाय है॥
चितन-रहित हो जाय है, सो ज्ञान सम्यक् पाय है।
सम्यक् हुआ जब ज्ञान तब निज आत्ममे डट जाय है॥

(८)

यो साधनो से ब्रह्म को, चितन-रहित पहिचान कर।
कृतकृत्य नर हो जाय है, ऐसा कहे हैं प्राज्ञ-नर॥
साधक भले हो सिद्ध जो चिंतन-रहित हो जाय है।
भोला! नही सदेह कुछ, निज आत्ममे डट जाय है॥

निज आत्म में डट जाय है !

(१)

कायिक क्रियाएँ त्यागदे, वाचिक क्रियाएँ छोड़दे।
संकल्प करना चित्त का, व्यापार सम्यक् तोड़ दे॥
जब चित्त थिरता पाय है, संसार सब हट जाय है।
साक्षी स्वयं रह जाय तब, निज आत्म मे डट जाय है॥

(२)

विष सम विषय सब जान कर, शब्वादि में मत राग कर।
आत्मा-सुधाका पान कर, मत देह में अनुराग कर॥
आत्मासुधा के पान से, विक्षेप सब छुट जाय है।
विक्षेप मिटते ही तुरत, निज आत्म में डट जाय है॥

(३)

कर्तापने, भोक्तापनेका जब तलक अध्यास है।
तब तक समाधी के लिये, करना पड़े अभ्यास है॥
कर्तापना, भोक्तापना, अध्यास जब मिट जाय हैं।
कर्तव्य सब छुट जाय है, निज आत्म में डट जाय है॥

(४)

यह ग्राह्य है, यह त्याज्य है, अध्यास ऐसा मत करे।
मत हर्ष कर, मत शोक कर, रह सर्व द्वन्द्वों से परे॥
निर्द्वन्द्व जब हो जाय है, तब शाँति अविचल पाय है।
संशय सभी मिट जायं है, नित आत्म मे डट जाय है॥

(५)

'मन बुद्धि से मै हूँ परे, 'नहिं ध्यान ध्याता ध्येय मैं' ।
'निष्काम निस्सकल्प हूँ' 'नहिं ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय मैं' ॥
ऐसे निरन्तर मननसे, भ्रम-भेद सब मिट जाय है ।
सब कामना निर्मूल हो, निज आत्म मे डट जाय है ॥

(६)

करना न करना कर्म का, ज्ञान से सब होय है ।
तुझ आत्म मे बनता नही, करना न करना कोय है ॥
यह तत्त्व सम्यक् जानकर, अज्ञान जड कट जाय है ।
होता नही है मोह फिर, निज आत्म मे डट जाय है ॥

(७)

चिंतन करे है जब तलक नहि ब्रह्म जाना जाय है ।
चिंतन-रहित है ब्रह्म सो चिंतन-रहित हो पाय है ॥
चिंतन-रहित हो जाय है, सो ज्ञान सम्यक् पाय है ।
सम्यक् हुआ जब ज्ञान तब निज आत्ममे डट जाय है ॥

(८)

यो साधनो से ब्रह्म को, चिंतन-रहित पहिचान कर ।
कृतकृत्य नर हो जाय है, ऐसा कहे है प्राज्ञ-नर ॥
साधक भले हो सिद्ध जो चिंतन-रहित हो जाय है ।
भोला ! नही सदेह कुछ, निज आत्ममे डट जाय है ॥

यह ही परम पुरुषार्थ है।

(१)

आसक्ति जब तक लेश है, तब तक न चिन्ता न जाय है।
नहिं चित्तथिर हो जबतलक, नहिं मोक्ष-सुखनर पाय हैं॥
कौपीन तक में राग हो, तो जाय रुक परमार्थ है।
निर्मूल होना राग का, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(२)

पग हाथ से क्रिया करें तो खेद काया पाय है।
पाठन-पठन यदि कीजिये, तो जीभ में श्रम आय है॥
मन खेद पावे ध्यान से, यह बात सत्य यथार्थ है॥
* व्यापार तीनों त्याग दे, यह ही परम पुरुषार्थ है।

(३)

देहादि करते कार्य हैं, आत्मा सदा निर्लेप है।
यह ज्ञान सम्यक् होय जब, होता न फिर विक्षेप है॥
मन इन्द्रियां करती रहे, अपना न कुछ भी स्वार्थ है।
जो आ गया सो कर लिया, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(४)

निष्ठा रखूं निष्कर्म में या कर्म में निष्ठा धरूं।
यह प्रश्न देहासक्त का है, क्या करूं क्या नहि करूं॥
निष्कर्म से नहि हानि है, नहि कर्म मे कुछ अर्थ है।
अभिमान दोनों त्याग दे, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

---

*इस पद में व्यापार छोड देने को कहा गया है, वस्तुतः इसमें साधक द्वारा किये जाने वाले पठन-पाठन, ध्यान आदि का— (४४)

(५)

वैठे चले, सोवे भले, नहिं देह मे आसक्त हो।
दे कार्य करने देहको, निज आतममें अनुरक्त हो॥
चेष्टा करे है देह अपना अर्थ है न अनर्थ है।
नहिं सग करना देहसे, यह ही परम पुरुपार्थ है॥

(६)

नहिं जागनेमे लाभ कुछ, नहिं हानि कोई स्वप्न मे।
नहि वैठने से जाय कुछ, नहिं आय है कुछ यत्न से॥
निर्लेप जो रहता सदा, सो सिद्ध युक्त कृतार्थ है।
नहिं त्याग हो, नहिं हो ग्रहण, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(७)

आसक्ति से ही जन्म है, आसक्ति में ही है मरण।
आसक्ति मे ही बन्ध है, निस्सङ्गता मे भव तरण॥
व्यासादि कहते हैं यही, श्रुति का यही भावार्थ है।
निस्सग आत्मा है सदा, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(८)

जो कुछ दिखाई दे रहा, निस्सार सर्व अनित्य है।
नहिं गेह हो नहिं देह, पुण्यापुण्य भी नहिं नित्य है॥
सबका प्रकाशक शुद्ध संवित् एक देव समर्थ है।
भोला ! उसी में जाय डट, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

विरोध नही है, यह तो स्थिति है इस पर भी शरीरधारी समस्त व्यापार छोड़ नही सकता, इसी का उत्तर आगे के पद मे है। (४५)

संसार से सो छुट गया।

[१]

संकल्प आदिक चित्त के सब धर्म से जो हीन है।
होती सभी जिसकी क्रिया, प्रारब्ध के स्वाधीन है॥
इच्छा बिना चेष्टा करे निज आत्म में है डट गया।
ससार में दीखे भले, ससार से सो छुट गया॥

[२]

धनकी जिसे नहि चाह है, नहि मित्रकी परवाह है।
आसक्ति विषयों मे नही, प्रारब्ध पर निर्वाह है॥
सब विश्व मटियामेट कर, जो आप भी है मिट गया।
मिटकर हुआ है आप ही, संसार से सो छुट गया॥

[३]

गेहादि मे ममता नही, नहि देह मे अभिमान है।
संतृप्त अपने आपमे नित आत्म अनुसन्धान है॥
अध्यास मटका गल गया, अज्ञान पर्दा फट गया।
विज्ञान अनुभव खुल गया, संसार से सो छुट गया॥

[४]

मनमें नही विक्षेप है, नहि बुद्धिमें कुछ भ्रान्ति है।
चिन्ता नही है चित्त मे, परिपूर्ण अक्षय शान्ति है।
कामादि तस्कर भग गये, कूड़ा गया, कर्कट गया।
अक्षय खजाना रह गया, सँसार से सो छुट गया॥

[५]

सर्दी पडे गर्मी पडे, वर्षा झडे तो वाह वा ।
आंधी चले पानी पड़े, विजली गिरे तो वाह वा ।।
जो होय सो होता रहे, अपना नही कुछ घट गया ।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, ससार मे सो छूट गया ।।

[६]

जगल वुरा लगता नही, दगल जिसे रुचता नही ।
नहि स्वर्ण लेने दौडता, है सर्प मे वचता नही ।।
जीना जिसे भाता नही, भय मृत्यु का है उठ गया ।
सो धन्य है जग मन्य है, ससार से सो छूट गया ।।

[७]

नहि शत्रु जिसका कोय है, नहिं मित्र जिसका कोय है ।
स्व-स्वभाव के अनुसार सव व्यवहार जिसका होय है ।
वाहर सभी करता रहे है चित्त से सव हट गया ।
मन स्वस्थ निर्मल शान्त है, ससार से सो छुट गया ।।

[८]

यह पुरुष है, यह नारि है, ऐसा जिसे नहि ध्यान है ।
सम हानि है, सम लाभ है, सम मान अरु अपमान है ।।
मैं अन्य हूं, यह अन्य है, यह भेद जिसका मिट गया ।
भोला ! वही हुशियार है, ससार से सो छुट गया ।।

सोच का क्या काम है ?

(१)

नहि देह तू नहिं देह तेरा, देह से तू भिन्न है।
कर्ता नही भोक्ता नही, कामादिकों से अन्य है॥
आनन्द है, चिद्रूप है, सद्रूप है, निष्काम है।
कूटस्थ है, निस्संग है, फिर सोच का क्या काम है ?

[२]

निःशोक है, निर्मोह है, तुझ में नही है भय कहीं।
रागादि मन के दोष है, तू मन कभी भी है नहीं॥
अज्ञान तुझ में है नही, बोधात्म तेरा नाम है।
निर्दोष है तू निर्विकारी, सोच का क्या काम है ?

[३]

सब भूत तेरे माहि हैं, तू सर्व भूतो मांहि हैं।
सर्वत्र तू परिपूर्ण है, तेरे सिवा कुछ नाहिं है॥
ममता अहंता से रहित, सब में रमे तू राम है।
निश्छेद्य है, निर्भेद्य है, फिर सोच का क्या काम है॥

[४]

जैसे तरंगें सिन्धु से, ये विश्व जिसमे हों उदय।
ठहरी रहे कुछ काल तक, फिर अन्त मे हो जायं लय॥
सो तू निरामय तत्व है, मन बुद्धि से परधाम है।
वाणी जहां नहिं जा सके, फिर सोच का क्या काम है॥

(५)

विश्वास कर, विश्वास कर, मत मोह मे तू प्राप्त हो।
हो आपमे संतुष्ट केवल आप मे सन्तृप्त हो ॥
नहि हाड़ तू, नहि माँस है नहि रक्त है नहि चाम है।
है देह तीनो से परे, फिर सोच का क्या काम है ॥

(६)

गुणयुक्त है यह देह आता, है चला फिर जाय है।
आत्मा अचल परिपूर्ण है, नहि जाय है नहि आय है ॥
तिहु देह का तिहुं लोक का, तिहु काल का विश्राम है।
घटता नही, बढ़ता नही, फिर सोच का क्या काम है।

(७)

यह देह ठहरे कल्प तक, या आज उसका अन्त हो ॥
तेरा न कुछ बिगडे बने, यह जानकर निश्चिन्त हो।
दिन रात तुझमें है नही, नाही सवेरा शाम है।
तू काल का भी काल है भिर सोच का क्या काम है ॥

(८)

अध्यस्त तुझमे विश्व है, तू विश्व का आधार है।
स्वच्छन्द है निर्द्वन्द है, भयमुक्त है भवभार है।
श्रुति सन्त सब ही कह रहे, कहता यही प्रभु श्याम है।
भोला ! नहीं है दूसरा फिर सोच का क्या काम है ॥

अद्वैत है एकत्व है ।

(१)

चिन्मात्र तू भरपूर है, नहिं विश्व तुझसे भिन्न है ।
फिर त्याग क्या कैसा ग्रहण, तुझसे न जब कुछ अन्य है ॥
है विश्व तेरी कल्पना, तू सिद्ध अक्षय तत्त्व है ।
नहि भेद है, नहिं द्वैत है, अद्वैत है, एकत्व है ॥

(२)

तू एक अव्यय शान्त, निर्मल स्वच्छ चिद् आकाश है ।
अज्ञान तुझमे है नही, नहिं भ्रान्ति नहि, अध्यास है ॥
राजस नही, तामस नही, तुझमें न रंचक सत्त्व है ।
निर्गुण, निरामय, एक रस, अद्वैत है, एकत्व है ॥

(३)

कंकण कटक, नूपुर रुचक, नहि कनक से कुछ भिन्न है ।
नहि कार्यकारण से कभी तिहुं काल में भी अन्य है ॥
जो-जो जहां तू देखता, तेरा सभी भासत्व है ।
तुझसे नही है भिन्न कुछ अद्वैत है, एकत्व है ।

(४)

'मैं हूं यही' 'मैं वह नहीं,' यह भिन्नता मत मान रे ।
'मैं सर्व हूं' 'सर्वात्म हूं,' ऐसा निरंतर जान रे ॥
तेरे बिना नहि अन्य का, किञ्चित् कहीं अस्तित्व है ।
श्रुति सन्त सब ही कह रहे, अद्वैत है, एकत्व है ॥

(५)

वह विश्व केवल भ्रान्ति है, नहिं वस्तुत कुछ सत्य है।
नश्वर सभी तेरे सिवा, तू एक शाश्वत नित्य है॥
चिन्मात्र तू ही तत्त्व है, यह दृश्य सब निस्तत्व है।
निस्तत्वको सत्ता कहा, अद्वैत है, एकत्व है॥

(६)

ससार सागर माहिं तू ही एक पहिले सत्य था।
अब भी तुही है एक, आगे भी रहेगा तू तथा॥
नहिं बन्ध है, नहि मोक्ष, नहिंकर्तृत्व, नहि भोक्तृत्व है।
सर्वत्र तू ही पूर्ण है, अद्वैत है, एकत्व है॥

(७)

निज चित्त को मत क्षोभ दे, सकल्प और विकल्प से।
कूटस्थ भूमा ठोस हो, मत काम रख कुछ अल्प से॥
अल्पत्व भासे भ्रान्ति मैं, पर वस्तुत पूर्णत्व है।
निर्वासना हो जा सुखी, अद्वैत है, एकत्व है॥

(८)

मत ध्यान कर कुछ हृदय मे, सर्वत्र तज दे ध्यान तू।
आत्मा सदा है मुक्त तू फिर क्या करे है ध्यान तू॥
जब दूसरा है ही नही, तो सवथा मौनत्व है।
भोला? सुखी हो, शान्त हो, अद्वैत है एकत्व है,।

शान्ति अक्षय पायगा।

(१)

वर्षोंतलक लाखों भले ही शास्त्र तू सुनता रहे।
पढ़ता रहे या रात दिन, उपदेश भी करता रहे॥
जबतक बना है भेद 'मैं' 'तू' भय न तब तक जायगा।
जब भेद सब मिट जायगा, तब शान्ति अक्षय पायगा॥

(२)

भोगे भले बहु भोग, नाना कर्म आचरता रहे।
अथवा समाधीपर समाधी, लाख तू करता रहे॥
जबतक रहेगी वासना, बन्धन न तेरा जायगा।
निर्वासना हो जायगा, तब शान्ति अक्षय पायगा॥

(३)

आयाससे सब हैं दुखी, कोई नहीं यह जानता।
है भोगमें ही मात्र सुख नर मूढ़ ऐसा मानता॥
निस्सीम सुख है आप में, विश्वास जो नर लायगा।
अन्तर्मुखी हो जायगा, सो शान्ति अक्षय पायगा।

(४)

जो खोलने या मूँदनेमें, आंख के अलसाय है।
आलस्सियोंका भूप सो हीं, ब्रह्म-सुख चख पाय है॥●
जो ब्रह्म-सुख का स्वाद ले, क्यो भोग में ललचायगा।
सब रस विरस हो जायगे, जब शान्ति अक्षय पायगा॥

●अक्रिय ब्रह्मका सुख निश्चेष्ट पुरुष ही भोग सकता है। इसीसे उसको 'आलसियों का भूप' कहा गया है, वस्तुतः इससे

(५)

यह कर लिया, यह नहिं किया, ये द्वन्द्व सारे तोड दे।
धर्मार्थ तज दे, काम तज दे, मोक्ष-कांक्षा छोड दे॥
निरक्षेप जब तू होयगा, निर्द्वन्द्व तब हो जायगा।
स्वच्छन्द होगा शान्त होगा, शान्ति अक्षय पायगा॥

(६)

त्यागी विषय से द्वेष करि, नहिं संग उनका छोड़ता।
रागी विषय मे राग करके, प्रेम उनसे जोड़ता॥
मत राग कर, मत द्वेष कर, निस्संग तू हो जायगा।
ससर्ग से छुट जायगा, तब शान्ति अक्षय पायगा॥

(७)

है त्याग जब तक या ग्रहण, तब तक खडा ससार है।
नहिं त्याग करता नहिं ग्रहण, ससार से सो पार है॥
मत त्याग कर मत कर ग्रहण, स्व-स्वरूप मे टिक जायगा।
संसार तरु गिर जायगा, तू शान्ति अक्षय पायगा॥

(८)

यदि प्रीति विषयो मे करेगा, राग बढता जायगा।
यदि द्वेष विषयो से किया, तो द्वेष दृढता पायगा॥
तज राग दे, तज द्वेष दे, मन मैल सब धुल जायगा।
वालात्तरण भोला! ग्रहण कर, शान्ति अक्षय पायगा॥

यहा साधारण तमोगुणी आलस्य नही समझना चाहिए। (५३)

विरला कहीं पर पाय है !

(१)

मन इन्द्रियां स्वाधीन कर, जो आत्म मे सँलग्न है।
निज आत्म मे भी सातृप्त है, निज आत्म मे मन मग्न है॥
नहि स्वप्न में भी भोग में, जिसका कभी मन जाय है।
ऐसा विवेकी धीर नर, विरला कही पर पाय है॥

(२)

हर्षित कभी होता नही, होता कभी नहिं खिन्न है।
सुख दु:ख लाभ अलाभ में, सम चित्त रहत प्रसन्न है॥
बैठे, चले, खावे पिये, जागे भले सो जाय है।
निज लक्ष्य से हटता न जो, विरला कही पर पाय है॥

(३)

सव रस विरस लगते जिसे, नहिं भोग जिसको खैंचते।
ज्यों ईख-प्रेमी हस्तिको, नहिं निम्ब पत्ते ऐंचते॥
नहिं कामके वश हो कभी, नहिं क्रोध जिसको आय है।
निर्लोभ संशय से रहित, विरला कही पर पाय है॥

(४)

जो भोग आवें भोगता, आसक्त पर होता नही।
नहि प्राप्त होते भोग, उनकी चाह भी करता नही॥
नि:शोक है, निर्मोह है, नहि भय किसी से खाय है।
नहि अन्य को भय दे कभी, विरला कहीं पर पाय है॥

(५]

ससार माही है बहुत से, लोग इच्छुक भोग के।
देखे मुमुक्षु भी घने, अभ्यास करते योग के ॥
नहिं भोग जिसको चाहिये, नहि मोक्ष जिसको भाय है।
दुर्लभ्य ऐसा धीर है विरला कही पर पाय है !!

[६]

नहिं धर्म की इच्छा जिसे, नहिं अर्थ की है कामना।
नहिं काम की काक्षा जिसे, नहिं मोक्ष की है भावना ॥
जीना जिसे रुचता नही, नहिं मृत्यु से घबराय है।
लाखो करोडो मध्य मे, विरला कहीं पर पाय है ॥

[७]

करना विलय इस विश्व का, रुचिक जिसे लगता नही।
इस विश्व के व्यापार से, द्वेष भी करता नही ॥
यह दीखता भी विश्व जिसकी दृष्टि मे नहिं आय है।
सर्वत्र देखे आप सो, विरला कही पर पाय है ॥

[८]

कृतकृत्य है निज ज्ञान से, सतृप्त है विज्ञान से।
सन्तुष्ट अपने आप मे,, नहि काम कुछ है ध्यान से ॥
सुनता सभी मे आपको है, आपको ही गाय है।
भोला ! नही ऐसे घने, विरला कही पर पाय है !!

सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है।

[१]

नहिं राग करता भोग में, नहिं द्वेष करता भोग से।
नहिं पास जाता योग के, नहिं दूर रहता योग से॥
नहिं इन्द्रियां होती विकल, नहिं रक्त है न विरक्त है।
है तृप्त अपने आप में, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥

[२]

बैठे नहिं, नहीं हो खड़ा, नहिं आंख मीचे, खोलता।
जागे नही, सोवे नही, चुपका नहीं, नहीं बोलता॥
चेष्टा सभी करता रहे, फिर भी न चेष्टायुक्त है।
निस्संग कर्म अकर्मसे, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥

[३]

सुख-दुःखमें, शीतोष्णमें, सम चित्त रहता है सदा।
क्या मित्रको क्या शत्रु को, सम देखता है सर्वदा॥
सब वासनाओं से रहित, निज आत्म में अनुरक्त है।
सब विश्व देखे ब्रह्ममय सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥

[४]

सुनता हुआ, या देखता, छूता हुआ या सूँघता।
लेता हुआ, देता हुआ, जगता हुआ या ऊँघता॥
आता हुआ, जाता हुआ, निज आत्म में संतृप्त है।
चेष्टा अचेष्टा से रहित, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥

(५)

निन्दा प्रशसा से रहित, सम सम्पदा सम आपदा।
देता नही, लेता नही, सम चित्त निर्भय सर्वदा॥
जिसको विषम भासे नही, सर्वत्र समता युक्त है।
मन अमन बालक-सा चलन, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥

(६)

कामिनि उपस्थित देखकर, नहिं क्षोभ मन मे लाय है।
विकराल मृत्यु समीप मैं ही, देख नहिं घबराय है॥
विह्वल न जिसका हो हृदय, जो धैर्य से सयुक्त है।
तल्लीन अपने आप मे, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥

(७)

गो, श्वान, गज, चाण्डाल, ब्राह्मण, वेद पाठी एक सम।
सर्वत्र समदर्शी सदा, जिसको न कोई बेश-कम॥
सम आत्म सब मे जान कर, रहता सदा समचित्त है।
योगी वही, ज्ञानी वही, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥

(८)

हिंसा कभी करता नही, फसता दया मे भी नही।
ऊँचा कभी नहिं शिर करे, नहिं दीन भी होता कही॥
विस्मय कभी पाता नही, होता न सशययुक्त है।
जगमन्य भोला! धन्य सो हो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥

सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(१)

होता जहाँपर मोह है, भय शोक होते हैं वहाँ।
रहता नही जहँ मोह है, भय शोक नहिं आते तहाँ ॥
निर्मोह जो नर हो गया, ससार से सो तर चुका।
करना उसे नहिं शेष है, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(२)

आशा करे जो भोग की, सो भोग में फस जाय है।
जो द्वेष करता भोग से, सो भी न छुट्टी पाय है।
आशा निराशा से छुटा, सो योग सम्यक् कर चुका।
फल ज्ञान का भी पा चुका, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(३)

जिस जीव में है वासना, उसके लिये ससार है।
जो जीव है निर्वासना, भवसिन्धु से सो पार है ॥
निर्वासना जो हो गया, सो मोक्ष-पद पर चढ़ चुका।
आनन्द अक्षय लूटता, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(४)

ममता नही पुत्रादि मे, नहिं देह में अभिमान है।
सब ब्रह्म है, नहिं अन्य है, ऐसा जिसे दृढ़ ज्ञान है ॥
सम्पूर्ण आशा गल गयी हैं. चित्त जिसका, मर चुका।
सो जीगया जी, जीगया, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(५)

जो वस्तु लेना चाहता है, राग उसको खींचता।
जो छोडना है चाहता, तो द्वेष निश्चय ईंचता॥
लेता नही देता नही, सो द्वन्द्व से हो पर चुका।
निर्द्वन्द्वका नहिं कृत्य कुछ, सब कर चुका ! सबधर चुका !!

(६)

'मैं हूँ तपोधन, सिद्ध हू' ऐसा नही जो मानता।
'मै मुक्त हू' 'मै युक्त हू', यह भी नही जो जानता॥
अभिमान जिसका छुट गया, माया किला कर सर चुका।
स्वराज्य अपना पा चुका, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(७)

आकाश घट के बाह्य है, आकाश घट भीतर यथा।
है ब्रह्म सबके देह मे, बाहर बसा भीतर तथा॥
सो ब्रह्म हू मै आप ही, दृढ धारणा जो कर चुका।
कैवल्य पद सो पा चुका, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(८)

ज्यो एक ही रवि विश्वभर मे है उजाला कर रहा।
ब्रह्माण्डभर को भासता त्यो ब्रह्म सब मे भर रहा॥
सा ब्रह्म मेरा आत्म है, यह भाव जिसमे भर चुका।
भोला ! हुआ भरपूर सो, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

भय शोक सब भग जाय है।

(१)

जब बोध-रवि होता उदय, अज्ञान-तम हट जाय है।
संसार स्वप्ना होय है, भ्रम-भेद सब मिट जाय है॥
तब मोह निद्रा त्यागकर, स्व-स्वरूप मे जग जाय है।
होता मुमुक्षु है सुखी, भय शोक सब भाग जाय है॥

(२)

सुत दार आदिक हों घने, पुष्कल भले धन पाइये।
बहु भाँति भोगन भोगिये सम्राट् भी बन जाइये॥
जब तक न होवे त्याग सम्यक् हाथ सुख नहि आय है।
जब त्याग सम्यक् होय है, भय शोक सब भग जाय है॥

(३)

कर्तव्य जलती आग है, सबको जलाती है यही।
सो वृक्ष कैसे हो हरा, हो आग जिसमे लग रही॥
कर्तव्य से छुट जाय सो, इस आग से बच जाय है।
पीयूष-धारा नित पिये, भय शोक सब भग जाय है॥

(४)

भव भावना का है बना, किञ्चित् नही परमर्थ है।
अध्यस्त है यह विश्व केवल ब्रह्म तत्त्व यथार्थ है।
सकल्प जब मिट जाय है, यह विश्व सब उड जाय है।
सुखरूप ही रह जाय है, भय शोक सब भग जाय है॥

(५)

आत्मा सदा हो प्राप्त है, नहिं दूर है नहि पास है ।
नहिं आत्म पाने के लिये, करना पडे आयास है ॥
सँकल्प देना छोड जो, सो आपमे टिक जाय है ।
जब आप अपना पाय है, भय शोक सब भग जाय है ॥

(६)

व्यामोह का परदा पडा, सो आत्म सुखमे आड है ।
व्यामोह तिलकी ओट मे, ढक लीन आत्म पहाड है ॥
व्यामोह परदा जाय हट, तब मर्म सब खुल जाय है ।
बे-ओट सुख है दीखता, भय शोक सब भग जाय है ॥

(७)

यह विश्व सब है कल्पना, आत्मा सदा ही मुक्त है ।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, होता न सशययुक्त है ॥
जो धीर सशयमुक्त है, सो बोध सम्यक् पाय है ।
रहता सदा ही शान्त है, भय शोक सब भग जाय है ॥

(८)

चिन्मात्र केवल ब्रह्म है, ससार जड है कल्पना ।
चैतन्य जड नहिं मिल सके, भवकी नही सम्भावना ॥
ऐसे विवेकी जानकर, निष्काम हो सुख पाय है ।
भोला ! अकामी धीर का, भय शोक सब भग जाय है ॥

उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(१)

'मैं हू यही, मै वह नही,' ऐसी न करता कल्पना।
'सर्वात्म है, नहिं अन्य है,' ऐसी जिसे दृढ़ भावना॥
योगी महा, मौनी महा, सकल्प से मन शून्य है।
चौदह भुवन तिहुं लोकमें, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(२)

विक्षेप जिसमें हैं नही, जिसमें नही एकाग्रता।
अति बोध जिसको है नही, जिसमें नहीं है मूढ़ता॥
उपशान्ततम, सुख-दुख सम, शीतोष्ण माँहि प्रसन्न है।
ऋषि, मुनि, मनुज में, देवमें, उस-सा सुखी क्या अन्य है?

(३)

स्वाराज्य भिक्षावृत्ति दोनो एक-सी जो जानता।
नहिं लाभ और अलाभ में है भेद रचक मानता॥
जन बन जिसे हैं एक-से, होता कभी नहिं खिन्न है।
क्रीड़ा करे निज आत्म में, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(४)

नहिं काम से कुछ काम है, नहिं धर्मसे कुछ वासता।
नहिं अर्थसे है अर्थ कुछ, नहिं मोक्ष ही है चाहता॥
करने न करनेसे पृथक्, निज आत्म मे संलग्न है।
निर्द्वन्द्व है स्वच्छन्द है, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(५)

कर्तव्य नहिं संसारमे, मनमे नही अनुराग है ।
लेना जिसे कुछ है नही, करना न कुछ भी त्याग है ॥
इच्छा अनिच्छा रहित तन, प्रारब्धके आधीन है ।
सब कुछ करे, कुछ नहि करे, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(६)

रंचक न जिसमे मोह है, नहिं विश्व का जिसको पता ।
चिन्तन कभी करता नही, नहि जानता है मुक्तता ॥
संकल्प सीमासे परे, शिव रूप एक अनन्य है ।
नहिं'भेद'जिसको भासता, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(७)

जो विश्वको हो देखता, सो विश्वको लय भी करे ।
किसका करे सो लय भला, नहि विश्व ही जिसको फुरे ॥
देखे नही है देखता भी, वासना सब छिन्द है ।
उस सम धनी कोई नही, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(८)

जो द्वैतको हो देखता, 'मै ब्रह्म हूँ' चिन्तन करे ।
जब द्वैत ही नहि देखता, चिन्तन करे फिर क्या सरे ॥
चिन्तन रहित जो धीर है, सो धन्य है जगमन्य है ।
भोला ! सुखी है एक सो, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

करना उसे क्या शेष है ?

(१)

विक्षेप मनका जिस पुरुषके देखनेमें आय है।
करता वही मन रोकने को, शम दमादि उपाय है॥
जिस प्राज्ञ नरकी दृष्टिमें, नहिं, द्वैत भासे लेश है।
विक्षेप भी होता नही, करना उसे क्या शेष है ?

(२)

ससारके विक्षेपसे जो धीर सम्यक् मुक्त है।
करता हुआ सब कार्य भी, होता न कर्मासक्त है॥
इच्छा समाधीकी नही, विक्षेप से नहि द्वेष है।
सम विषम जिसको एक सम, करना उसे क्या शेष है ?

(३)

मन में नही है वासना, आनन्द से भरपूर है।
निन्दा प्रशंसा से रहित, तिहु एषणा से दूर है॥
नहि मान से, अपमान से पाता कभी जो क्लेश है।
निश्चिन्त है, निर्द्वन्द्व है, करना उसे क्या शेष है ?

(४)

निष्कर्म नहि, नहि कर्म है, नहि हेय, नहि आदेय है।
प्रारब्ध-वश आ जाय जो, सुखसे उसे कर लेय है॥
नहि राग जिसको कर्ममें, निष्कर्ममें नहि द्वेष है।
स्वच्छन्द है, सविवेक है, करना उसे क्या शेष है ?

[५]

निर्वासना, आलम्ब बिनु, सब बन्धनो से मुक्त है।
आशा-निराशा-हीन, केवल ब्रह्म मे आसक्त है।।
सूखे हुए मरु पातका, जैसे न निश्चित देश है।
निश्चित नही जिसकी क्रिया, करना उसे क्या शेष है ?

[६]

सम्सार सब निस्सार है, परमात्म केवल सार है।
संसार से है मुक्त, जिसका आत्म ही आधार है।।
ब्रह्माण्ड भर है देश, जिसकी दृष्टि मे न विदेश है।
निष्काम आत्माराम है, करना उसे क्या शेष है ?

[७]

करता रमण निज आत्ममे है, चित्त शीतल स्वच्छ है।
इन्द्रादि की पदवी मिले, तो भी समझता तुच्छ है।।
क्या स्वर्गमे क्या नरकमे, जिसके लिये न विशेप है।
सर्वत्र समता देखता, करना उसे क्या शेष है ?

[८]

प्रारब्ध-वश चेष्टा करे, सकल्प से मन शून्य है।
हाथी चढे, पैदल फिरे, नहि है अधिक नहि न्यून है।।
सब वेष जिसके वेप या कोई न जिसका वेष है।
भोला ! सभी सो कर चुका, करना उसे क्या शेष है ?

सो धीर शोभा पाय है।

(१)

श्रुति-वाक्य सुनकर मूढ कोई तो न श्रद्धा लाय है।
कोई समझने को उसे मन रोकने को जाय है॥
मन मे विवेकी धीर के, श्रुतिवाक्य झट आ जाय है।
होता तुरत ही है सुखी, सो धीर शोभा पाय है॥

(२)

देहेन्द्रिया मन कर्म करते, कभी करता नही।
आता नही, जाता नही, चलता नही, फिरता नही॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, निर्लेप सो हो जाय है।
निर्लेप हो निष्पाप हो, सो धीर शोभा पाय है॥

(३)

आत्मा अनात्मा जानता, तत्त्वज्ञ है, मर्मज्ञ है।
ज्यों अज्ञ करता कार्य सब, होता न फिर भी अज्ञ है॥
करता हुआ व्यवहार भी, व्यवहार में नहि आय है।
निस्संग रहता है सदा, सो धीर शोभा पाय है॥

(४)

चिन्ता अचिन्ता से रहित, निज आत्म मे विश्राम है।
नहि रूप किञ्चित देखता, सुनता न कोई नाम है॥
नहि सोचता नहिं जानता, करता न कुछ करवाय है।
अभिमान जिसका जल गया, सो धीर शोभा पाय है॥

(५)

करता समाधी है नही, जिसमे नही विक्षेप है।
नहि मोक्ष ही है चाहता, रहता सदा निर्लेप है॥
सब विश्व कल्पित जानकर, नहिं चित्तको भटकाय है।
संलग्न रहता ब्रह्म मे, सो धीर शोभा पाय है॥

(६)

होता जिसे अभिमान है, सो नहिं करे तो भी करे।
अभिमान से जो शून्य है, करता हुआ भी नहिं करे॥
अभिमान से जो मुक्त है, सब कुछ करे करवाय है।
फिर भी नही कुछ भी करे, सो धीर शोभा पाय है॥

(७)

''चेष्टा करूँ, बैठा रहूँ,' उठता न यह-संकल्प है।
जो आय है सो लेय कर, नहिं चित्तमांहि विकल्प है॥
निज आत्म मे निश्चल रहे, नहिं क्षोभ मन मे लाय है।
करता हुआ भी नहिं करे, सो धीर शोभा पाय है।

(८)

उद्विग्न मन होता नही, सन्तुष्ट भी होता नही।
नि.शोक है, निर्मोह है, हँसता नही रोता नही॥
करता रहे है देह से, मन मे न हलचल आय है।
भोला! जहाँ होवे तहाँ, सो धीर शोभा पाय है॥

मरसे अमर हो जाय है !

(१)

साधन करे वहु भांति के, देहाभिमानी मूढ नर।
एकाग्र मन होता नही, भागे इधर से है उधर ॥
नर धीर नश्वर भोग में, मन ही नही भटकाय है।
अमरात्म में मन को लगा, मरसे अमर हो जाय है ॥

(२)

जब तक न जाने तत्त्व को, कोई सुखी होता नहीं।
मन होय वश अथवा नही, सुख से कभी सोता नही ॥
जो जान लेता तत्त्व को, संसार से सो जाय है।
होता तुरत ही है सुखी, मरसे अमर हो जाय है ॥

(३)

आत्मा अमर, परिपूर्ण है, अक्षय निरामय तत्त्व है
शिव शुद्ध है, अज बुद्ध है, ससार यह निस्तत्व है ॥
ऐसा विवेकी जान कर, निश्चिन्त हो सुख पाय है।
निज आत्म मे संतृप्त हो, मर से अमर हो जाय है ॥

(४)

हो मोक्ष नाही कर्म से, श्रम चाख वार उठाइये।
ऊँचे कभी चढ़ जाइये, नीचे कभी गिर जाइये ॥
नर धीर नश्वर कर्म मे, नहिं व्यर्थ दुःख उठाय है।
क्षण मात्र के विज्ञान से, मरसे अमर हो जाय है

(५)

जो ब्रह्म होना चाहता, नहिं प्राप्त होता ब्रह्म को।
जो होय इच्छा से रहित, सो तुरत पाता ब्रह्म को॥
निष्काम आत्माराम नर, झट ब्रह्म दर्शन पाय है।
तल्लीन होकर ब्रह्म मे, मर से अमर हो जाय है॥

(६)

ससारपोषक मूढ जन, श्रुतिवाक्य के आधार बिन।
करते हजारो यत्न है, छुटता नही ससार-बन॥
नर धीर सद्गुरु वाक्यपर विश्वास पक्का लाय है।
ससार की जड काटकर, मर से अमर हो जाय है॥

(७)

जो मूढ चाहे शान्ति को, सो मूढ शान्ति न पाय है।
अभ्यास करने से न सम्यक्, शान्ति मन मे आय है॥
त्यागी विवेकी प्राज्ञ नर, नहिं भोग मे ललचाय है।
निर्णय तुरत कर तत्त्वका, मरसे अमर हो जाय है॥

(८)

जो सत्य माने दृश्य, उसको आत्म दर्शन हो कहां।
मिथ्या जहा जग हो गया, आत्मा यहा आत्मा वहां॥
परिपूर्ण सबमे भासता, भ्रम भेद सब मिट जाय है।
भोला! मिटा भ्रमभेद जहँ, मरसे अमर हो जाय है॥

साम्राज्य अविचल पाय है।

(१)

देहाभिमानी मूढ़का नहिं होय चित्त निरोध है।
जब तक न होवे चित्त थिर, होता न सम्यक् बोध है ॥
तत्त्वज्ञ स्वात्माराम का, थिर चित्त झट हो जाय है।
होता सहज ही शान्त सो, साम्राज्य अविचल पाय है ॥

(२)

जग सत्य कोई मानता है, शून्य कोई मानता।
लाखों करोडों मध्य विरला तत्त्व को पहिचानता ॥
जो ब्रह्म को है जानता, सो ब्रह्म ही हो जाय है।
नहिं गर्भ मे फिर आय है, साम्राज्य अविचल पाय है ॥

(३)

संसारपोषक मूढ़ नर, चिन्तन करे है तत्त्व का।
नहिं तत्त्वको है जानता, नहिं मोह जाता चित्त का ॥
नर धीर संशय से रहित, कुछ भी न मनमे ध्याय है।
चिन्तनरहित हो जाय सो, साम्राज्य अविचल पाय है ॥

(४)

आधारबिन होता नही, जो मोक्ष को है चाहता।
जबतक न हो आधारबिन, नहिं तत्त्व तबतक पावना ॥
निष्काम आलम्बन रहित, स्व-स्वरूप मे टिक जाय है।
स्व-स्वरूपमे-टिक जाय सो, साम्राज्य अविचल पाय है ॥

(५)

शब्दादि व्याघन देखते ही मूढ नर भय खाय है।
एकाग्रताको सिद्ध करने, घुस गुहा में जाय है॥
नर धीर विषयन देखकर, किञ्चित् नही भय खाय है।
ऐसा विवेको सहज ही, साम्राज्य अविचल पाय है।

(६)

निर्वासना नर-केसरीको, दूरसे ही देखकर।
हाथी विपय भगजायँ है, कोई इधर कोई उधर॥
ज्ञानी विपय है भोगता, वशमे न उनके आय है।
रहता सदा निर्लेप सो, साम्राज्य अविचल पाय है॥

(७)

नि.शक निश्चल चित्त योगी, यत्न कुछ करता नही।
स्वाभाविकी सारी क्रिया, होती रहे हैं आप ही॥
सुखसे सुने, देखे, छुवे, सूँघे, सहज ही खाय है।
ऐसा विरागी प्राज्ञ नर, साम्राज्य अविचल पाय है।

(८)

मन शुद्ध निर्मल वुद्धि नर, नहिं ध्याय है न विचारता।
वेदान्त सुननेमात्र से ही, तत्त्वको निर्धारिता॥
मनवृत्ति ब्रह्माकार जिसकी, अन्य जो नहिं ध्याय है।
भोला नही सन्देह सो, साम्राज्य अविचल पाय है॥

है जन्म उसका ही सफल !

(१)

शुभ या अशुभ हो कार्य जो, जिस काल में आजाय है।
आग्रह बिना कर लेय है, नहिं सोच मन में लाय है॥
चेष्टा करे सब बाल ज्यों, नहिं इन्द्रियां होती विकल।
नहिं राग हो नहिं द्वेष हो, है जन्म उसका ही सफल॥

(२)

निर्द्वन्द्व सुख है भोगता, निर्द्वन्द्व पाता ज्ञान है।
निर्द्वन्द्व पाता नित्य सुख, पाता वही विज्ञान है॥
निर्द्वन्द्व होता है अचल, निर्द्वन्द्व होता है अटल।
निर्द्वन्द्व नर हो जाय जो, है जन्म उसका ही सफल॥

(३)

कर्तापना, भोक्तापना, जो आत्ममें नहिं मानता
मन-वृत्तियाँ सब क्षीण होती, आत्मको पहिचानता॥
मन-वृत्ति जिसकी क्षीण हो, अन्त.करण होवे विमल।
सो ही सुखी है विश्वमे, है जन्म उसका ही सफल॥

(४)

मानी तथा कामी जनोंका, चित्त रहता भ्रान्त है।
निर्द्वन्द्व निष्कामी पुरुष, रहता सदा ही शान्त है॥
निस्संगतासे वर्तता, जलमे रहे जैसे कमल।
ज्ञानी अमानी धन्य सो, है जन्म उसका हो सफल॥

(५)

ममता नही पुत्रादि मे, नहिं देह मे अभिमान है।
आसक्ति विषयो मे नही है, लाभ हानि समान है॥
है मान अरु अपमान सम, व्यवहार है सीधा सरल।
नहिं लेश जिस दम्भ छल, है जन्म उसका ही सफल॥

(६)

श्रोत्रीय ब्राह्मण देवता या तीर्थ का सेवन करे।
देवांगना, राजा तथा पुत्रादि का दर्शन करे॥
मन मे उठे नहिं वासना, ज्यो कूट जो रहता अचल।
त्यागी भले ही हो गृही, है जन्म उसका ही सफल॥

(७)

सेवक तथा पुत्रादि के उपहास से धिक्कार से।
मन मे न जिसके खेद हो नहिं हर्ष होवे प्यार से॥
रहता सदा ही एक-सा, आवे न जिसमे हल न चल।
सो वीर है, सो धीर है, है जन्म उसका ही सफल॥

(८)

हसता हुआ हसता नही, रोता हुआ रोता नही।
जगता हुआ जगता नही, सोता हुआ सोता नही॥
ऊपर विषादी भासता भीतर नही है चल विचल।
भोला! वहा है जी रहा, है जन्म उसका ही सफल॥

भव-सिन्धु से सो पार है।

(१)

सर्वत्र आत्मा देखता, आकार से जो हीन है।
अभिमान भी करता नही, होता न किञ्चित दीन है।
संकल्प करता है नही, नहिं आय चित्त विकार हैं।
होता न उसका नाश है, भव-सिन्धु से सो पार है॥

(२)

नर यज्ञ, नहि करता हुआ भी कर्म, होता व्यग्र है।
करता हुआ भी नहीं करे, सो ज्ञानियों से अग्र है॥
निज रूप में सलग्न मन, होता न विषयाकार है।
दीखे भले संसार मे, भव-सिन्धु से सो पार है॥

(३)

आनन्द से है बैठता, आनन्द से सो जाय है।
आनन्द से बाहर फिरे, आनन्द से घर आय है॥
आनन्द का आचार है, आनन्द का व्यवहार है।
भोजन करे सुख शान्ति से, भव-सिन्धु से सो पार है॥

(४)

करता हुआ व्यवहार सब, मन में न लाता क्षोभ है।
गम्भीर सागर की तरह, रहता सदा नि क्षोभ है॥
सब क्लेश मन के गल गये हैं, चित्त ब्रह्माकार है।
निर्वैर प्यारा सर्व का, भव-सिन्धु से सो पार है॥

(५)

नर अज्ञ विषयन त्यागता, फिर भी रहे आसक्त है।
नर प्राज्ञ विषयन भोगता, होता न विषयासक्त है॥
कर्तार ईश्वर मानता, बनता नही कर्तार है।
निर्लेप करता है क्रिया, भव-सिन्धु से सो पार है॥

(६)

देहाभिमानी मूढ नर, धन धाम से है भागता।
सुख प्राप्त करने के लिये पुत्रादिको है त्यागता॥
नहिं राग ही, नहि त्याग ही, नर धीर को दरकार है।
आशा पिशाची से छुटा, भव-सिन्धु से सो पार है॥

(७)

क्या सत्य है, क्या है असत्, सन्देह करता अज्ञ है।
यह सत्य है, यह है असत्, जाने भलीविधि विज्ञ है॥
जो तत्त्वको है जानता, ढोना नही भव-भार है।
देखे तमाशा विश्व का, भव-सिन्धु से सो पार है॥

(८)

कर्तापना भोक्तापना, सब देहका व्यापार है।
आत्मा सदा निर्लेप है, करता न कुछ व्यवहार है॥
जिस प्राज्ञका आरम्भ सब, प्रारब्ध के अनुसार है।
भोला! वही तत्वज्ञ है, भव-सिन्धु से सो पार है॥

(१)

सो धन्य है, सो मन्य है !

जो देखता सुनता हुआ, छूता हुआ या सूँघता।
खाता हुआ, पीता हुआ, जगत हुआ या ऊँघता ॥
समबुद्धि रहता है सदा, होता नहीं मन खिन्न है।
सो धीर है, सो वीर है, सो धन्य है, सो मन्य है ॥

(२)

जो धीर नर आकाश सम, रहता सदा निर्लेप है।
होता किसी भी काल में, जिसको नहीं विक्षेप है ॥
साधन सभी सो कर चुका, करना उसे नहिं अन्य है।
तत्वज्ञ सो, मर्मज्ञ सो, सो धन्य है, सो मन्य है ॥

(३)

सम्पूर्ण विषयन त्यागकर, जो ब्रह्म मे है लग रहा।
संसार से से है सो रहा, नि आत्म मे है जग रहा ॥
आनन्द अक्षय भोगता, जो नित्य एक अनन्य है।
योगी वही, ज्ञानी वही, सो धन्य है, सो मन्य है ॥

(४)

जो आप अपना जान करके आपमे ही मग्न है।
सतृप्त अपने आप मे है, आप मे सलग्न ह ॥
वस्ती बुरी लगती नही, रुचती नही आरण्य है।
सो शुद्ध है, सो बुद्ध है, सो धन्य है, मन्य है ॥

(५)

महदादि जितना है जगत्, केवल कथन ही मात्र है।
किञ्चित् यहाँ नहिं द्वैत है, अद्वैत है, चिन्मात्र है॥
चिन्मात्र सो मैं आप हूँ, मुझमे नही सो भिन्न है।
ऐसा जिसे विश्वास है, सो धन्य है, सो मन्य है॥

(६)

भ्रममात्र सारा विश्व है, परमार्थ से कुछ भी नही।
शिव तत्त्व, शाश्वत नित्य, फुरणामात्र ही है, हर कही॥
प्रज्ञानघन, आनन्दघन, अद्वैत एक अजन्य है।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, सो धन्य है, सो मन्य है॥

(७)

अभ्यास सो नर कर चुका, वैराग्य भी सो कर चुका।
कीन्हा श्रवण भी मनन भी, अरु ध्यान भी सो धर चुका॥
जिस धीर को यह ज्ञान है, ब्रह्मात्म प्रत्यगभिन्न है।
नहिं शेष उसको जानना, सो धन्य है, सो मन्य है॥

(८)

बहु रूपसे है भासता, निज आत्म को पहिचानता।
देहादि मे नहिं दृष्टि दे, सब दृश्य मिथ्या मानता॥
सो युक्त है, सो मुक्त है, सो ब्रह्म है ब्रह्मण्य है।
भोला! सभी सो पा चुका, सो धन्य है, सो मन्य॥

अवधूत किसका नाम है ?

(१)

ले देहसे मन बुद्धि तक, ससार जो है भासता ।
सो सर्व माया मात्र है, किञ्चित् नहि परमार्थता ॥
ममता अहता से रहित, जो प्राज्ञ नर निष्काम है ।
माया अविद्या से परे, अवधूत उसका नाम है ॥

(२)

अक्षय निरामय तत्त्व ही, सब विश्व में भरपूर है ।
सो तत्त्व सबका आप है, नहि पास है, नहि दूर है ॥
विद्या नही, नहि विश्व ही, नहि देह का कुछ काम है ।
सर्वात्म ही है देखता, अवधूत उसका नाम है ॥

(३)

मतिमन्द अति आयास से, मनको करे एकाग्र है ।
एकाग्रता छूटी जहां, होने लगे मन व्यग्र है ॥
जो द्वैत ही नहिं देखता, निश्चिन्त्य आत्माराम है ।
निरपेक्ष है, निर्द्वन्द्व है, अवधूत उसका नाम है ॥

(४)

नर मूढ सुनकर तत्त्व को भी, मूढता नहि त्यागता ।
आसक्त रहता भोगमे, नहि योग मे है लागता ॥
आत्मानुरागी धीर जिसको भोग से उपराम है ।
है योग उसको सिद्ध ही, अवधूत उसका नाम है ॥

(५)

ज्ञानाग्नि सम्यक् बालकर, सब कर्म दीन्हे है जला ।
निज तत्वको है जानता, ज्यो हाथ मे हो आवला ॥
करता रहे है कर्म सब, फिर भी न करता काम है ।
आकाश सम निर्लेप है, अवधूत उसका नाम है ॥

(६)

जिस निर्विकारी धीर मे, नहिं हर्ष है न विषाद है ।
नहिं काम है, नहिं क्रोध है, नहिं लोभ है, न प्रमाद है ॥
नहिं ग्राह्य है, नहिं त्याज्य है, नहि दण्ड है, नहिं साम है ।
नहिं पिण्ड, नहिं ब्रह्माण्ड ही, अवधूत उसका नाम है ॥

(७)

जिसमे नही कर्तापना, भोक्तापना, गम्भीरता ।
निर्भयपना, ज्ञानीपना, दानीपना, अरु धीरता ॥
मन धर्म सारे छोडकर, निज आत्म मे विश्राम है ।
नहिं भेद जिसको भासता, अवधूत उसका नाम है ॥

(८)

नहि स्वर्ग जहँ, नहिं है नरक, नहि लोक, नहि परलोक है ।
नहि वेद जहँ, नहिं वेद्य है, नहिं बन्ध है, नहि मोक है ॥
नहि विष्णु जहँ, नहि रुद्र है, नहिं ब्रह्म है, नहिं आत्म है ।
भोला ! नही श्रुति कह सके, अवधूत उसका नाम है ॥×

×अवधूत का तत्व यानी स्वरूप सब उपाधियो से रहित मन-वाणीका अविषय है ।

अवधूत की पहिचान क्या ?

(१)

नहिं लाभ की इच्छा करे, नहि हानिको चिन्ता करे।
जीवन नही है चाहता, नहि मृत्यु से किञ्चित् डरे॥
सतृप्त अपने आपमे, सम मान अरु अपमान है।
सम मित्र है, सम शत्रु, यह अवधूत की पहिचान है॥

(२)

निन्दा करे नहि दुष्टकी, स्तुति न करता शिष्टकी।
चिन्ता करे न अनिष्टकी, इच्छा करे नहिं इष्ट की॥
सुख दुःख दोनों एक सम है, स्वर्ण रेत समान है।
भ्रम-भेदसे अति दूर, यह अवधूत की पहिचान है॥

(३)

संसार से नहिं द्वेष है, निज दर्शकी नहि आस है।
संसार तो है ही नहीं, जो आप है, सो पास है॥
सर्वत्र आत्मा भासता नहिं दूसरे का भान है।
विद्या-अविद्या-मुक्त, यह अवधूत की पहिचान है॥

(४)

पुत्रादि में नहि नेह है, देहादिमे नहिं राग है।
इच्छा नही है भोग की, निज आत्म मे अनुराग है॥
ज्ञाता नही नहिं ज्ञेय है, भासे जिसे नहिं ज्ञान है।
त्रिपुटी रहित परिपूर्ण, यह अवधूत की पहिचान है॥

[५]

मिल जाय सो पी लेय है, आ जाय सो खा लेय है।
जो प्राप्त हो सो भोगता, नहिं लेय है, नहिं देह है॥
सन्तुष्ट मन, शीतल हृदय, गम्भीर धीर महान है।
निरपेक्ष, आत्माराम, यह अवधूत की पहिचान है॥

[६]

यह देह जावे या रहे, तत्त्वज्ञ नहिं चिन्ता करे।
जो आय है, सो जाय है, फिर सोच क्यो किसका करे॥
आत्मा नही है इन्द्रिया, आत्मा नही मन प्राण है।
जाने इन्हे निस्तत्त्व, यह अवधूत की पहिचान है॥

[७]

निज आत्म मे करता रमण, सशय कभी करता नही।
देखे तमाशा विश्व का, शिर बोझ है धरता नही॥
कल्याण सबका चाहता, अपना किया कल्याण है।
निर्द्वन्द्व है, स्वच्छन्द, यह अवधूत की पहिचान है॥

[८]

ममता अहता से रहित, कर्तापना, भोक्तापना।
सर्वज्ञता, अल्पज्ञता, सव जानता है कल्पना॥
भोला नही, ज्ञाना नही, नहिं ज्ञान नहिं अज्ञान है।
चिन्मात्र, संवित्-शुद्ध, यह अवधूत की पहिचान है॥

वैसा ही विरला जानता।

[१]

सम्पूर्ण विषयों से विमुख, मन मे न रञ्चक वासना।
सुख-सिन्धु में मन मग्न है जो आशका है दास ना॥
ब्रह्मादिकों के भोग को भी तुच्छ तृण सम मानता।
ऐसे विरागी धीर को, वैसा हि विरला जानता॥

[२]

नहिं देखता भी देखता, नहिं बोलता भी बोलता।
नहिं जानता भी जानता, नहिं डोलता भी डोलता॥
अभिमान करता भी कभी, करता नही अभिमानता।
ऐसे अमानी सन्त को, वैसा हि विरला जानता॥

[३]

स्वच्छन्द भी परतन्त्र है, परतन्त्र भी स्वच्छन्द है।
करता हुआ कर्ता नही, द्वन्दो सहित निर्द्वन्द्व है॥
करता रहे आरम्भ भी, आरम्भ नहिं है ठानता।
ऐसे परम गम्भीर को, वैसा हि विरला जानता॥

[४]

आत्मा-सुधा का पान करके तृप्त है जो हो गया।
नानापना है मिट गया, संसार जिसका खो गया॥
विक्षिप्त-सा है दीखता, जिसमें नही अज्ञानता।
ऐसे विवेकी भूप को, वैसा हि विरला जानता॥

(५)

सोता हुआ सोता नहीं, नहिं स्वप्न मे भी शयन है ।
जगता हुआ जगता नहीं, बेचैन में भी चैन है ॥
किञ्चित् न रखता पास, फिर भी पूर्ण है श्रीमानता ।
ऐसे अनोखे सेठ को, वैसा हि विरला जानता ॥

(६)

चिन्ता सहित है दीखता, फिर भी न चिन्तायुक्त है ।
मन बुद्धिवाला भासता, मन बुद्धि से निर्मुक्त है ॥
दीखे भले ही खिन्न, पर जिसमे नहीं है खिन्नता ।
गम्भीर ऐसे धीर को, वैसा हि विरला जानता ॥

(७)

नहिं है सुखी, नहिं है दुखी, रागी नहीं, न विरक्त है ।
साधक नहीं, नहिं सिद्ध ही, नहि बद्ध है, नहिं मुक्त है ॥
किञ्चन अकिञ्चन भी नहीं, नहिं शून्यता, नहिं पूर्णता ।
ऐसे निराले पूर्ण को, वैसा हि विरला जानता ॥

(८)

भिक्षुकपने राजा पने मे मानता नहिं भेद है ।
संसार मिथ्या स्वप्न है, ऐसा समझ बिनु खेद है ॥
शोभन अशोभन एक सम भोला । चतुर सम मानता ।
ऐसे अकथ अवधूत को, वैसा हि विरला जानता ॥

॥ समाप्तम् ॥

दूसरा भाग
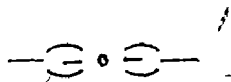
सतावे न माया नहीं काल ग्रास।
सुखी ही सुखी हो ! सदानन्द भासे ॥
तिहू ताप नाशें मिटे मैल जी का।
करो पाठ वेदान्त-छन्दावली का ॥

भोला

प्रकाशक :—
जनता पुस्तक भण्डार,
दरीबा कलां-देहली
अध्यक्ष—लक्ष्मीचन्द तायला

मूल्य ॥) आठ आने
आठवी बार
जून १९६२

मुद्रक—
कुमार फाईन आर्ट प्रेस,
११४३ चाह रहट, दिल्ली-६

निवेदन (प्रथम संस्करण से)

पीयूष पीना कौन नही चाहता ? पीयूष पीने से किसी की रुचि नहीं हटती। सब यह ही चाहते है कि पीते ही रहें यह तो कृत्रिम (नकली) अमृत की महिमा है, जिससे कुछ काल के लिए आपेक्षित अमृत्व प्राप्त होता है, अकृत्रम् अमृत की महिमा का तो कहना ही क्या है ? वह तो सर्वदा के लिये अजर अमर बना देता है। यह अमृत ब्रह्म है। उसका दूसरा नाम वेदान्त है। ब्रह्म और वेदान्त पर्यायवाचक है। यानी एक ही वस्तु के वाचक है। वाच्य-वाचक का अभेद होने से भी ब्रह्म वेदान्त ही है। उस वेदान्त रूप अमृत के पीने की सभी प्राणियो की इच्छा है, परन्तु जिस भाग्यवान के ऊपर ईश्वर की पूर्ण कृपा होती हैं, उसी पुण्यशाली को यह अमृत पीनको मिलता है अन्य तो उसका नाम भी सुन नहीं पाते। कोई चार-पाच वर्ष हुए उसी अमृत का निरूपण करने वाली वेदान्त छन्दावली का प्रकाशन हुआ है, जिसको आप सभी वेदान्त प्रेमियो ने मान दिया है। बहुत से प्रेमियो को निवेदक ने प्रति-दिन प्रातःकाल में स्नान करके गगा किनारे अध्ययन करते हुए देखा है। उसकी भव्यता तो उसकी स्वीकृति से ही प्रसिद्ध है। चार-चार पाच-पाच हजारो के तीन सस्करण तो गीता प्रेस से निकल चुके है। जगत पुस्तक भण्डार देहली से भी कई सस्करण निकल चुके है। फिर भी बहुत से प्रेमियो की इच्छा थी कि उसका दूसरा भाग भी निकले तो अच्छा हो। उनकी इच्छानुसार यह दूसरा भाग जगतपुस्तक भण्डार देहलीसे निकाला जा रहा है। इसकी भाषा पहिले से सरल और रुचिकर है। इसमे शका सामाधान भी दिखाया गया है आशा है, यह दूसरा भाग बहुत थोडी हिन्दी जानने वाले भाई बहनो का भी हितकर होगा और प्रेम से सब इसका पान करके नर जन्म सफल करेंगे। इति शुभम्।

—सकल चराचरानुचर, "भोला"।

पद्य-सूची

पद्य	पृष्ठ संख्या
मंगलाचरणम् (संस्कृत)	५
होती सफलता है वहां !	८
नमन	१०
अमृत-वर्षा	१२
मुसाफिर !	१४
महाशंका	१६
धन्य श्री गुरुदेव	१८
अखंड आत्मा ।	२०
मैं और मेरा ।	२२
विषयासक्त-बुद्धि !	२४
शिष्यत्व !	२६
उल्टी गंगा !	२८
जीता हुआ ही है मरा	३०
जीवन मुक्ति !	३२
सद्गुरु !	३४
काम	३६
भक्ति	३८
तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई	४०
अज्ञान से है भटकता	४२
मूर्खता !	४४
अब जाग जा ! निज रूप में	४६
मोक्ष-सुख !	४८
परमात्मा	५०
मूसलों से क्यों डरे ?	५२
फिर मन बता कैसे लगे ?	५४
जीव सृष्टि और ईश सृष्टि	५६
आश्चर्य	५८
ना मृत्यु उसको खाय है	६०
एक ही एक है	६२
यह काल है सबसे बली	६४
पण्डित उसी का नाम है	६६
भजरे उसे ही सर्वदा	६८
ज्ञानी बड़ा ही चकित है	७०
आम्रफल (आम)	७२
विषय विष	७४
हाय कितनी मूर्खता !	७६
यह कृष्ण का उपदेश है !	७८
चिन्ता मुझे किस बात की	८०
है दुःख केवल मूढ़ता !	८२
ज्ञान का माहात्म्य	८४
नर-जन्म किसका है सफल	८६
शिष्टाचार !	८८
किसका ज्ञान में अविकार है	९०
मिथ्या न यह संसार है !	९२
वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?	९४

॥ ओ३म् ॥

श्री परमात्मने नम

वेदान्त-छन्दावली

दूसरा भाग

— ❀ —

॥ मंगलाचरणम् ॥

यदनन्त मन तथ्य तथ्यमाद्यन्तमध्यगम् ।
समस्त साधुभिर्जुष्ट तमात्मानमुपास्महे ॥ १ ॥

आदौ मध्ये तथान्ते च चिराय परमोचितम् ।
यच्चारु मधुर पथ्य तमात्मानमुपास्महे ॥ २ ॥

यद्बुद्धे परमालोकमाद्यं यदमृत परम् ।
यदनुत्तम सौभाग्य तमात्मानमुपास्महे ॥ ३ ॥

अनेकत्त्व पिशाचेन चित्तवैधुर्य्यदायिना ।
यददृष्टमशुद्धेन तमात्मानमुपास्महे ॥ ४ ॥

यदुदर्कहित सत्यमनपायि गतभ्रमम् ।
दुरीहित दृशोन्मुक्तँ तमात्मानमुपास्महे ॥ ५ ॥

जाग्रत् स्वप्नसुषुप्तेषु तुर्य्यातुर्य्यातिगे पदे ।
सम सदैव सर्वत्र चिदात्मानमुपास्महे ॥ ६ ॥

प्रशान्तसर्वसकल्प विगताखिलकौतुकम् ।
वर्जिताशेषसरम्भ चिदात्मानमुपास्महे ॥ ७ ॥

सर्वसंकल्पफलद सर्वतेज.प्रकाशकम् ।
सर्वोपादेयसीमान्तं चिदात्मानमुपास्महे ॥ ८ ॥
निष्कौतुकं निरारम्भं निरीहं सर्वमेव च ।
निरंश निरहंकारं चिदात्मानमुपास्महे ॥ ९ ॥
सर्वावयवविश्रान्तं समस्तावयवातिगम् ।
अनारत कचद्रप चिदात्मानमुपास्महे ॥ १० ॥

घटे पटे तटे कूपे स्पन्दमानं सदातनौ ।
जाग्रत्यपि सुषुप्तस्थं चिदात्मानमुपास्महे ॥ ११ ॥
उष्णमग्नौ हिमे शीतं मृष्टमन्ने शितं क्षुरे ।
कृष्णध्वाते सितं चन्द्रे चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १२ ॥

आलोकं बहिरन्तस्थं स्थितं च स्वात्मवस्तुनि ।
अदूरमपि दूरस्थं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १३ ॥
माधुर्य्यादिषु माधुर्य्यं तीक्ष्णादपि तीक्ष्णताम् ।
गतं पदार्थजातेषु चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १४ ॥
सर्वस्यान्तस्थितं सर्वमप्यपारैकदर्पणम् ।
अपर्यन्तचिदारम्भं चिदात्मान भजाम्यहम् ॥ १५ ॥
त्रैलोक्य देहमुक्तानां तन्तुमुन्नतानतम् ।
प्राचरसंकोचकरं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १६ ॥

लीनमन्तर्बहि स्वाप्तान् क्रोडीकृत्यजगत्खगान् ।
चित्रं वृहज्ज लमिव चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १७ ॥
सर्वं यत्रेदमस्त्येव नास्त्येव च मनागपि ।
सदपद्रूपमेकं तं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १८ ॥
परमं प्रत्ययं पूर्णमास्पदं सर्वसम्पदाम् ।
सर्वाकारविहारस्थं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १९ ॥
स्नेहाधारमथोऽशान्तं जडवाताहनि भ्रमे ।
युक्तं मुक्तं च चिद्दीपं बहिरन्तर्भजाम्यहम् ॥ २० ॥
हृत्सरः पद्मिनी कन्दनन्तु सर्वाङ्ग सुन्दरम् ।
जनता जीवनोपायं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ २१ ॥
अक्षीरार्णव सँभूतमशशाङ्कमुपस्थितम् ।
अहार्यममृतं सत्यं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ २२ ॥
शब्दरूपरसस्पर्शगन्धैराभासमागतम् ।
तैरेव रहितं शान्तं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ २३ ॥
आकाशकोशविशदं सर्वं लोकस्य रञ्जनम् ।
न रञ्जनं नचाकाशं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ २४ ॥
महामहिम्ना सहितं रहितं सर्व भूमिभिः ।
कर्तृत्वे वाप्यकर्तारं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ २५ ॥

होती सफलता है वहीं !

[१]

मित्रो ! करो जो कार्य, सो सोचे बिना मत कीजिये।
आरम्भ पीछे कीजिये, पहिले समझ सो लीजिये॥
सोचे बिना, समझे बिना, होती सफलता है नहीं।
होता जहां सुविचार है, होती सफलता है वहीं॥

[२]

चिन्ता न कीजे चित्त मे, मन मे न शका लाइये।
नि:शक होकर कार्य कीजे, भय न किंचित् खाइये॥
जो मूढ़ चिन्ताग्रस्त हो सो, कार्य कर सकता नहीं।
चिन्ता जहां होती नहीं, होती सफलता है वहीं॥

[३]

जब तक न पूरा कार्य हो, उत्साह से करते रहो।
पीछे न हटिये एक तिल, आगे सदा बढ़ते रहो॥
उत्साह बिनु जो, कार्य हो, पूरा कभी होता नहीं।
उत्साह होता है जहाँ, होती सफलता है वहीं॥

[४]

आपत्तियां सब झेलिये, मत कष्ट से घबराइये।
हो मृत्यु का भी सामना, हटिये नहीं मर जाइये॥
कायर भगे रणक्षेत्र से, रणधीर हटता है नहीं।
होती जहां है वीरता, होती सफलता है वहीं॥

(५)

उपदेश लीजे प्राज्ञ से, मत अन्य को सिखलाइये।
व्याख्यान हा मत दीजिये, करि कार्य कुछ दिखलाइये ॥
बकवाद करने मात्र से, कुछ कार्य सरता है नही ।
जैसा कहै वैसा करे, होता सफलता है वही ॥

(६)

तनु में महा-आसक्ति हो, मन में हजारो कामना ।
लोलुप सदा हो भोग में, चाहे जगत् में नामना ॥
केवल उठाता बोझ ही, तो हाथ कुछ आता नही ।
होती जहां निष्कामता, होती सफलता है वही ॥

(७)

आसक्ति तन में हो नही, सब इन्द्रिया स्वाधीन हो ।
ना भोग की हो लालसा, मन ब्रह्म मे तल्लीन हो ॥
होता विरागी नर सुखी, रागी सुखी होता नही ।
होता जहाँ वैराग्य है, होती सफलता है वही ॥

(८)

गुरु-शास्त्र से जब ज्ञान हो, पीछे उसी का ध्यान हो ।
हो ध्यान से वैराग्य पर, तब तत्व सम्यक् ज्ञान हो ॥
भोला ! बिना गुरु-शास्त्र, सम्यक् ज्ञान नर पाता नही ।
होते जहाँ गुरु-शास्त्र है, होती सफलता है वही ॥

नमन ।

(१)

संसार मे है दीखता, फिर भी नहीं संसार में ।
व्यवहार करता है सभी, फंसता नहीं व्यवहार मे ॥
है देहधारी दीखता पर, वस्तुतः है रहित तन ।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूं फिर नमन !!

(२)

सुनता हुआ सुनता नही, ना बोलता भी बोलता ।
नही देखता भो देखता, नहिं डोलता भो डोलता ॥
चलता हुआ सा दीखता, फिर भी नही करता गमन ।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूं फिर नमन !!

(३)

नहिं जागता भी जागता, सोता हुआ सोता नहीं ।
हंसता हुआ हसता नही, रोता हुआ रोता नही ॥
त्यागी महा त्यागे नही, लेता न कुछ करता ग्रहण ।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूं फिर नमन ॥

(४)

अभ्यास करता योग का, फिर भी न करता योग है ।
भोक्ता सभी कुछ भोगता, फिर भी न करता भोग है ॥
विक्षिप्तसा है दीखता, पर है सदा एकाग्र मन ।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूँ फिर नमन !!

(५)

सलग्न रहता साख्य मे, नही साख्य से कुछ काम है।
अनुरक्त अपने आप मे, निष्काम आत्माराम है॥
मौनी महा, ध्यानी महा, नही ध्यान करता नहि मनन।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूँ फिर नमन॥

(६)

साम्राज्य भोगे वाह वा, भिक्षा करे तो वाह वा।
हाथी चढे तो वाह वा, पैरो चले तो वाह वा॥
चाहे रहे बस्ती नगर, चाहे वसे सुनसान वन।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हू फिर नमन॥

(७)

वहु युक्तिया है जानता, जाने घने दृष्टान्त है।
पर-पक्ष खडन मे कुशल, मडन करे सिद्धान्त है॥
है सिद्ध योगी पूर्ण फिर भी, अज्ञ-वालक सा चलन।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हू फिर नमन॥

(८)

शिव शिव कभी रटता रहे, जपता कभी हरिनाम है।
उच्चार करता ॐ, या जप से रहे उपराम है॥
करता रहे है चिंतवन, फिर भी न करता चिंतवन।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, भोला नमन कर फिर नमन॥

अमृत वर्षा ।

(१)

देखा बरफ भी वर्षता, जल वर्षता देखा घना ।
ओला तथा पाला कभी, रज वर्षता देखा सुना ॥
वर्षा भिगोती, मलिन करती, हाथ पग ठिठरावती ।
देखी विलक्षण आज वर्षा, मोद मन उपजावती ॥

(२)

आकाश से बिनु मेघ ही, क्या इन्द्र वर्षा कर रहा ?
क्या सिन्धु से निकला सुधा, सो कुंभ में से झड़ रहा ॥
इच्छा हुई क्या इन्द्र की, संतृप्त सब को कीजिये !
तिहुँ ताप से जो तप रहे, शीतल उन्हे कर दीजिये !!

(३)

बडभाग्य है नर-लोक का, अमृत की वर्षा गिर रही ।
ब्रह्मादि को दुर्लभ्य जो, मर को अमर सो कर रही ॥
नर भाग्यशाली पी रहे है, स्नान भी है कर रहे ।
मन मैल हँस हँस धो रहे, भव-सिन्धु से है तर रहे ॥

(४)

अद्‌भुत अमृत पावन-परम, पापी इसे नहिं पा सके ।
भवरोग के रोगी महा, नहिं पास तक भी आ सकें ॥
भव-ज्वर चढा निज शठन पर, कड़वा अमृत लगता उन्हे ?
नहिं छीट तक भी ले सकें, पोना रुचे कैसे तिन्हे ?

(५)

लेना चाहे अमृत कई, करने ग्रहण जब जांय है
नहिं पात्र रखते पास वे, रीते वहा से आंय हैं ॥
है आश उनकी व्यर्थ ही, नहिं पास जिनके पात्र ही ।
दुर्भाग्य पाकर, रत्न आकर, भी सहे दुख मात्र ही ॥

(६)

आते कई है पात्र लेकर, पात्र मे पर छेद है ।
भरते हैं अमृत पात्र मे, "जाता निकल सब" खेद है ॥
जाने कई नहिं अमृत को, ताने अमृत दुर्गन्ध को ।
पीते उसे है प्रेम से, धिक्कार ऐसे अन्ध को ॥

(७)

हैं धन्य वे ही धीर नर, जो हैं अमृत पहचानते ।
न्हाते उसी मैं नित्य ही, पीवें उसे सुख मानते ॥
पीकर अमृत होते अमर, ब्रह्माण्ड मे भर जावते ।
पी ज्ञान वर्षा अमृत सादर, विष्णु पदवी पावते ॥

(८)

वेदान्त की चर्चा है अमृत, गुप्त यह चिरकाल से ।
भोला ! लुटायी जा रही, बाजार मे कुछ साल से ॥
जो भाग्यशाली पान करते, कृत्य कृत हो जाय है ।
स्वराज्य निश्चल पायके, सुख नीद मे सो जाय है ॥

—

मुसाफिर !

(१)

आया जहाँ से सैर करने, हे मुसाफिर ! तू यहां।
था सैर करके लौट जाना, युक्त तुझको फिर वहां ॥
तू सैर करना भूल कर निज, घर बना कर टिक गया।
कर याद अपने देश को, परदेश में क्यों रुक गया ?

(२)

अज्ञान, कुलटा नारि से, सम्बन्ध तूने कर लिया।
बच्चे हुए, कच्चे हुऐ, जंजाल में है फस गया ॥
चें चें करें, में में करें, यह हँस रहा, वह रो रहा।
हे रे मुसाफिर ! चेत जा, गू मूँत क्यों है धो रहा ?

(३)

भडार तेरा सत्य है, व्यवहार तेरा सत्य है।
चैतन्य में करता रमण, तू मुक्त शाश्वत नित्य है ॥
सुख रूप है, निश्चिन्त है, क्यों हो रहा तू दीन है ?
भाई मुसाफिर ! शोक तज, तू सर्व चिन्ता हीन है ॥

(४)

सकल्प तेरा सिद्ध त्, वरदान दात सर्व का।
अज्ञान से अपने बंधा चाकर बना है सर्व का ॥
नहि याद करता आपको, दर दर भटकता फिर रहा।
आजा मुसाफिर ! होश मे, क्यो हाय हा है. कर रहा ?

(५)

फंस कर अविद्या जाल में, आनन्द अपना खो दिया।
न्हाकर जगत मल सिन्धु मे, रग रूप सुन्दर धो दिया।।
नि शोक है तू सर्वदा, क्यो मोहवश पागल भया ?
तजदे मुसाफिर ! नीद, जग, अब भी न तेरा कुछ गया।।

(६)

जिनको सहृद् तू जानता, सब शत्रु हैं सच मान रे।
जीते मरे भी कष्ट दे, हितकर न उनको जान रे।।
दे त्याग ममता सर्व की, सच झूठ को पहिचान रे।
हे रे मुसाफिर ! चेत, हितकर वाक्य पर दे ध्यान रे।।

(७)

आया यहां तू सैर करने, मार्ग अपना भूलकर।
खाता फिरे है ठोकरें, निज भूल अब निर्मूल कर।।
कर याद अपने धाम की, तू मत भटक अब दर बदर
श्रुति सत कहते हैं मुसाफिर ! मान सच विश्वास कर।।

(८)

सद्गुरु वचन शिर धार कर, व्यापार जग का छोड़ दे।
जा लौट अपने धाम मे, नाता यहाँ का तोड दे।
सद्गुरु वचन जो मानता, निश्चय अचल पद पाय है।
भोले मुसाफिर ! हो सुखी, क्यो कष्ट व्यर्थ उठाय है।।

महा शंका

शंका—

(१)

गुरु शास्त्र सब ही कह रहे, अद्वैत केवल तत्त्व है।
यह विश्व वन्ध्या पुत्र है, तिहूं काल मे निस्तत्त्व है ॥
शंका महा यह होय है, मस्तिष्क चक्कर खाय है।
यह भिन्नता कैसे हुई, नहिं कुछ समझ में आय है ॥

समाधान—

(२)

अज्ञान शंका रूप है, अज्ञान से संसार है।
संसार में तू फस रहा, जाने न सारासार है ॥
ज्यों दिन सभी को दीखता, उल्लू अन्धेरा जानता।
त्यों द्वैत मे जो है फंसा, अद्वैत नही पहिचानता ॥

(३)

अज्ञान से निकले जभी, अज्ञान जाना जाय तब।
अज्ञान ही रहवे नही, अज्ञान जाना जाय तब ॥
नहि द्वैत में रहते हुये, अद्वैत जाना जामा जा सके।
कैसे हुआ है द्वैत यह भी, नहिं समझ में आ सके ॥

(४)

अन्त करण निर्मल बना, गुरु वाक्य पर विश्वास कर।
गुरु वाक्य के अनुसार चल, वैराग्य कर अभ्यास कर ॥
मन शुद्ध ज्यो ज्यो हो गया, अज्ञान हटता जायगा।
अज्ञान जब हट जायगा, अद्वैत मे डट जायगा ॥

(५)

जैसे उजाले माँहि भी, कल्पा अंधेरा जा सके।
अद्वैत के भी माँहि त्योंही, द्वैत कल्पा जा सके॥
यह कल्पना अज्ञान है, माया यही कहलाय है।
जब एक के दो कर लिये, तब भिन्नता हो जाय है॥

(६)

जो कल्पना मे है पडा, सो देखता है भिन्नता।
है वस्तुता. अद्वैत ही, किंचित् नही है द्वैतता॥
नहि द्वैत मेरी दृष्टि मे, अद्वैत केवल भासता।
जो भासता ही है नही, उसका मुझे फिर क्या पता ?

(७)

फोटो ग्राफर कैमरे से, चित्र लाखो खीचता।
बन जाय हैं फोटो घनी, कैसे बनी तू ही बता॥
सच्चा उजाला नित्य है, उसका न होना जान तम।
सब मूर्तिया इन से बनी, जब से मिले दोनो विपम॥

(८)

ज्यो स्वप्न जग की भिन्नता, नहि नीद से है अन्य कुछ।
त्यो ही जगत की भिन्नता, अज्ञान से नहि भिन्न कुछ॥
अद्वैत ही अद्वैत है, भोला! जिसे अनुभव हुआ।
ससारसे सो तर गया, कैवल्य पद पर चढ गया॥

धन्य श्री गुरु देव।

(१)

अज्ञान दारु के नशे मे, भूल 'मै' निज को गया।
आसक्त होकर भोग में, मरता रहा, जन्मा किया॥
करता स्मरण था दुःख का, होता बहुत हो था दुखी।
है धन्य श्री गुरु देव जी, उपदेश दे कीन्हा सुखी॥

(२)

हीरा समझ कर कांच को, लेने उसे दौडा किया।
आशा घनी करता हुआ, भवजाल में है फ़स गया॥
ज्यों २ अधिक आशा करूँ त्यो २ अधिक होता दुखी।
है धन्य श्री गुरुदेव जी, उपदेश दे कीन्हा सुखी॥

(३)

सच्चा जगत था जानता, पावन अपावन मानता।
'सम्बन्ध सारे हैं मृषा' फिर भी उन्हे सच जानता॥
सच मान कर होता दुखी, चिल्लाय था घवराय था।
है धन्य श्री गुरुदेव जिन, बतला दिया जो हेय था॥

(४)

'मैं' सर्व में है भर रहा 'तू' का कहीं नही है पता।
कहते सभी 'मै' आपको; कोई नही 'तू' मानता॥
तू था नहीं! फिर भी मुझे, तू दुःख देता था महा।
है धन्य श्री गुरुदेव जी, अब दुःख सब जाता रहा॥

(५)

निरपेक्ष 'मै' ही सत्य है, सापेक्ष 'मैं' मिथ्या महा ।
सापेक्ष 'मै' सच मान कर, 'तू' 'तू' वृथा था कर रहा ॥
'तू' 'तू' सदा करता हुआ, 'मैं' श्वान सम भटका किया ।
है धन्य श्री गुरुदेव जी, अब स्वस्थ सत् हो 'मैं' गया ॥

(६)

था वस्त्र केवल सूत ही, नहो सूत से कुछ अन्य था ।
नहि भेद दोनों मे जरा, ताना न था वाना न था ॥
तो भी पडा मै मोह था, हाय कितनी मूर्खता ।
है धन्य श्री गुरुदेव जी, अब जानली मैं सत्यता ॥

(७)

मन के सिवा ससार कोई, सिद्ध कर सकता नहीं ।
मन के सिवा ससार की, नही सत्यता कुछ भी कही ॥
ससार तब है ही नही, नही जन्म है, नही है मरण ।
है धन्य श्री गुरुदेव जी, पातक हरण, तारण, तरण ॥

(८)

नहि एक होय अनेक कारण, दु.ख की हैं भिन्नता ।
माया यही काया यही, करती यही है खिन्नता ॥
नहि भेद भोला ! है यहा, अद्वैत है, एकत्व है ।
है धन्य श्री गुरुदेव जिन, दिखला दिया निज तत्व है ॥

अखंड आत्मा।

[१]

सबका प्रकाशक आत्म सो, कैसे किसी से ढक सकै?
माया अविद्या रूपिणी क्या, आवरण कुछ कर सकै॥
पीड़ा ग्रहादिक दें उसे, ऐसा कभी सम्भव नहीं।
वह तो अखण्डानन्द है, सत् चित् स्वरूप सदैव ही॥

[२]

क्या बन सकेगा अन्य कुछ, तज आत्म अपने रूप को।
भ्रम भी हटा क्या पायगा, उसके विशुद्ध स्वरूप को॥
सम्भव नहीं है वह स्वयं, अज्ञान या तम मात्र ही।
वह तो अखण्डानन्द है, सत् चित् स्वरूप सदैव ही॥

[३]

'अज्ञान का है स्थान कुछ, कैसे बनी यह भावना।
'है भूल में भी भूल की, क्या कुछ कभी सम्भावना॥
दो चेतना प्रिगता जनक्, फिर भूल यह सम्भव नहीं।
वह तो अखण्डानन्द है सत् चित्, स्वरूप सदैव ही॥

[४]

है रात औ दिन फिर कहाँ, सुख है कहां, दुख है कहाँ।
मैं और मेरा है कहा, तू और तेरा फिर कहां॥
यह कल्पना ही भेद है, है सत्य तो जो है वही।
वह तो अखण्डानन्द है, सत् चित् स्वरूप सदैव ही॥

(५)

माया न काया है कही, खडित कभी न अखंड है ।
जाने न जाने वा उसे, कुछ हानि लाभ उसे न है ॥
है हानि उसको विश्व में, जो मानता है हानि ही ।
वह तो अखडानन्द है, सत् चित्, स्वरूप सदैव ही ॥

(६)

जादू हमारे दृष्टि मे, वह है तिलस्मी 'मैं' नही ।
नटवर न है, लीला कही, उसकी जगत लीला नही ॥
लीला ग्रसित है जो स्वय, लीला उसे सर्वत्र ही ।
वह तो अखडानन्द है, सत् चित्, स्वरूप सदैव ही ॥

(७)

करतूत भय के भूत की, 'भय मे बसी' कब भूत मे ।
निर्भय न फसता है कभी, उस भूत वा करतूत मे ॥
निर्बल बना बन्धन मिला, चित् तत्त्व है निर्बन्ध ही ।
वह तो अखडानन्द है, सत् चित्, स्वरूप सदैव ही ॥

(८)

उन्माद जिसका मिट गया, भोला ! उसे ही चेत है ।
सत् शास्त्र, गुरु उपदेश हो, मद निर्गमन का हेतु है ॥
है स्वानुभव बतला रहा, 'जो था सदा' है अब वही ।
वह तो अखडानन्द है, सत् चित् स्वरूप सदैव ही ॥

मैं और मेरा

(१)

खैंची लकीर जहां कहीं, 'मैं' मध्य उसके धर दिया।
'मै' देव का स्थापन किया, अभिषेक उसका कर दिया॥
'मै' की प्रतिष्ठा हो गई, त्यों ही अचल वह हो गया।
आये पदारथ पास जो, मेरा बना उन को लिया॥

(२)

'मै' और मेरे के सिवा, जो दृष्टि के गोचर हुए।
तू और तेरा मान कर, 'मै' से पृथक् वे कर लिये॥
झूंठी लकीरें थी सभी, था भेद उनमे कुछ नही।
'मैं' और मेरा कर लिया, तू और तेरा भी कही॥

(३)

जो ध्यान देकर देखिये, ससार मात्र लकीर है।
संसार मात्र लकीर पर, ससार सर्व फकीर है॥
संसार का है ना पता, फिर भी बना डाला पता।
अनुभव करें सब दुःख का, है दुःख बिलकुल लापता॥

(४)

धन धामकी की कल्पना, अरु सीख लीन्हा धर्म भी।
करली खडी बहु कामना, लाखों बनाये कर्म भी॥
केवल नही की कल्पना, दृढ़ ठोस पक्के कर लिये।
हो जाय झूंठे नीद मे, जागे जहा फिर सच हुए॥

(५)

कोई कहे ईश्वर रचा जग, अन्य कहते कर्म ने।
कोई कहे माया रची, कोई कहे संकल्प ने॥
सब कह रहे है ठीक ही, फिर भी मुझे र्चता नही।
'मै और मेरे' के सिवा, देखा न जगकर्ता कही॥

(६)

नही तत्त्व के अज्ञान से, कुछ तत्त्व भग जाता कही।
बनता बनाने से नही, बिगडे बिगाडे से नही॥
जो है वही है नित्य ही, जो है नही, सो है नही।
'मै और मेरा' दुख है, है तत्त्व तो सुख रूप ही॥

(७)

'मै' बनत ही मेरा बना, बनना बिगडना छोड दो।
नहि धूल खाकर तृप्ति हो, अब धूल खाना छोड दो॥
क्यो धूल के पकवान खाकर, तृप्त होना चाहते।
क्यो धूल खाने के लिये, तुम धूल ढोना चाहते॥

(८)

'मै और मेरा दुखमय' तज मित्र दोनो दीजिये।
सर्वत्र ही भर जाइये, स्वराज्य अक्षय लीजिये॥
क्षुद्रत्व भोला ! जाय हट, आत्मत्व त्यो हो जाय छूट।
पूर्णत्व अनुभव होय झट, पूर्णत्व मे ही जाय डट॥

विषयासक्त बुद्धि

(१)

ब्याही हुई लडकी प्रथम, सुसराल भेजी जाय है।
माता पिता का छोड़ कर, जाना उसे नहिं भाय है ॥
सकुचाय है, घबराय है, रोवे तथा चिल्लाय है।
त्यो बुद्धि विषयासक्त भी, स्व-स्वरूप में नहीं जाय है।

(२)

बालक युवक विद्या पढ़न, जब पाठशाला जावता।
परतन्त्रता मे बैठने से, दु:ख मन में पावता ॥
है खेलना रुचता उसे, पढना जरा न सुहाय है।
त्यो बुद्धि विषयासक्त तेरी, आत्म से घबराय है ॥

(३)

ज्यों भूप के दरबार मे. सामान्य नर जब जाय है।
अनुचित न कुछ हो जाय, ऐसा सोच कर घबराय है ॥
नि:शक जा सकता नही, शका अनेक उठाय है।
त्यो बुद्धि विषयासक्त तेरी, आत्म से भय खाय है ॥

(४)

ज्यो चोर लेकर माल, चोरी का छिपा कर भागता।
पीछे न आती दौड़ हो, इस सोच से भय लागता ॥
आगे कभी पीछे चले, सीधा चला नहि जाय है।
त्यो बुद्धि विषयासक्त तेरी, आत्म से घबराय है ॥

(५)

व्यभिचार हितपर दार के, घर, जार कोई जाय है।
पति नारि का घर मे अचानक, बाह्य से आजाय है॥
तब जार के मन माहि जैसे, क्षोभ भारी आय है।
त्यो बुद्धि विषयासक्त तेरी, आत्म से भय खाय है॥

(६)

कोई मुसाफिर जा रहा है, बाल बच्चे साथ मे।
जोखो बन्धी है गाठ मे, हथियार नहि है हाथ मे॥
डाकू उसे ले घेर तब, ज्यो दहल मन मे खाय है।
त्यो बुद्धि विषयासक्त तेरी, आत्म से दहलाय है॥

(७)

पापी अधर्मी जन्म शत्, नहि आत्म दर्शन कर सके।
सुख शान्ति भी पावे नही, ससार से नहि तर सके॥
जब बुद्धि निर्मल होय है, तब आत्म रस चख पाय है।
आत्मानुरागी तज विषय, ससार से तर जाय है॥

(८)

जब बुद्धि जाती है बिगड़, भोला! बिगड सब जाय है।
जब बुद्धि होती शुद्ध है, तब शुद्ध सब हो जाय है॥
होवे विकार निवृत्त सब, तब बुद्धि होवे शुद्धतम।
तब बोध होय स्वरूप का, पद पाय सच्चित् शान्त सम॥

शिष्यत्व

(१)

गुरु सहज ही सब बन सके, पर कठिन बनना शिष्य है।
नहिं झूंठ मेरा है कथन, यह, किन्तु सम्यक् सत्य है॥
उपदेश लेने के लिये, कोई नही तैयार है।
उपदेश देने के लिये, हर एक ही हुशियार है॥

(२)

छोटे बड़े पण्डित अपढ, बठे सभी है गुरु बने।
उपदेश देने के लिये, कोई नही करता मने॥
उपदेश सब ही कर रहे, पर यह अचम्भा आय है।
उपदेश लेने के लिये, कोई न उन तक जाय है॥

(३)

सागर नदी सिखला रहे, पशु पक्षि दे शिक्षा रहे।
उपदेश पांचो भूत दे, गिरि, तरु लता समझा रहे।
कोई नही उपदेश ले, नहिं शिष्य कोई दीखता।
जो शिष्य सच्चा होय है, सब कुछ सभी से सीखता॥

(४)

जो शिष्य तो बनता नही, गुरु मात्र बनना चाहता।
वह कुछ नही है सीखता, सन्मार्ग से गिर जावता॥
जो शिष्य शिक्षा लेय है, सो सीख सब कुछ जावता।
गुरु होय गुरुओ का तथा, जग में बड़ाई पावता॥

[५]

है शिष्य लक्षरण कठिन, कोई शिष्य बिरला हो सके।
जो भाव अपना मेट दे, सो शिष्य सच्चा हो सके॥
सच्चा वही है शिष्य, जो सब कामनाये छोडता।
वैराग्य पूरा धारता, गुरु वाक्य मे मन जोडता॥

[६]

निज बुद्धि का अभिमान तज, गुरु वाक्य सच्चे जानता।
मन, कर्म वाचा भक्त गुरु का, ईश गुरु को मानता॥
गुरु वाक्य माही चित्त दे, गुरु चित्त ही बन जावता।
अर्पण करे सर्वस्व अपना, शिष्य सो कहलावता॥

[७]

शिष्यत्व लक्षरण युक्त हो, उपदेश सोई पाय है।
उपदेश गुरु का पाय के, परिपूर्ण निश्चय लाय है॥
निश्चय जहा पक्का हुआ, तहँ मर्म स खुल जाय है।
तत्त्वज्ञ होता शिष्य तो, गुरु आप ही बन जाय है॥

[८]

ब्रह्मज्ञ ने जो भाग्यशाली, शिष्य भोला[1] कर लिया।
प्राप्तव्य उनसे पा लिया, सब कर लिया, सब धर लिया॥
शिष्यत्व चाबी योग की, शिष्यत्व साधन ज्ञान का।
कारण वही है क्षेम का, दाता वही निर्वाण का॥

उल्टी गंगा

[१]

विश्रान्ति देवी पर चतुर नर, जो हुए आसक्त हैं।
करते उसी का संग, उसके रंग में ही रक्त है॥
एकान्त में करते रमण, क्षण भर न होय वियुक्त है।
कामी तथा रागी महा, वे होंय भव से मुक्त हैं॥

[२]

श्री विष्णु ज्यों नरसिंह बन, दी चीर छाती दैत्य की।
निज क्रोध कूँ कीन्हा प्रकट, रक्षा करी निज भक्त की॥
त्यों क्रोध बल से चीर छाती, देह दानव मोह की।
सो होय योगी मुक्त यह, महिमा महा है क्रोध की॥

[३]

मन कांचमणि अति तुच्छ, देता दुःख नहिं कुछ कामका।
है ज्ञान चिन्तामणि सुखद, बहु काम का, बहु दाम का॥
ऐसा समझ जो लोभ से, मन काँचमणि दे देय है।
ले ज्ञान चिन्तामणि तुरत ही, होय उसका श्रेय है॥

[४]

चैतन्य के अति मोह से, जो नर हुए उन्मत्त है।
नहिं देह नांही भोग-ना, धन मांहि देते चित्त है॥
क्या राज्य क्या ऐश्वर्य का, किंचित् न जिनको ज्ञान है।
हो जाय ऐसे मोह से, उनका तुरत कल्याण है॥

[५]

मुझ से परम कुछ भी नही, सब से परम मैं आप हूँ।
हूं शुद्ध नित्य प्रबुद्ध हू, निष्पाप हू, निष्ताप हू ॥
खोटा सभी ससार है, मैं एक केवल हू खरा।
मदयुक्त ऐसा मुक्त हो, इसमे नही सशय जरा ॥

[६]

जो आत्मदर्शी प्राज्ञनर, उत्कर्ष से निज तत्त्व के।
ससार की मिथ्या दमक, रचक सहन नहि कर सके ॥
ऐसा जिसे मत्सर हुआ, तत्त्वज्ञ सो हो जाय है।
मत्सर रहित सौ वर्ष तक, समता न उसकी पाय है ॥

[७]

कामादि सारे भाव हैं, इस जीव के सुख के लिये।
सर्वज्ञ ईश्वर क्यो रचे, कुछ दुख देने के लिये ?
सत्पुरुष पद सेवा बिना, नहि मर्म कोई पा सके ?
सेवा करे जो सत की, यह भेद सोई पा सके ॥

[८]

उल्टी वहाई आज गगा, यह किसी अवधूत ने।
हरिभक्त, शुचितम, सत, गुरु,पितु,मातु, पावन पूत ने ॥
जो न्हाय भोला ! प्रेम से, कामादि पर जय पाय हैं।
स्वराज्य निष्कटक लहै, नहि गर्भ में फिर आय है ॥

जीता हुआ ही है मरा

(१)

कुग्रन्थ पढ़ता मूढ जो, सत्शास्त्र है पढ़ता नहीं।
दुस्सङ्ग में रहता सदा सत्सग है करता नही॥
थोडा पढा पाण्डित्य के, अभिमान से जो है भरा।
लाखो मनोरथ कर रहा, जीता हुआ ही है मरा॥

(२)

ना जानता है जगत् को, ना आपको पहिचानता।
माया तथा मायेश का भी, है नहीं जिसको पता॥
दिन बोझ ढोया रात में, थक खाट ऊपर जा धरा।
या खा मरा, या लड मरा, जीता हुआ ही है मरा॥

(३)

खीचे कहीं को कान है, खीचे कही को नाक है।
खीचे कही को जीभ तो, खीचे कही को आंख है॥
खीचे कहीं को है त्वचा, मज्जन्रे जिसे वश में करा।
बहु पत्नियों का दास सो, जीता हुआ ही है मरा॥

(४)

आचार से तो भ्रष्ट है, ना धर्म किंचित् जानता।
इस लोक को सच्चा कहे, पर लोक नाही मानता॥
हिंसा करे है अन्य की, निज स्वार्थ मांही है खरा।
अपकीर्ति जिसकी हो रही, जीता हुआ ही है मरा॥

(५)

कोई करे है यज्ञ, कोई देय सादर दन है।
स्वाध्याय से, जप, शौच से, कोई करे कल्याण है॥
निज श्रेय मे जा लग गया, तर जायगा या है तरा।
ना जानता निज श्रेय जो, जीता हुआ ही है मरा॥

(६)

हरि नाम जपता प्रेम से, आनन्द अद्भुत पाय है।
गीता पढे या भागवत, मन मोद नित्य वढय है॥
सुख शान्ति का अनुभव करे, जो ईश का ले आसरा।
ले आसरा जो जगत् का, जीता हुआ ही है मरा॥

(७)

सुनता सदा जो तत्त्व को, करता उसी का है मनन।
अथवा निदिध्यासन करे, कहते जिसे है चिन्तवन॥
जीना उसी का है सफल, इस मे नही सशय जरा।
श्रवणादि कुछ भी ना करे, जीता हुआ ही है मरा॥

(८)

निज आत्म मे है जग गया, ससार से है सो गया।
सुख सिधु मे जो मग्न है, जीवत्व जिसका खो गया॥
घट योनि सम भवसिधु जो, दो चल्लुओ मे पी गया।
भोला ! नही मरता कभी, सो जो गया, सो जी गया॥

जीवन मुक्ति

(१)

अज ब्रह्म ने क्यो जन्म लीन्हा, हे गुरो ! बतलाइये ?
हू दास सच्चा आपका, जो मर्म हो जतलाइये ?
सुन शिष्य! केवल ब्रह्म, जीवन्मुक्ति के सुख के लिये।
है देह लीला से धरी, जग सैर करने के लिये॥

(२)

होता अविद्या नाम का, यदि यह कपट नाटक नही।
तो दुःख ना होता कही, सुख भी नही होता कही॥
ज्यों दुःख भोगे बाद ही, सुख स्वाद नर है जानता।
त्यो विश्व के जाने बिना, ना ब्रह्म सुख पहिचानता॥

(३)

ना देह है अद्वैत में, न विदेह माही द्वैत है।
ब्रह्मज्ञ जीवन्मुक्त देखे, द्वैत अरु अद्वैत है॥
न सदेह माहि विदेहता, न विदेह मांहि सदेहता।
दोनो ही जीवन्मुक्त माहि, सदेहता सह, विदेहता॥

(४)

यदि होय नाहिं विदेह, सो सहदेह जो है दीखता।
कैसे जनक सहदेह की, कहलाय शिष्य विदेहता ?
विनु देह की सह देहता, यदि होय नाही तो बता ?
कैसे विदेह सदेह भी, राजा जनक कहलावता ?

(५)

जैसे कही निर्मुक्ति है, तैसे हि जीवन्मुक्तता।
हो प्राप्त जोवन्मुक्ति, तव हो प्राप्त हो निर्मुक्तता ॥
कैवल्य ना हो ज्ञान विनु, ना मुक्त होय मरा हुआ।
जीते हुए ही ज्ञान हो, ता मुक्त है ीता हुआ ॥

(६)

सुख होय जीवन्मुक्ति का, कुछ काल हो ऐसा नही।
सनकादि जीवन्मुक्त रहते, कल्प भर हैं मुक्त हो ॥
विश्वेश का है खेल 'जीवन्मुक्ति' निर्णय हो चुका।
जो तत्त्व जीवन्मुक्ति का, सो हेतु है निर्मुक्ति का ॥

(७)

नारद तथा सनकादि उसमे, खेलते हैं सर्वदा।
ज्ञानी उसी मे आज कल, क्रीडा करे है नित्यदा ॥
निष्ठा न जिसको तत्त्व मे, वे हैं नही जनकादि मे।
चाहे भले बन मे रहें, तो भी नही सनकादि मे ॥

(८)

गम्भीर गुरु थोडा कहें, अमृत की वर्षा हैं करे।
वर्षात के ज्यो मेघ गरजें, मँद खेतो को भरे ॥
अद्वैत है या द्वैत है, भोला ! न कर सन्देह रे।
जो है वह दा, 'जो है' नही ना होय रे ॥

सद् गुरु !

(१)

साथी सगे सब स्वार्थ के है, स्वार्थ का संसार है।
निस्वार्थ सद्गुरु देव है, सच्चा वही हितकार है॥
ईश्वर कृपा होवे तभी, सद्गुरु कृपा जब होय है।
सद्गुरु कृपा बिनु ईश भी, नही मैल मनका धोय है॥

(२)

निर्जीव सारे शास्त्र सच्चा, मार्ग ही दिखलायँ है।
दृढ ग्रन्थि चिज्जड खोलने की, युक्ति नही बतलायँ है॥
निस्संग होने के सबब से, ईश भी रुक जाय हैं।
गुरु गाठ खोलन रीति तो, गुरुदेव ही बतलाय है॥

(३)

गुरुदेव अद्भुत रूप, है पर-धाम मांहि विराजते।
उपदेश देने सत्य का, इस लोक मे आजावते॥
दुर्गम्य का अनुभव करा, भव से परे लेजावते।
पर-धाम मे पहुचाय कर, स्वाराज्य पद दिलावते॥

(४)

छुड़वाय कर सब कामना, कर देय हैं निष्कामना।
सब कामनाओ का बता घर, पूर्ण करते कामना॥
मिथ्या विषय सुख से हटा, सुख सिंधु देते है बता।
सुख सिंधु जल से पूर्ण, अपना आप देते है जता॥

(५)

तनु, इन्द्रिया, मन, बुद्धि सब, सम्बन्ध छुडवा देयँ हैं।
अणु को वृहत् करि सूर्य ज्यो, जग माहि चमका देयँ है॥
आधार सारे विश्व का, सब का हि जो अध्यक्ष है।
सो ही बनाते जीव को, ब्रह्माण्ड जिसका साक्ष्य है॥

(६)

इक तुच्छ वस्तु छीन कर, आपत्तिया सब मेट कर।
प्याला पिला कर अमृत का, मर को बनाते है अमर॥
सब भाति से कृत कृत्य कर, परतत्र को निज तन्त्र कर।
अधिपति रहित देते बना, भय से छुटा करते निडर॥

(७)

कचन बनाते देह को, रज, मैल सब हर लेयँ है।
ले काच कच्चा हाथ से, कौस्तुभमणी दे देयँ हैं॥
इस लोक से, परलोक से, सब कर्म से, सब धर्म से।
पर तत्त्व मे पहुचाय कर, ऊचा करें है सर्व से॥

(८)

सद्गुरु जिसे मिल जाय, सोही धन्य है जग मन्य है।
सुर सिद्ध उसको पूजते, ता सम न कोऊ अन्य है॥
अधिकारी हो गुरु देव से, उपदेश जो नर पाय है।
भोला ! तरे ससार से, नहि गर्भ मे फिर आय है॥

काम

(१)

भोगें बहुत से भोग, बहु विध रूप लाखों धार कर।
फिर २ वही निशदिन चहै है, मन्द मोहित विषय पर॥
दुख पाय है, चिल्लाय है, यदपि न विषय विष तू तजे।
हे मूढ़ ! अब भी चेत कर, परब्रह्म को क्यों ना भजे॥

(२)

तू है समझता निडर हो, हम भोगते हैं भोग को।
भोगा गया तू भोग से, यों ही बढ़ाया रोग को॥
निःसत्त्व जब तू हो गया बे काम का जब रह गया।
तब भोग ने मारा तुझे, अरु-योनि को पलटा दिया॥

(३)

कुत्ता बना है काम का, दर दर फिरे अन्धा बना।
देखे नही सत् धर्म अरु, सत्शास्त्र पर भी भाव ना॥
सब होय बुड्ढे जगत् में, नहिं काम बुड्ढा हो कभी।
हो बुड्ढा उसके संग में, क्षण भर युवा होवे जभी॥

(४)

शर पांच ले तू हाथ मे, शिव शान्त को छलने गया।
तब नेत्र ज्वाला प्रकट करके, भस्म तुझ को कर दिया !!
फिर भी रहा तू सूक्ष्म मे, सब को जला कर मारता !
अत्यन्त तेरे नाश बिनु, नहिं शान्ति कोई धारता !!

(५)

हे काम ! जिस करके जगत् मे, जन्म तूने है लिया।
छोडे उसे भी तू नही, मन को विकारी कर दिया॥
तू अगहीन अनग है, तो भी महावल धारता।
यदि देह होता स्थूल तव तो, क्या न क्या कर डालता॥

(६)

जादू वहुत तुझ में भरा, कुछ का हि कुछ दिखलाय है।
दुर्गन्ध को शुभगन्ध कर, सुन्दर सुखद जतलाय है॥
रणवीर कायर हो गया, जो हाथ तेरे मे पडा।
अज्ञान मे वलवान् तू, पर-ब्रह्म से भी है बडा॥

(७)

दुःख का खजाना दुष्ट तू, सताप सब को देय है।
है धर्म नाशक, पाप पोषक, वुद्धि को हर लेय है॥
सेना सहित जहँ होय तू, वहा से भगावे राम तू?
गोता खिलाय अशान्ति मे, होने न दे आराम तू!!

(८)

जो जीत ले तुझ को, न ऐसा वीर है संसार मे।
सव देव तापस, ऋषि, मुनी हैं, दास तव दरबार मे॥
'भोला! जहा अद्वैत का, निश्चय सदा अपरोक्ष है।
तह जड सहित कट जाय है, यह सत का प्रत्यक्ष है॥

भक्ति

(१)

होता भजन है भक्ति से, है भक्ति ईश्वर भावना।
जब तक न होवे भावना, नहिं भक्ति की संभावना ॥
दुःख हारिनी, भव तारिनी, सुख कारिनी हरि भक्ति है।
पावन परम हरि भक्ति में, प्रतिबंध जग आसक्ति है ॥

(२)

सब मानते है ईश को, नित नाम जपते ईश का।
माला घुमाते, ध्यान भी करते कभी जगदीश का ॥
करते भजन हैं ईश का, जग वस्तुये है मांगते।
घर बार में, सुत-दार में, परिवार मे अनुरागते ॥

(३)

नहिं इसलिये करते भजन, हो ईश की संतुष्टता।
अपनी खुशी, अपनी गरज, की चाहते है पुष्टता ॥
इस लोक की, परलोक की, लाखो करोडों कामना।
ऐश्वर्य की है लालसा, या चाहते हैं नामना ॥

(४)

हो भक्ति कम संसार को, जगदीश में अनुराग हो।
अनुराग ज्यो २ ईश मे, हो जगत् से वैराग्य हो ॥
है ज्ञान साधक भक्ति का, पुनि भक्ति साधक ज्ञान को।
दोनों परस्पर पुष्ट हो, खोले सड़क कल्याण की ॥

(५)

जिस भक्त को इस भक्ति रस का, स्वाद जब आजाय है।
निस्सार यह ससार तब, दृष्टि मे आजाय है॥
ब्रह्मादि का ऐश्वर्य, मिट्टी तुच्छ सा हो जाय है।
प्रति रोम भीतर वाह्य तन मे, भक्ति रस भर जाय है॥

(६)

चढता नशा है भक्ति का, रग नेत्र दोनों जाय हैं।
जहँ जहँ नजर है डालता, भगवान सन्मुख आँय है॥
प्रभु प्रेम मे परिपूर्ण हो, सुध बुध सभी बिसराय है।
अपना पराया जाय छुट, प्रभुमय जगत् हो जाय है।

(७)

खटका नही है खान का, चिन्ता नही है पान की।
ममता नही है देह की, परवा नही है प्राण की॥
भगवान की है आश, बैठा पास है भगवान के।
भगवत करे सब काम ज्यो, माता पिता सँतान के॥

(८)

निजपन मिलाकर इष्ट मे, जो ईश के अर्पण हुआ।
सो इष्ट ही है हो गया, कुण्डल मिटा कचन हुआ॥
पद पाय शाश्वत विष्णु का, सो धन्य अति ही धन्य है।
पितु मातु ताके धन्य भोला! पूज्य सो जग मन्य है॥

तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई !

(१)

थे दान्त हाथी दांत सम, मजबूत हिलने लग गये।
जैसे गिरे छत की कडी, इक एक गिरने लग गये ॥
खूंटे गिरे, डाढे गिरी, बत्तीसि सारी गिर गई।
मुख हो गया है पोपला, तृष्णा नही बूढ़ी हुई ॥

(२)

आँखें हुई हैं धुंधली, पढना पढ़ाना बन्द है।
नहिं पास तक का दीखता, अब दृष्टि इतनी मन्द है ॥
कुछ भी नही अब सूझता, है रात दिन की हो गई।
आखे दिखाई आख ने, तृष्णा नही बूढो हुई ॥

(३)

अब कान आनाकानी की, ऊँचा सुनाई देय है।
जब कान पर चिल्लाय कोई, बात कुछ सुन लेय है ॥
सुनना सुनाना छुट गया, नहिं आश सुनने की गई।
बहिरे हुये है कान पर, तृष्णा नही बूढी हुई ॥

(४)

काया गली, झुर्री पडी, लोहू हुआ है लापता।
पग डिगमग ते चालते, कर कापते, सिर हालता ॥
ली हाथ लाठी बाँस की, धनु सम कमर है झुक गई।
काया हुई बूढ़ी मगर, तृष्णा नही बूढी हुई ॥

(५)

बेटे वहू विपरीत है, माने नही कोई कहा।
रोटी मिले नही वक्त पर, है स्वाद भी जाता रहा॥
बाबा मरा, माई मरी, है कूच पत्नी कर गई।
इज्जत गई, लज्जत गई, तृष्णा नही बूढी हुई॥

(६)

सब इन्द्रिया बलहीन है, नहि देह मे सामर्थ्य है।
नहि खा सके, नहि पी सके, सब भाति ही असमर्थ्य है॥
नहि हिल सके, नहि झुल सके, अब खाट तक भी कट गई।
मरना न फिर भी चाहता, तृष्णा नही बूढी हुई॥

(७)

पुत्रादि कहते हैं सभी, बुड्ढा बहुत दुख पाय है।
देता हमे भी कष्ट है, मर क्यो नही अब जाय है॥
मर जाय अच्छा होय, अब तो कष्ट की हद हो गई।
मन ठोस है, तनु खोखला, तृष्णा नही बूढी हुई॥

(८)

बुड्ढा मरण सब चाहते, बुड्ढा मरा ना चाहता।
धन-धाम के, कुल-ग्राम के, भोला मनोरथ ठानता॥
वाणी हुई है मन्द, नाही देह आसक्ति गई।
तरुणी हुई है वासना, तृष्णा नही बूढी हुई॥

अज्ञान से है भटकता !

(१)

यदि सत्य सुख है चाहता, तो आशा जग की छोड़ दे।
जग दुःख का भण्डार है, नाता जगत् से तोड दे॥
जब तक जगत् का भाव है, नहिं अन्त दुःख का आयगा।
अज्ञान से है भटकता, अज्ञान तज सुख पायगा॥

(२)

है जगत् तेरे चित्त में, नहिं जगत् तेरे बाह्य है।
बाहर जगत् तू मानता है, इसलिये दुःख पाय है॥
अज्ञान से सुख ढूंढता, अज्ञान से होता दुःखी।
अज्ञान से है भटकता, अज्ञान तज होगा सुखी॥

(३)

धारण किया जग भाव तूने, आप को है ढक लिया।
अज्ञान से ढक आपको, तू जीव अज्ञानी भया॥
बन जीव संसारी हुआ, जग भाव को अब त्याग रे!
अज्ञान से है भटकता, अज्ञान से बच भाग रे!!

(४)

संसार यह निस्सार है, संसार मे मत राग कर।
अभ्यास से, वैराग्य से, स्व-स्वरूप में अनुराग कर॥
नहि लाभ कुछ नहिं हानि, तेरी अन्य के संसार से।
अज्ञान से है भटकता, तू दूर सुख भण्डार से॥

(५)

जो ईश की है सृष्टि, उसकी सृष्टि अपनी मानता ।
जो मुख्य तेरी सृष्टि है, उसको नहि पहिचानता ॥
दे त्याग अपनी सृष्टि ईश्वर सृष्टिबाधक हैं नहीं ।
अज्ञान से है भटकता, नहि अज्ञ को सुख है कहीं ॥

(६)

कर द्वैत की तू कल्पना, अद्वैत से है छुट गया ।
है तू बृहत् छोटा हुआ, इस देह मे है बन्ध गया ॥
अज्ञान से अपने बँधा, इसका तुझे नहिं होश है ।
अज्ञान अपने से भटकता, फिर रहा बेहोश है ॥

(७)

जब तक रहे है स्वप्न मे, नहि स्वप्न मिथ्या हो कभी ।
सुख दुःख जो हो स्वप्न मे, सो भासता सच्चा सभी ॥
सोता रहे है जब तलक, नहि मुक्त दुःख से होयगा ।
अज्ञान निद्रा मे पडा, नहि नीद सुख की सोयगा ॥

(८)

जागे नही है जब तलक, नहिं स्वप्न मिथ्या होय है ।
स्व-स्वरूप का विज्ञान ही, अज्ञान निद्रा खोय है ॥
स्व-स्वरूप मे जग जाय भोला ! स्वप्न जग भग जायगा ।
निर्मूल दुःख हो जायगा, अविचल परम पद पायगा ॥

मूर्खता !

[१]

मरते हुये सब देखता, बचना न कोई जानता।
तो भी मरा नहिं चाहता, मर को अमर है मानता॥
सब को दुखी है देखता, फिर दुख से घबरावता।
दुःख को नही दुख मानता, कितनी बड़ी यह मूर्खता॥

[२]

ज्यों सूर्य हो होकर उदय, फिर साझ को छिप जावता।
त्यों ही सभी हैं घूमते, कोई नही थिर भासता॥
यह देह मिट्टी का बना, दिन रात गलता देखता।
फिर भी न नश्वर जानता, कितनी बड़ी यह मूर्खता॥

[३]

ज्यों वुद्वुदा क्षण मे बने, क्षण मे बिगड फिर जावता।
क्षणमात्र ही है दीखता, नहि दृष्टि में फिर आवता॥
त्यो वुद्वुदा यह देह भी, क्षण मात्र मे ही टूटता।
ममता, अहता, राग इस मे, क्या नही यह मूर्खता ?

[४]

ना आप को संसार मांही, मूर्ख कोई मानता।
ज्ञानी स्वयं को जानता, है अज्ञ पर को जानता॥
मैं कौन हूं, नही जानता, निज पर नही पहिचानता।
विपरीत है सब देखता, कितनी बड़ी यह मूर्खता॥

(५)

यह राज्य, धन, ऐश्वर्य सब, है चार दिन का चादना ।
नहि मोह अधियारा कभी, भी चाहते है टालना ॥
दें दुख वे 'सुख जानि के', लेने जिन्हे है दौडता ।
पहिचानता नहि हित अहित, कितनी बडी यह मूर्खता ॥

(६)

मांसादि का यह देह 'मै', हू आप ऐसा मानता ।
इस देह के सम्बन्धियो को, बन्धु अपने जानता ॥
ममता, अहता दुख है, यह ही नरक कहलावता ।
अज्ञान कहलावे यही, यह ही बडो है मूर्खता ॥

(७)

ज्यो ढोल मे है पोल, त्यो ही पोल मे ससार है ।
डडा लगे आसक्ति का, तब होय चिल्ल-पुकार है ।
आसक्ति दुख का मूल है, आसक्त दुख नर पावता ।
आसक्ति कू बधन न जाने, यह बडी है मूर्खता ॥

(८)

नहि शोक हो नहिं मोह हो, ज्ञानी सदा रहता सुखी ।
धर्मादि कुछ करता नही, भोला ! नही होता दुखी ॥
जब जान लीन्हा तत्त्व निज, ना लेश रहतो दीनता ।
स्वच्छन्दता, निर्द्वन्दता, आनन्द परम सुहावता ॥

अब जाग जा ! निज रूप में ॥

(१)

सत्शास्त्र कहते जगत् मिथ्या, स्वप्न सम निस्सार है।
निद्रा भयानक व्याधि है, आपत्ति का भण्डार है॥
लू जेष्ठ की सी चल रही, क्यो सो रहा है धूप मे ?
हे पथिक ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निज रूप में !!

(२)

कहते अमानी सन्त भी, निद्रा महा अज्ञान है।
त्यागे बिना अज्ञान निद्रा, होय नहीं कल्यान है॥
आँखों सहित अन्धा हुआ, क्यों गिर रहा भव कूप में।
हे पथिक ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निज रूप में ॥

(३)

जब कष्ट पड़ता आन के, कहते जगत् मिथ्या जभी।
संसार है निस्सार बालक युवक कहते वृद्ध भी॥
अनुभव करे तू आप दु.ख का, रक मे अरु भूत में।
हे पथिक ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निज रूप मे !!

(४)

दिन रात डण्डा कष्ट का, है खोपड़ी पर बाजता।
नित शख गूंजे मृत्यु का, यम का नगाड़ा गाजता॥
नित कामना विच्छिन्न डसे, है मग्न पापड़-पूप में।
हे पथिक् ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निज रूपमें !!

(५)

भोगे सदा तू कष्ट गाढी, नीद मे है सो रहा।
जजीर आशा में बंधा, सर्वस्व अपना खो रहा ॥
आसक्ति ने तुझ को गिराया, है अन्धेरे घूप मे।
हे पथिक ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निज रूप मे ॥

(६)

तव दुर्ग तनु मे चोर, डाकू, ठग हजारो भर रहे।
तव दिव्य समग्र लूटते, आनन्द धन हैं हर रहे ॥
सुन्दर असुन्दर तू हुआ, करि राग रूप कुरूप में।
हे पथिक ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा निज रूप मे ॥

(७)

आया समय अब खोल, आखे मोह निद्रा छोड दे।
जा जाग, भव से भाग, अब नाता जगत् से तोड दे ॥
पछतायगा, दुख पायगा, रुचि मान ओदन-रूप मे।
हे पथिक ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निज रूप मे !!

(८)

सत्शास्त्र के सुन वाक्य सत्, निर्मल हुआ अन्त करण।
त्यागी भयकर नीद 'जागा पथिक' गुरु की ली शरण ॥
निज रूप में जाग्रत हुआ, कर प्रेम देव अनूप मे।
पाया भोला ! राज्य अविचल, जाग कर निज रूप मे ॥

मोक्ष सुख !

प्रश्न ?

(१)

सबसे अधिक है मोक्ष सुख, दुःख का न उसमे लेश है।
आनन्द का भण्डार पूरण, शान्ति मात्र प्रदेश है॥
ऐसा कहे हैं बहुत से, एकान्त सेवन कर रहे।
संसार से मुख मोड़ कर, आलस्य मे है मर रहे॥

(२)

आता नही है समझ में, कुछ बुद्धि चक्कर खाय है।
जो सुख यहां है सो वहां, बिनु भिन्नता न जनाय है॥
त्रिपुटी रहित यदि होय सुख, तो भान हो सकता नही।
भोक्ता बिना हो भोग ऐसा, 'भोग' नही देखा कही॥

उत्तर !

(३)

भाई ! नही तू जानता, क्या मोक्ष पद का अर्थ है।
है अर्थ छुटना मोक्ष का, छूटा हुआ हो मुक्त है॥
चाहे भला क्यो छूटना, बन्धन जिसे नहि भासता।
बन्धन नहि सूझे तुझे, क्या मोक्ष से फिर वासता ?

(४)

संसार मे दुःख के सिवा, बन्धन नहि है दूसरा।
अज्ञान से संसार है, संसार में दुःख है भरा॥
अज्ञान हो दुःख रूप है, अज्ञान ही भव कूप है।
अज्ञान छुटना मोक्ष है, सुख मोक्ष अनुभव रूप है॥

(५)

जग हेतु है भव दुःख का, अज्ञान का जग कार्य है।
अज्ञान सह जग नाश सम्यक् मोक्ष सो कहलाय है॥
जड़ भिन्न हो सुख भान सो, ब्रह्मा पितामह लोक में।
सो मोक्ष नहिं है वास्तविक, पूरा नहीं निःशोक है॥

(६)

सुखरूप आत्मा है सभी का, दुःख न उसमे लेश है।
अज्ञान से छुप है गया, भासे इसी से क्लेश है॥
अत्यन्त दुःख का नाश हो, दुःख हो न तीनो काल मे।
सो मोक्ष ही सुख रूप है, सम एक रस हर हाल मे॥

(७)

सुख चाहते हैं सर्व, दुःखाभाव को सुख मानते।
सुख जानते है जगत् का, संपूर्ण सुख नहिं जानते॥
दुःख से मिला सुख भासता, इससे जगत् दुःख रूप है।
है मोक्ष सुख का पूर्ण सागर, नित्यचित् सुख रूप है॥

(८)

है निर्विषय सुख नींद का, आनन्द मे प्रतिबिम्ब सो।
है मोक्ष सुख अक्षय स्वयं ही, सिद्ध चिद्घन बिम्ब सो॥
अज्ञान या प्रतिबिम्ब से, नहिं निर्विकल्प मिला हुआ।
सुखमात्र केवल मोक्ष भोला! है नहीं कल्पा हुआ॥

परमात्मा

(१)

परमात्मा ! केवल एक तू, बहुरूपिया बन जाय है।
तू आप अपने मे अनेकों, कल्पना दिखलाय है॥
माया नटी क्रीडा करे, क्रीड़ा तुही करवाय है।
मायी तुही, माया तुही, आश्चर्य है, आश्चर्य है॥

(२)

तू है परम अव्यक्त तो भी, व्यक्त सा है भासता।
हो जाय है तू व्यक्ति तो भी, व्यक्ति से नहि वासता॥
तुझ ठोस में भी पोल यह, माया मरी दिखलाय है।
माया नही, नहिं पोल है, आश्चर्य है, आश्चर्य है॥

(३)

परमात्म ! तू दानी महा, दाता न तुझ सा कोय है।
जो भक्त भजता है तुझे, सो रूप तेरा होय है॥
सच्चित् तथा आनन्दघन, अद्वैत इकरस होय सो।
सोऽहं अह सो जो भजे नर, धन्य है अति धन्य सो॥

(४)

परमात्म ! तू ही सर्व है, सब विश्व तू ही धारता।
तू पुत्र, पुत्री, बन्धु तू, माता तुही, तू ही पिता॥
जो स्वर्ग अथवा नरक है, घर-धाम-धन या धान्य है।
जब भेद तज कर देखते, तेरे सिवा नहिं अन्य है॥

(५)

परमात्म ! तेरे शास्त्र हैं, तू शास्त्र मे नहि आय है।
है शब्द से तू दूर फिर भी, शब्द लक्ष कराय है ।।
मन बुद्धि अथवा चित्त से, जाना नही तू जाय है।
सच्चा मुमुक्षू बुद्धि द्वारा, वोध फिर भी पाय है ।।

(६)

परमात्म ! जगदाधार ! जग का भार तू करवाय है।
जब पूर्ण तेरा भान हो, तब भेद सब उड जाय है ।।
आधार तू है जगत् का, आधार तू जगदीश का।
आधार माया का तुही, आधार मायाधीश का !!

(७)

परमात्म ! तुझ को जान ले, सो जान सब कुछ जाय है।
तुझ को नही जो जानता, भव सिन्धु गोते खाय है !!
सुखरूप तेरा ज्ञान है, दुखरूप तव अज्ञान है !
अज्ञान तव अज्ञान सबका, ज्ञान तव सब ज्ञान है !!

(८)

परमात्म ! तुझको जान कर, भोला अगर हो जाय है !
इस देह मे रहता हुआ भी, विश्व मे भर जाय है !!
सब भूप का भी भूप सो, स्वच्छन्दकृत पुरुपार्थ है !
सार्थक उसी का जन्म है, साधा वही परमार्थ है !!

मूसलों से क्यों डरे ?

[१]

कोई कही पर गर्भणी, बच्चा जभी जनने लगी।
पीडा हुई अत्यन्त जब, हाय ! हा करने लगी॥
बोली पड़ोसन धैर्य धरि, बहिना रुदन अब मत करे।
जब ओखली में सिर दिया, तब मूसलों से क्यों डरे ?

[२]

रावण बहिन लज्जा रहित, मोहित हुई थी काम से।
जाती लखन पे थी कभी, मिलती कभी थी राम से॥
निर्लज्ज पूरा होय जो सो नाक का फिर क्या करे।
जब ओखली मे सिर दिया, तब मूसलो से क्यो डरे ?

[३]

थे सैन्य दोनों सामने, रण शख भी थे बज चुके।
हिंसा समझ गुरु आदि की, अर्जुन हुआ वश मोह के॥
श्री कृष्ण बोले मूढता तज, क्लैव्यता से क्या सरे।
जब ओखली मे सिर दिया, तव मूसलो से क्यो डरे ?

[४]

भिक्षा रहा है माँग भिक्षुक,, सेठ गाली बक रहा।
भिक्षुक नही कुछ बोलता, मुख सेठ का है ताकता॥
धन धाम हो सब तज दिये, तब क्रोध लेकर क्या डरे।
जब ओखली मे सिर दिया, तब मूसलो से क्यों डरे ?

(५)

स्वच्छन्दता उत्तम महा, सबसे बुरी परतन्त्रता ।
पर पेटधारी एक भी, स्वच्छन्द नाही दीखता ॥
है पेट यह भारी बला जैसे बने वैसे भरे ।
जब ओखली मे सिर दिया, तब मूसलो से क्यो डरे ?

(६)

निज धर्म निश्चय पुण्य है, पर-धर्म निश्चय पाप है ।
निज धर्म का पालन करे, सो धीर नर निष्पाप है ॥
यमराज की पदवी मिले, तो कौन ना हिसा करे ?
जब ओखली मे सिर दिया, तब मूसलो से क्यो डरे ?

(७)

है ओखली यह देह, शिर देना कहा तन धारना ।
जह देह है तह दुख है, यह सत्य है निर्द्धारणा ॥
सहले खुशी से दुख जो, सो दुख से होवे परे ।
जब ओखली मे सिर दिया, तव मूसलो से क्यो डरे ?

(८)

यदि मोक्षपद तू चाहता, ब्रह्माण्ड पर धर आग रे ?
घर-पुत्र-दारा छोड दे, ममता, अहता त्याग रे ॥
भोला ! न जीता मर सके, ससार से तो ना तरे !
जब ओखली मे सिर दिया, तव मूसलो से क्यो डरे ?

फिर मन बता कैसे लगे

(१)

चिन्ता हजारों लग रहीं, सुत-दार की, परिवार की !
तृष्णा कभी घटती नही, है भूख 'दो खा' चार की !!
पीछे लगे हैं चोर जो, कहलाय हैं साथी सगे !
श्रीराम, शिव या कृष्ण में, फिर मन बता कैसे लगे ?

(२)

अच्छा लगे पीना तुझे, अच्छा लगे खाना तुझे !
अच्छा लगे है नाचना, अच्छा लगे गाना तुझे !!
दुस्सग में दौडे सदा, सत्संग से कोसों भगे !
निस्सग, निर्मल देव मे, फिर मन बता कैसे लगे ?

(३)

माया नटी ने है नचा, नाटक अनोखा यह जगत् !
जो देखता फस जाय सोई, भूल जाता सत असत् !!
देखे हजारों चित्र निशदिन, रंग लाखों से रंगे !
वे रग मे, वे रूप मे, फिर मन बता कैसे लगे ?

(४)

बोला युधिष्ठर झूठा आधा, रथ उसी क्षण गिर गया।
अपकीर्ति फैली विश्व मे, मन भी तुरत मैला भया ॥
बोले सदा ही झूठ जो, दिन रात लोगो को ठगे !
सच्चे अमल शिव शुद्ध में, फिर मन बता कैसे लगे ?

(५)

थोथे पढे पोथे सदा, पढता नही सद्ग्रन्थ है ।
करता सदा तप तामसी, ना जानता सत्पन्थ है ॥
पीता नही है भक्तिरस, ना ज्ञान गुड में ही पगें ।
अनुपम, निरामय ब्रह्म में, फिर मन वता कैसे लगें ?

(६)

व्यवहार सच्चा जानता, क्षर देह अक्षर मानता ।
ससार मे सुख ढूँढता, सुख-रूप शिव ना जानता ॥
विश्वेश मे तो सो रहा है, विश्व माही है जगे ।
निष्कल निरजन तत्त्व मे, फिर मन वता कैसे लगे ?

(७)

है देह तीनो रोगमय, तीनो अवस्थायें स्वप्न ।
विश्वादि तीनो कल्पना, आत्मा अमर चैतन्यघन ॥
ऐसा तुझे हो ज्ञान तब हो, भाग्य तव सोया जगे ।
पावन-परम शिवशान्त मे, फिर मन नही कैसे लगे ?

(८)

वाहर नही है सुख जरा, सुख-सिन्धु भीतर है भरा ।
नर मूढ वाहर खोजता, ज्यो हरिण कस्तूरी भरा ॥
सुख-सिन्धु यदि मन देखले, तो फिर नही वाहर भगे ॥
भोला ! चलाये से 'कभी भी ना चले' ऐसा लगे ॥

जीव सृष्टी और ईश सृष्टी ?

(१)

ना ईश सृष्टी बांधती, न दुःख काऊ देय है।
सब के लिये है एकसी, करती सभी का श्रेय है ॥
बधन करे है जीव सृष्टी, दुःख भी देतो है वही ।
सब के लिये ना एकसी प्रत्येक की है भिन्न ही ॥

(२)

है जीव सृष्टी मानसी, अरु ईश सृष्टी बाह्य है।
मन में रहे है दु.ख सुख, बाहर नजर ना आय है ॥
अन्तःकरण को वृत्ति से, है ईश सृष्टी भासती।
साक्षी प्रकाशे जीव, सृष्टी भ्रात माहि भासती ॥

(३)

मणि एक बाहर दीखती, ज्ञानी नही छूता उसे ।
ज्यों धूल उसको जानता, है त्याग देता दूर से ॥
रागी उठाने दौड़ते, जो पाय सो होता सुखी ।
ना पाय तो शिर ठोकता, मन माँहि भी होता दुखी ॥

(४)

जो ईश सृष्टी माहि है, सो एक मणि सामान्य है।
होता सुखी पा एक नर, होता दुःखी नर अन्य है ॥
तीजा नही होता सुखी, ना दु.ख ही है मानता।
लाता न मन मे क्षोभ है, सम दुःख सुख है जानता ॥

आश्चर्य ।

(१)

छुपता कभी भी है नही, सब से प्रथम है भासता ।
सब को उजाला दे रहा, रवि चन्द्र आदि प्रकाशता ॥
सब से परम प्रत्यक्ष है, हरदम दिखाई दे रहा ।
देखा न कोई आज तक, आश्चर्य कैसा है महा ॥

(२)

सबको सदा ही जानता, फिर भी न कुछ भी जानता ।
है आप अपना आप फिर भी, अन्य निज को मानता ॥
करता नही कुछ भी कभी, करता सभी कुछ आप ही ।
है ब्रह्म दीखे है जगत् आश्चय आता है यही ॥

(३)

कारण परम ब्रह्माड का, सच्चा स्वय-सबसे खरा ।
सव विश्व जिसमे कल्पना, सबमे रमा, सब मे भरा ॥
ज्यों सर्प के अभ्यास से, सत् रज्जु छुप सी जाय है ।
सत् को छुपाया असत् ने, आश्चर्य यह हो आय है ॥

(४)

निश्चल सदा चलता नही, सबमे अधिक है दौडता ।
आगे सभी से जाय है, पीछे सभी को छोडता ॥
सब मे ठसा ठस भर रहा, आये नही ना जाय है ।
चलता हुआ सा दीखता, आश्चर्य यह ही आय है ॥

(५)

सब विश्व को सुख देय है, सुख का परम भंडार है ॥
सुख रूप है, सुख सिन्धु है, सुखमात्र सुख का सार है ॥
सुख भूल सुख की खोज मे, नर मूढ फिरता बाह्य है ।
नही देखता है आपको, आश्चर्य यह हो आए है ।

(६)

ना देश से काल से ही, अन्त जिसका हो सके ।
अद्वैत अवयव से रहित, न एक से हो दो सके ॥
होता वही दो तीन फिर, सख्या रहित हो जाए है ।
अविभक्त के भी भाग हो, आश्चर्य यह ही आए है ॥

(७)

तीनो शरीरो से अलग, तीनो अवस्था से परे ।
विश्वादि तीनो से पृथक, अभिमान किंचित् ना करे ॥
ना ईश है ना जीव है, कारण नही ना काय है ।
तो भी सभी कुछ बन गया, कैसा महा आश्चर्य है ॥

(८)

वाणी बिना ही बोलता है, वेद चार बनाय है ।
बिनु हाथ रचता विश्व है, फिर विश्व को खाजाय है ॥
ऐसे अनोखे देव को, नर मूढ कैसे पा सके ।
भोला ! शरण ले ईश की सो ही उसे है पा सके ॥

ना मृत्यु उसको खाय है।

(१)

आशा जिसे धन-धाम की, जो चाहता सुत-दार है।
आशा करे ऐश्वर्य की, रुचता जिसे परिवार है॥
स्वर्गादि की आशा करे, जन्मे पुन मर जाय है।
जो नर निराशा हो गया, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(२)

जब तक हरा है वृक्ष तब तक घुन न लगने पाय है।
जो सूख जाता वृक्ष उसको, घुन तुरत लग जाय है॥
चिन्ता जिसे हो खा रही, सो शीघ्र नर मर जाय है।
निश्चिन्त जो नर हो गया, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(३)

है पास जिसके, द्रव्य सोई, मार्ग मे लुट जाय है।
जो कुछ ना रखता पास सो, नर चोर से भय पाय है॥
जो राग रखता द्वेष या, सो मृत्यु मुख मे जाय है।
रागादि से जो है रहित, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(४)

जो मूढ है वश काम के, नारी उसे छल लेय है।
स्वाधीन अपने कर उसे, वहु भाति पीडा देय है॥
निष्काम आत्माराम नर, ना नारि के वश आय है।
सन्तुष्ट रहता आप मे, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(५)

जो मूढ है वश क्रोध के, सो चित्त नित्य जलाय है।
हिंसा करे है अन्य की, सुख आप भी ना पाय है॥
करता नही है क्रोध जो, सो स्वस्थ झट हो जाय है।
निज तत्त्व मे क्रीडा करे, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(६)

लोभी सदा वश लोभ के, बनता सभी का दास है।
निज तत्त्व का करि विस्मरण, कर्ता स्वय का नाश है॥
निर्लोभ जो हो जाय है, सो कोष अक्षय पाय है।
निर्वासना होता अमर, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(७)

जो सत् असत् है जानता, ना भोग मे ललचाय है।
सत्तत्त्व का करता मनन, सत्तत्त्व को ही ध्याय है॥
सत् मे रहे है मग्न नित, सत् माहि ही मिल जाय है।
सो सत्य ही हो जाय है, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(८)

पावन-परम निज तत्त्व का, जिसको हुआ विज्ञान है।
उसके लिये ससार मिथ्या, रज्जु सर्प समान है॥
जीना नही है चाहता, ना मृत्यु से घबराय है।
भोला ! सदा सो है अमर, ना मृत्यु उसको खाय है॥

एक का ही एक है।

(१)

शिव शुद्ध-शाश्वत, ब्रह्म, मायाधीश बनता ईश है।
वश हो अविद्या के कहो हो जाय जीव अनीश है॥
हो दीन विषयासक्त, करता पुण्य-पाप अनेक है।
वहु देह धारत देव, फिर भी एक का ही एक है॥

(२)

गुरु होय देता ज्ञान, सो ही शिष्य लेता ज्ञान है।
है आप ही सो देह देही, आप ही सो प्राण है॥
हो बाल करता हठ अनेकों, राखता निज टेक है।
होता युवा, हो वृद्ध, फिर भी एक का हो एक है॥

(३)

होता विधाता, विष्णु, सोहो देव बनता रुद्र है।
सोही वरुण है, इन्द्र है, आदित्य पावक, चन्द्र है॥
सो राहु है, सो केतु है, सो मीन है, सो मेष है।
ध्रुव, सप्तऋषि, गिरिमेरु, फिर भी एक का ही एक है॥

(४)

वक्ता, वही, वक्तव्य है, श्रोता वही, श्रोतव्य है।
ध्याता वही, ध्यातव्य है, ज्ञाता वही, ज्ञातव्य है॥
है वेद वेत्ता, वेद सो, सो योग, सोही साँख्य है।
योगेश है, योगीश फिर भी एक का ही एक है॥

(५)

कर्त्ता, करण है, कर्म, भोक्ता भोग्य सोही भोग है।
सो है अमृत, सो मृत्यु है, सो औषधी, सो रोग है॥
सो अज्ञ है, सो सुज्ञ, सो अविवेक, सोही विवेक है।
है देव, दानव, मनुज, फिर भी एक का ही एक है॥

(६)

डंडा सो कही मारता, पूरा कही सो बोलता।
मिथ्या करे भाषण वही, हित, सत्य, मृदु है बोलता॥
सो माप है, सो तोल है, सो बिन्दु है, सो रेख है।
सो अक है, सो बीज, फिर भी एक का ही एक है॥

(७)

सो राग है, सो रागिनी, सो ताल है सो तान है।
सो नाचता, सो गावता, सो नृत्य है, सो गान है॥
सो उच्च, मध्यम, मन्द है, सो है ध्वनी, सो टेक है।
सरगम वही, सममीड, फिर भी एक का ही एक है॥

(८)

जब भूल जाता आपको, तब ठोकरे खाना फिरे।
ऊँचा चढे, नीचा गिरे, जन्मा करे, फिर फिर मरे।
गुरु-शास्त्र से पा ज्ञान, मारे रेख पर भी मेख है।
भ्रम-भेद जब मिट जाय, भोला! एक का ही एक है॥

यह काल है सबसे बली !

(१)

कल वृक्ष देखा था हरा, सो आज सूखा दीखता।
कल फल लदे थे डाल पर, है आज सब हो ला पता ॥
यदि फूल सूखा आज तो, मुरझायगी कल को कली।
सब काल है गाल मे, यह काल है सब से बली ॥

(२)

चै, मैं, सदा ही होय थी, कल थी हवेली भर रही ॥
सो हाय ! अब सूनी पडी, है शोक मानो कर रही ॥
जह थी गली मैदान तह, मैदान था तहं है गली।
ऊजड पडी बहु-बस्तियां, यह काल है सब से बली ॥

(३)

सँझा हुई तड़का हुआ, दिन जात आई रात है।
जाडा गया गर्मी गयी, फिर आ गई वर्षात है ॥
जन्मी, बढी, बूढो हुई, फिर देह मर्घट में जली।
जल कर पुन. भस्मी हुई, यह काल है सब से बली

(४)

कल हँस रहे थे गा रहे थे, खेलते थे बाग मे।
ऐश्वर्य-मद से चूर देखे, आज जलते आग मे ॥
दो चार दिन डोडी वजाकर, अन्त अपनी राह ली।
मानो हुये ही थे नही, यह काल है सब से बली ॥

(५)

जिस रोज बालक जन्म लेता, यम उसी दिन आय है ।
रहता सदा ही साथ निशिदिन, साथ ही ले जाय है ॥
हो चोर अथवा साहू हो, छलहीन हो अथवा छली ।
नाही किसी को छोडता, यह काल है सब से बली ॥

(६)

तज राज्य बन मे जाय, वर्षों राम थे फिरते रहे ।
बनवास मे राजा युधिष्ठर, दु ख थे नाना सहे ॥
चिरकाल नल मारा फिरा, भावी किसी से ना टली ।
होनी सदा होके रही, यह काल है सब से बली ॥

(७)

ब्रह्मा हजारो बन चुके, लाखो पुरन्दर बन लिये ।
राजर्षि बहु गणना रहित, महिपाल बनकर चल दिये ॥
रावण सरोखे मर गये, इस देह की फिर क्या चली ।
हारे सभी इस काल से, यह काल है सबसे बली ॥

(८)

यदि काल खाता अन्य सब, कालेश को ना खा सके ।
जो काल का हो काल, उसके पास कैसे जा सके ॥
तज सर्व 'भज कालेश' भोला ! बात यह ही है भली ।
फिर भय तुझे क्या काल का, कालेश है सबसे बली ॥

पण्डित उसी का नाम है।

(१)

मटका, भरा छलके नही, आधा भरा घट छलकता।
गुणपूर्ण करता गर्व ना, गुणहीन नर बहु भटकता॥
किंचित् न करता गर्व जो, यद्यपि परम गुण-धाम है।
हित मित मधुर है बोलता, पंडित उसी का नाम है॥

(२)

अप्राप्त नाही चाहता, ना शोक करता नष्ट का।
घबराय नाही विपत् में, ना ध्यान रचक कष्ट का॥
शुभ कर्म करता चित्त दे, फिर भी सदा निष्काम है।
श्रद्धा-शमादिक युक्त है, पंडित उसी का नाम है॥

(३)

गभीर 'जिसके चित्त की', ना थाह कोई पा सके।
सुख' दु.ख' द्वन्द्वो मांहि सम, ना पास चिन्ता आ सके॥
जग है असत्, मै भी असत् हू, सत्य केवल राम है।
विश्वास दृढ़ ऐसा जिसे, पंडित उसी का नाम है॥

(४)

ना हर्प' नाही दर्प नाही, क्रोध जिसको खीचता।
ना मान' ना अपमान, नाही लोभ किंचत् ईंचता॥
ना पास वछिया, गाय ना, घर गाठ में ना दाम है।
फिर भी सदा संतुप्ट है, पंडित उसी का नाम है॥

(५)

सम शीत में, सम उष्ण मे, सम एक रस वर्षात मे।
सम द्रव्य मे, दारिद्र मे, सम दिवस मे, सम रात मे ॥
कितनी पड़े झझट भले, निर्विघ्न करता काम है।
आरम्भ सब पूरे करे, पडित उसी का नाम है ॥

(६)

प्रतिपक्ष समयक् जानता, सदेह सारे टारता।
सिद्धात का वक्ता कुशल, निज इष्ट-मित्रन तारता ॥
अक्षुब्ध जैसे क्षीर सागर, शान्त आत्माराम है।
जीवन-मरण से वीतभव, पडित उसी का नाम है ॥

(७)

कुछ भी न अपना मानता, या सर्व अपना जानता।
सब विश्व वध्यापुत्र सम, शिव तत्त्व सच्चा जानता ॥
मुख मोड कर ससार से, सतृप्त पूरण काम है।
सो धन्य है, सो मन्य है, पडित उसी का नाम है ॥

(८)

कोई फसा है भोग मे, कोई लगा है योग मे।
लगता नही है योग मे, फसता नहीं है भोग मे ॥
नर्वासना निज तत्त्व मे, करता सदा विश्राम है।
भोला ! वही नर धीर है, पडित उसी का नाम है ॥

भज रे ! उसे ही सर्वदा !

(१)

हो जाय चिन्ता मग्न तू, जब आ पड़े है आपदा !
बन जाय ईश्वर आप ही, जब जाय मिल कुछ सम्पदा !!
जब भी नही, अब भी नही, बतला भजेगा फिर कदा !
जो देव सब चिन्ता हरे, भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

(२)

था गर्भ मे औंधा पड़ा, सब भांति दीन-अनाथ था !
उस दुर्दशा के माँहि भी जो नाथ तेरे साथ था !!
सब तज भजूँगा मै तुझे, तूने किया था वायदा !
अब क्यों उसे है भूलता, भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

(३)

विक्षेप मन के त्याग दे, लय भी उसे ही होने न दे !
जड ठूँठसा होने न दे, रस स्वाद, भी चखने न दे !!
सत शान्त मन आलम्ब, बिन त्रिपुटी नही भासे यदा !
सो स्वच्छ तेरा तत्त्व है, भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

(४)

मन इन्द्रियाँ सो जाय सब, तब आप जो है जागता !
त्यागे भले ही तू उसे, नाही तुझे जो त्यागता !!
बुद्धि गुहा मे जो छुपा, रहता निकट तेरे सदा !
अंतर्मुखी कर इन्द्रिया, भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

(५)

जो चेतता है सर्व को, ना अन्य जिसको चेतता ।
जो देखता है विश्व को, ना विश्व उसको देखता ।।
जो मिल रहा सब से सदा, फिर भी रहे सबसे जुदा
साक्षी सदा तब बुद्धि का, भज रे ! उसे सर्वदा ।।

(६)

सनकादि जिसके ज्ञान से, सुख से सदा विचरा करें।
जनकादि करते राज्य भी, सब कुछ करे, कुछ ना करे ।।
सम्बन्ध सारे तोड दे, सम्बन्धियो को कर विदा ।
एकान्त मे आसन लगा, भज रे ! उसे ही सर्वदा ।।

(७)

सुत-दार मे आसक्त नर, छाया न जिसकी पा सके ।
ज्ञानी, अमानी, सूक्ष्मदर्शी से कभी छुप ना सके ।।
साधन नही है कुछ कठिन, कर सिद्ध ले या तीन 'दा*' ।
दे त्याग पीछे तीन गुण, भज रे ! उसे ही सर्वदा ।।

(८)

पाते नही हैं रत्न जो, तटमात्र पर जा बैठते ।
लाते वही हैं रत्न जो गम्भीर जल में पैठते ।।
कामादि का सिर तोड़, भोला ! ले गदाधर की गदा ।
कामादि शिव की हो शरण भज रे ! उसे ही सर्वदा ।।

ज्ञानी बड़ा ही चकित है।

(१)

मोदक-मधुर जो विषय के, अन्तर हलाहल विष भरे।
यह जानकर भी दौड़ कर, तिन हेतु 'कर' आगे करे॥
विष-ज्वाल से है जल रहा, पर मान बैठा मुदित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है॥

(२)

दारा-सुतादिक से बहुत, होते सदा देखे दु,खी।
कोई नही है आज तक, इन से हुआ सम्यक् सुखी॥
फिर भी उन्ही हित छटपटाता,हो रहा जग-व्यथित है।
यह देख ज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है॥

(३)

'जब जग-प्रतिष्ठा हेतु ही', तन-धन सभी कुछ त्यागता।
द्वेषाग्नि उपजाता स्वयं, जलता 'नहीं है भागता'॥
झूठो क्षणिक जो शान है, उसके लिये यों श्रमित है।
यह देख ज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है!!

(४)

जो था अतुल ऐश्वर्ययुत, वह अब चिता में जल रहा।
वैभव न आया काम कुछ, परिवार भी रोता रहा॥
निस्सार जग कहता हुआ भी, मोह से ही ग्रसित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है॥

(५)

त्यागी बना है देश हित, उत्साह से गृह तज दिया।
सिर तक कटाने के लिए, निज-देश पर है प्रण किया ॥
अपमान के दो वाक्य सुन, जी-जान से पर कुपित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बडा ही चकित है॥

(६)

है ढूँढता सुख शान्ति जग, पाता सदैव अशान्ति है।
है जानता 'तजता न पर', पकडी हुई जा भ्रान्ति है ॥
है आज जिस से भागता, फिर कल उसी मे कलित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बडा ही चकित है ॥

(७)

हैं तर्कना करते विविध, पाडित्य का अभिमान है।
है कण्ठ तक मानो भरा, सब ज्ञान अरु विज्ञान है॥
तो भी सदा इनका हृदय, अघवासना से पतित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बडा ही चकित है॥

(८)

ससार से अति व्यथित है, अज्ञान निज का भान है।
ज्ञानाधिकारी है बना, अपरोक्ष भोला ज्ञान है॥
सद्गुरु शरण मे प्राप्त है, सद्-बुद्धि से सम्पन्न है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बडा ही चकित है॥

आम्रफल ! (आम)

(१)

हे आम्रफल ! क्या अमर फल, का मन हरने के लिये।
तुझ को बनाया ईश ने, उपकार करने के लिये ॥
जब आम्रफल हम खांय हैं, तब स्वाद अद्भुत आय है।
ले ओष्ठ से छाती तलक यक, लीक सी खिच जाय है ॥

(२)

प्राणी सभी खाते तुझे ! कुत्ते, गधे नहिं खा सकें।
हत-भाग्य प्राणी अमृत-सर, के पास कैसे जा सके ॥
उत्साह से जो खांय है, वे भी तुझे कम जानते।
हे आम्रफल ! तब योग्यता, बिरले चतुर पहिचानते ॥

(३)

छोटा हुआ, मोटा हुआ, खट्टा हुआ, मीठा हुआ।
चिरकाल तप करता रहा, काया पलट होता गया ॥
पहिले हरा, पीछे सुनहरी, रंग केसर हो गया।
'था अम्ल' सो मीठा हुआ, हे आम्र ! अच्छा तप किया ॥

(४)

सर्दी सही गर्मी सही, तू धूप में तपता रहा।
वर्षा सही, आंधी सही, उलटा टगा पकता रहा ॥
रोड़े लगे, पत्थर लगे, चुपचाप सब सहता रहा।
ओले गिरे, बिजली पड़ो, बहु कष्ट तूने है सहा ॥

(५)

आते पखेरू वृक्ष पर थे, चोच तुझ मे मारते।
रहते हिलाते थे तुझे, पजे कई थे गाडते॥
मौनी बना धर धैर्य सब, कुछ सह लिया जो-जो भया।
तब तू सुहाने रग का, स्वादिष्ट मीठा हो गया॥

(६)

जो अन्य थे गर्मी तथा, आधी न किंचित् सह सके।
वे भूमि पर नीचे गिरे, नही वृक्ष ऊपर रह सके॥
जो कष्ट सह सकता नही, सामर्थ्य सो नही पाय है।
उत्कर्ष भी पाता नही, जन्मे वृथा मर जाय है॥

(७)

हे आम्र ! तेरा वृक्ष तुझ सम, फल हजारो देय है।
आवे पथिक जो छाह मे, उनकी थकन हर लेय है॥
पत्ते हमे वह देय है, लकडी हमें वह देय है।
देता बसेरा पक्षियो को, कुछ न उन से लेय है॥

(८)

ज्यो आम्र-तरु कुल-श्रेष्ट, माही जन्म जो नर पाय है।
करके तपस्या कष्टमय ज्यो, आम्रफल पक जाय है॥
ज्यो आम्रफल भोला ! अमर करता, सभी का श्रेय है।
सो धन्य है, हरि है स्वय, मर को अमर कर देय है॥

विषय विष !

(१)

चारों दिशा मे अग्नि-ज्वाला, है भयंकर उठ रही ।
बिजली कही पर पड रही, धरतो कहीं पर फट रही ॥
हैं जीव सोते बेखबर, सिर तक हिलाते है नही ।
'होता' हमारा नाश है', यह ध्यान तक करते नही ॥

(२)

गर्मी किसी को कुछ लगे, तब चोक सी हो जाय हैं ।
'मै स्वप्न हूँ यह देखता', ऐसा समझ सो जाय है ॥
जलने लगे हैं जब अधिक, रोने लगे, चिल्लाय है ।
तो भी समझकर स्वप्न ही, फिर नीद मे पड़ जाय है ॥

(३)

है विषय विषधर सर्प जिन मे, विप हलाहल भर रहा ।
उनको पकड कर प्रेम से, है खेल उन से कर रहा ॥
कोमल चपक को देख कर, आल्हाद मन मे मानता ।
है काटते यदि सर्प तो भी, खेल ही है जानता ॥

(४)

जब काटते है जोर से, तो भी नही भय लागता ।
दिन दिन अधिक है खोलता, नहिं छोड़ता न भागता ॥
विप को नही विप मानता, आनन्द कर निर्धारता ।
भीतर उसे रख लेय है, वहु जन्म तक जो मारता ॥

(५)

है भ्रान्ति निद्रा में पडा, विषधर विषय नही जानता ।
सेवन करे है प्रेम से, विष को अमृत मानता ॥
कोई कहे विष है विषय, विश्वास ही नहिं लावता ।
झूठा समझता है उसे, पागल तथा बतलावता ॥

(६)

क्रीडा करे है सर्प से, धर्मादि सब कुछ छोड कर ।
उन्मत्त रहता रात दिन, विश्वेश से मुख मोड कर ॥
करता अहित अपना पराया, ईश तक को त्याग कर ।
धिक्कार ऐसे मूढ को, विष-भोग मे जो बेखबर ॥

(७)

ईश्वर विषय साधन दिये, उपभोग उलटा कर रहा ।
क्या दोष है इससे अधिक, यह पाप सब से है महा ॥
उपभोग विषयो का यथावत, है यही चातुर्यता ।
उपभोग हो विपरीत तो, इससे अधिक नहिं मूर्खता ॥

(८)

ज्ञानी विष है भोगता, करता न उन मे राग है ।
'निस्सग होकर भोग हो', यह भोग मे भी त्याग है ॥
ज्ञानी बनाता विष को अमृत सुख जो यहा पर पाय है ।
सद्गुरु कृपा से अन्त मे, भोला ! सुखी हो जाय है ॥

हाय कितनी मूर्खता।

(१)

जो दिन गया सो दिन गया, नहिं लौटकर फिर आवता।
सुत या पिता जो मर गया, फिर मुख नही दिखलावता॥
नहिं वस्तु कोई स्थिर यहां, नर मूढ़ निश दिन देखता।
फिर भी उन्हे स्थिर मानता है, हाय कितनी मूर्खता॥

(२)

मैं कौन हूं आया कहां से, कुछ नही इसका पता।
जो-जो यहां आये सभी वे, हो गये है लापता॥
यह बात निश्चय जानकर भी, नित्य रहना चाहता।
आँखों सहित अन्धा हुआ है, हाय कितनी मूर्खता।

(३)

जो है पदारथ जगत् का, सो जगत् मे रह जाय है।
सब छोड़ जाता है यहा, नहिं साथ ले जाय है॥
है हाथ मूदे आवता, खोले हुए है जावता।
फिर भी न ममता त्यागता है, हाय कितनी मूर्खता॥

(४)

यह देह उपजे धूल से, फिर धूल को ही खावता।
बढ़ता रहे है धूल से, फिर धूल मे मिल जावता।
मृदुमय विनाशी देह मे, आसक्ति मूढ बढ़ावता।
ममता अहंता कर रहा है, हाय कितनी मूर्खता॥

यह कृष्ण का उपदेश है !

(१)

जो खाइये, जो पीजिये, जो होमिये, जो दीजिये ।
तप कीजिए, व्रत कीजिए, मेरे लिए ही कीजिए ॥
ना राग है शुभ से जिसे, नहीं अशुभ से द्वेष है ।
सो भक्त जीवन्मुक्त है, यह कृष्ण का उपदेश है ॥

(२)

बन्धन करेगा कर्म यह, शंका न मन में लाइये ।
सब कर्म कीजे प्रेम से, आलस्य दूर भगाइये ॥
जड कर्म मांही बाधने की, शक्ति नाहीं लेश है ।
मत कर्मफल मे सक्त हो, यह कृष्ण का उपदेश है ॥

(३)

सुत दार बन्धन रूप है भक्तो ! न ऐसा मानिये ।
यह विश्व मेरी वाटिका है, सैर करने के लिये ॥
मेरे बनाए बाग से, होता तुम्हें क्यों क्लेश है ।
सब रूप मेरे देखिए, यह कृष्ण का उपदेश है ॥

(४)

धन भी नहीं बन्धन करे, धर्मादि धन से
मत खोद पृथ्वी गाडिए, अधिकारियो को
बाधे नही नर-देह यह, मेरा हि रूप
मथुरा, अयो[illegible], यह कृष्ण का

(५)

बन्धन करे है संग, यह भी जीव का अज्ञान है ।
निस्संग को हो संग, इसमे युक्ति है प्रमाण है ॥
आत्मा सदा निस्संग है, यह वेद का आदेश है ।
विश्वास पूरा कीजिये, यह कृष्ण का उपदेश है ॥

(६)

अज्ञान है निज तत्त्व का, भासे तभी तक संग है ।
जब ज्ञान होवे आत्म का, तो जीव शुद्ध असंग है ॥
परिपूर्ण है कूटस्थ जिसमे, काल है ना देश है ।
निज आत्म को पहिचानिये, यह कृष्ण का उपदेश है ॥

(७)

सब धर्म लौकिक त्याग कर, मेरी शरण ले लीजिये ।
निष्पाप कर दूंगा तुम्हे, चिन्ता न किञ्चित् कीजिये ॥
मम भक्त मत्पर का तुरत, कट जाय पाप अशेष है ।
निष्पाप मुझको पाय है, यह कृष्ण का उपदेश है ॥

(८)

भोला ! किसी ने आज तक, माया नही देखी कही ।
जो है अजा जन्मे न सो, शश, शृङ्ग सम है ही नही ॥
माया न माया कार्य, मायाधीश ना मायेश है ।
अद्वैत केवल ब्रह्म है, यह कृष्ण का उपदेश है ॥

चिन्ता मुझे किस बात की ?

(१)

वहु काम करना हो जिसे, सेवक न जिसके पास हो।
आज्ञा न हो या मानता, सो नर अधीर उदास हो॥
श्रोत्रादि ग्यारह इन्द्रियाँ है, सेविका मुझ नाथ की।
सेवा करे है रात दिन, चिन्ता मुझे किस बात की ?

(२)

घर वृद्ध है, माता पिता तो तीर्थ जाना व्यर्थ हैं।
माता पिता की सेवकाई, परम-उत्तम तीर्थ है॥
चिन्ता मुझे ना मात की, चिन्ता मुझे ना तात की।
शिव तात माता है शिवा, चिन्ता मुझे किस बात की ?

(३)

है अन्न, कपडा मुख्य धन, चाँदी, कनक, मणि गौण धन।
गौ, भैंस, घोड़ा नाश धन, ऐसा कहे हैं वृद्ध जन॥
सब होय तो भी जाय ना, चिन्ता कभी दिन रात की।
सन्तोष धन से पूर्ण हूँ, चिन्ता मुझे किस बात की ?

(४)

इस लोक के सुख की कई नर, चाह करके मर रहे।
परलोक के सुख के लिये, यज्ञादि कितने कर रहे॥
इच्छा कभी जाती नही, नर-मूढ भोगासक्त की।
इच्छा न मुझ मे लेश है, चिन्ता मुझे किस बात की ?

(५)

हो शास्त्र मे सशय जिसे, कर्त्तव्य उसका है श्रवण।
सन्देह जिसको तत्त्व मे, कर्त्तव्य उसका है मनन॥
शका मुझे है हो नही, कोई किसी भी भाँति की।
नि शंक हूं, निर्द्वन्द्व हूं, चिन्ता मुझे किस बात की ?

(६)

विपरीत हो यदि भावना, तो ध्यान करना चाहिये।
ना भूल कर देहादि का, अभिमान करना चाहिये॥
मुझ में नही है गन्ध तक भी, भावना विपरीत की।
चिन्मात्र सत् निस्सग हूँ, चिन्ता मुझे किस बात की ?

(७)

मैं शुद्ध हूँ, मै बुद्ध हूँ, तीनो गुणो से दूर हूँ।
मै हूँ यहाँ मै हूँ वहाँ, सर्वत्र ही भरपूर हूँ॥
पावन परम शिव एक रस, मै मूर्ति हूँ कुशलात की।
है सर्वथा मेरा कुशल, चिन्ता मुझे किस बात की ?

(८)

इस भाति से करके मनन तत्वज्ञ चुप हो जाय है।
भोला ! अभी तक बोलता, आश्चर्य भारी आय है॥
क्या बोलना क्या चालना, है शक्ति तन सघात की।
बोले न बोले देह यह, चिन्ता मुझे किस बात की ?

है दुःख केवल मूढ़ता !

(१)

ना नारि देती दु.ख है, नर भी न देता दुःख है।
नर मूढ अपनो मूढता से, मोल लेता दुःख है॥
नर नारि मे ना भेद कुछ है, भेद कामी कल्पता।
पाता इसी से दु.ख है, है दुःख केवल मूढता॥

(२)

ना पुत्र देता दु:ख है, उपकार करता है यहाँ।
श्राद्धादि कर, यज्ञादि कर, सुत श्रेय करता है वहाँ॥
यदि पुत्र होता दुष्ट तो, वैराग्य है सिखलावता।
पुत्रेच्छु पाता दु.ख है, है दुःख केवल मूढ़ता॥

(३)

सेवक न देते दु.ख है, देते सभी आराम हैं।
अज्ञानुसारी होय है, करते समय पर काम है॥
नेत्रादि सेवक साथ फिर भी, मूढ़ ! सेवक चाहता।
पाता उसी से दुःख है, है दु.ख केवल मूढता॥

(४)

धन-धाम देते भोग है, वेही कराते धर्म है।
यश, कीर्ति जग फैलाय हैं, देते बता सब मर्म हैं॥
धन पाय करता गर्व सो, अपकीर्ति जग मे पावता।
धन चाह देती दु.ख है, है दु.ख केवल मूढता॥

(५)

ज्यो वृक्ष द्रष्टा वृक्ष से, होता असशय भिन्न है।
त्यो देह द्रष्टा देह से, देही सदा ही अन्य है॥
नर मूढ फिर भी देह को, है आप अपना मानता।
पाता इसी से दु.ख है, है दुख केवल मूढता॥

(६)

निस्सग आत्मा शुद्ध है, माया मरी निस्सत्त्व है।
दो कहाँ से सृष्टि फिर, आवे कहाँ से दुख है॥
निस्सग मे भी मूढ़ नर, है कल्प लेता सगता।
फिर क्यो भोगे न दुख सो, है दुख केवल मूढता॥

(७)

आत्मा मरता नही, मरता सदा ही देह है।
ना देह हो सकता अमर, इसमे नही सदेह है॥
मर देह भी नाही मरे, नर मूढ आशा राखता।
पाता इसी से दु.ख है, है दुख केवल मूढता॥

(८)

भोला! विवेकी धीर नर, सन् असत् पहिचानता।
आशा तजे है असत् की, सत् मांहि रति है मनता॥
सुख से सदा है सोवता, सुख से सदा है जागता।
सुख नित्य है चातुर्यता, है दुख केवल मूढता॥

ज्ञान का माहात्म्य ?

(१)

यह ज्ञान जिसने पालिया, उसने सभी कुछ पा लिया।
जिसने न पाया ज्ञान उसने, जन्म लेकर क्या लिया ?
माता पिता को कष्ट दीन्हा, कष्ट पाया आप भी।
जस सो मला उसको रुलाया, मूढ़ रोया आप भी॥

(२)

दारा करी, बच्चे बनाये, धन बढ़ाया मूढ ने।
समान सब है यह रुदन का, क्या कमाया मूढ़ ने॥
नर धीर पाता ज्ञान जो, देहत्व से सो छूटता।
साम्राज्य अक्षय पावता, आनन्द अद्भुत लूटता॥

(३)

स्वर्गादि हित कर कर्म कोई, स्वर्ग माही जाय है।
कुछ काल करके भोग तहँ, रोता यहाँ ही आय है॥
होता जिसे है ज्ञान सो सब विश्व में, भर जाय है।
विश्व शान्त शाश्वत होय है, ना जाय है ना आय है॥

(४)

जो सर्व का है जानना, सो जानना अज्ञान है।
जो आपका है जानना, सो जानना ही ज्ञान है॥
यदि जान लीन्हा आप को, तो सर्व ज्ञाना आपने।
यदि जान लीन्हा सर्व तो, कुछ भी न जाना आपने॥

(५)

जो जानता है कनक को, धोखा नही सो खाय है।
पहिचानता ना कनक खोटा, कटक सो ले आय है॥
जो जान लेता आप को, माहित नही सो होय है।
ना जानता जो आप को, सो मूढ निश दिन रोय है॥

(६)

मांसादिमय मै देह हू, यह जानना अज्ञान है।
'प्राणादि हू मै' देह ना, यह भी न सम्यक् ज्ञान है॥
चैतन्य करले भिन्न तन से, सो सुखी हो जाय है।
देहादि माने आप को, सर्वत्र सो भय पाय है॥

(७)

यह दुखमय संसार भी, सुख रूप होता ज्ञान से।
भय-शोक सब भग जाय हैं, आती न चिन्ता ज्ञान से॥
जब एक शिव सर्वत्र है, तो भेद का क्या काम है।
जब भेद वन्ध्यापुत्र है, तो खेद का क्या काम है॥

(८)

जिस ज्ञान से सम्पन्न हरिहर, दैत्य लाखो मारते।
फिर भी रहे निष्पाप, भक्तन दर्श से है तारते॥
उस ज्ञान को माहात्म्य भोला! कौन वर्णन कर सके।
जिसके बिना कोई कभी, भव-सिंधु से ना तर सके॥

नर जन्म किसका है सफल ?

(१)

दुस्सग मे जाता नही, सत्संग करता नित्य है।
दुर्ग्रन्थ ना पढ़ता कभी, सद्ग्रन्थ पढता नित्य है॥
शुभ-गुण बढ़ाता है सदा, अवगुण घटाने मे कुशल।
मन शुद्ध है, वश इन्द्रियां, नर-जन्म उसका है सफल॥

(२)

धन का कमाना जानता, धन खर्च करना जानता।
सज्जन तथा दुर्जन तुरत, मुख देखते पहिचानता॥
हो प्रश्न कैसा ही कठिन, झट ही समझ कर देय हल।
धर्मज्ञ भी, मर्मज्ञ भी, नर-जन्म उसका है सफल॥

(३)

चिन्ता न आगे की करे, ना सोच पीछे का करे।
जो प्राप्त हो सो लेय कर, मन में उसे नाही धरे॥
ज्यों स्वच्छ दर्पण 'चित्त अपना', नित्य त्यों रक्खे विमल।
चढ़ने न उस पर देय मल, नर-जन्म उसका है सफल॥

(४)

लाया न था कुछ साथ मे, ना साथ कुछ ले जायगा।
मुट्ठी बंधा आया यहा, खोले यहां से जायगा॥
रोता हुआ जन्मा यहां, हंसता हुआ जावे निकल।
रोते हुए सब छोड़ कर, नर-जन्म उसका है सफल॥

(५)

बांधव न जाते साथ में, सब रह यहां ही जाग हैं।
'नाता निभाया बहुत' मर्घट माहि पहुंचा आय है॥
ऐसा समझ व्यवहार उनसे, धीर जो करता सरल।
ना प्रीति ही, ना वैर ही, नर जन्म उसका है सफल॥

(६)

मम देह है तू मानता, तव देह से तू अन्य है।
है माल से मालिक अलग, यह बात सबको मन्य है॥
जब देह से तू भिन्न है, क्यों फिर बने है देह-मल ?
जो आपको जाने अमल, नर-जन्म उसका है सफल॥

(७)

तू जागने को, स्वप्न को, अरु नींद को है जानता।
ये है अवस्था देह की, क्यों आत्म इनको मानता ?
ना जन्म तेरा, ना मरण, तू तो सदा ही है अटल।
जो जानता आत्मा अचल, नर-जन्म उसका है सफल॥

(८)

कारण बना है जब तलक, ना कार्य तब तक जायगा।
भोला ! बना है चित्त तब तक, चेत्य ना छुट पायगा॥
पाता वही साम्राज्य अक्षय, चित्त जिसका जाय गल।
इस चित्त को देवे गला, नर जन्म उसका है सफल॥

शिष्टाचार !

(१)

अपना पराया कुछ नही, विश्वेश का सब विश्व है।
व्यवहार में है भिन्नता, परमार्थ से एकत्व है॥
करता सभी को प्यार है, सीधा-सरल व्यवहार है।
ना राग है, ना द्वेष हे, यह शुद्ध शिष्टाचार है॥

(२)

नाही किसी से शत्रुता, नाही किसी से मित्रता।
जो चित्र जग मे दीखते है, चित्त की है चित्रता॥
मोहित कभी होता नही, विश्वेश हित व्यापार है।
ममता-अहता से रहित, यह मुख्य शिष्टाचार है॥

(३)

ना देखता है दृश्य, करता आत्म अनुसन्धान है।
चलते तथा बैठे हुए शिव, एक का ही ध्यान है॥
आत्मा समझता सार है, निस्सार सब संसार है।
संतुष्ट अपने आप मे यह मुख्य शिष्टाचार है॥

(४)

आत्मा अचल निस्संग है, सब कर्म करता देह है।
निश्चय अटल रखता सदा, करना नही सन्देह है॥
करता सभी है कर्म, पर बनता नही कर्तार है।
चिज्जड़ न करना एक, तह हो मुख्य शिष्टाचार है॥

(५)

नर-मूढ भोगासक्त होकर, दुःख पाता है सदा।
नर धीर भोग विरक्त हो, रहता सुखी है सर्वदा॥
हो प्राप्त लेता भोग सो, ना शीश धरता भार है।
प्रारब्ध पर निर्भर सदा, यह मुख्य शिष्टाचार है॥

(६)

नर-मूढ मन है रोकता, पर रोक सकता है नही।
नर-धीर मन ना रोकता, फिर भी नही जाता कही॥
जाता नही है मन कही, जब देखता ना सार है।
मन को लगाना सार मे, यह मुख्य शिष्टाचार है॥

(७)

ससार यह निस्सार है, मन को सुझाना चाहिए।
है आप अपना सत्य शिव, यह भी सिखाना चाहिए॥
ससार जब निस्सार है, तो चित्त भी निस्सार है।
अद्वैत है एकत्व है, यह मुख्य शिष्टाचार है॥

(८)

भोला! सभी दे त्याग रे, कर आप मे अनुराग रे।
ससार से मुख ढाक सो जा, तत्त्व माही जाग रे॥
शिव है यहा शिव है वहाँ, शिव वार है शिव पार है।
शिव के सिवा ना अन्य है, यह शुद्ध शिष्टाचार है॥

किसका ज्ञान में अधिकार है ?

(१)

जप–तप किये से पाप जिसके सर्व हैं क्षय हो गये।
कामादि से जो मुक्त है, दम्भादि जिसके खो गये॥
निश्चय जिसे है हो गया, ससार यह निस्सार है।
शम-दम-दया से युक्त, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(२)

ना भोग जिसको खेचते, ना क्षोभ मन में आय है।
कैसी सुहावनी वस्तु हो, ना लोभ मन उपजाय है॥
है वस्तु सच्ची कौन सी, किस वस्तु माही सार है।
उस वस्तु की हो खोज, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(३)

सब भाति का सामर्थ्य है, अरु प्राप्त सब ही भोग है।
फिर भी न रुचते भोग है, मालूम होते रोग है॥
ब्रह्मादि का ऐश्वर्य भी, जिसके लिए खर भार है।
जो चाहता बस मोक्ष, उसका ज्ञान मे अधिकार है॥

(४)

मन खिन्न रहता है सदा, रुचता जिसे ना भोग है।
ना अज्ञ ही ना तज्ञ हो, शिव से हुआ ना योग है॥
मन शान्त होने का किया करता सदा व्यापार है।
फिर भी न मन हो शान्त, उसका ज्ञान मे अधिकार है॥

(५)

रुचता न भोजन है जिसे, मन मार फिर भी खाय है ।
चलना नही है चाहता, हो खिन्न फिर भी जाय है ॥
धन, धाम, सुन ना चाहता, रुचता नही परिवार है ।
सत्तत्त्व की है खोज, उसका ज्ञान मे अधिकार है ॥

(६)

संसार दीखे दु खमय, सुख का नही पाता पता ।
सुख है कहाँ इस सोच मे, निद्रा हुई है लापता ॥
मल्लाह विनु ज्यो नाव, चक्कर खा रही मझधार है ।
'त्यो बुद्धि व्याकुल होय', उसका ज्ञान मे अधिकार है ॥

(७)

हैं वेद चारो पढ लिये, वेदांग भी हैं पढ लिये ।
सब शास्त्र पढ कर अर्थ उनके, चित्त में है धर लिये ॥
अब तक कही भी बुद्धि ने, पाया नही आधार है ।
जाना नही है वेद्य, उसका ज्ञान मे अधिकार है ॥

(८)

जाना सगुण है ब्रह्म पर, निर्गुण अभी जाना नही ।
'यह दृश्य कैसे दीखता,' यह भेद पहिचाना नही ॥
की अर्थ की है भावना, वहु दिन जपा ओंकार है ।
भोला ! हुआ मन शुद्ध, उसका ज्ञान मे अधिकार है ॥

मिथ्या न यह संसार है।

(१)

ना जानता है सत्-असत्, ना आत्म ही हैं जानता।
अपनी बताता देह या, मै देह हूँ यह मानता॥
लडना, झगडना, नीद, भय, या जानता आहार है।
खर तुल्य उस नर के लिए, मिथ्या न यह ससार है॥

(२)

यह लोक सच्चा जानता, पर-लोक नाही मानता।
ना शास्त्र ही, ना धर्म ही, ना ईश ही पहिचानता॥
खाने कमाने के सिवा, करता न कुछ व्यपार है।
उस नित्य यम के ग्रास को, मिथ्या न यह संसार है॥

(३)

सुत-दार मे, परिवार मे, धन-धाम मे आसक्त है।
मन मे हजारों कामनाये, चित्त विषयासक्त है॥
मल-मूत्रमय इस देह का, करता सदा शृंगार है।
उस देहारागी मूढ को, मिथ्या न यह ससार है॥

(४)

यज्ञादि कर शुभ कर्म जो, नर स्वर्ग माही जाय है।
कुछ काल करके भोग तह, इस लोक मे फिर आय है॥
ऊँचा चढे नीचा गिरे, होता न भव से पार है।
उस मूढ कर्मठ के लिये, मिथ्या न यह संसार है॥

(५)

जो पुरुष करता योग मो अणिमादि पाता सिद्धिया।
चाहे जहा फिरता फिरे, है प्राप्त करता ऋद्धिया॥
छोटा बने, मोटा बने, उतरे न तन का भार है।
ईश्वर विमुख उसके लिये, मिथ्या न यह ससार है॥

(६)

इन्द्रादि या ब्रह्मादिको को, जो उपासक ध्याय है।
इन्द्रादि या ब्रह्मादि हो, बहुकाल तक सुख पाय है॥
जब पुण्य होता क्षीण, पाता देह मल भण्डार है।
गुण तीन से सयुक्त को, मिथ्या न यह ससार है॥

(७)

ससार से मुख मोड कर जो जाय सद्गुरु की शरण।
सुनता वहा वेदान्त है, करता उसी का है मनन॥
सो धीर जाता है समझ, ससार यह निस्सार है।
निस्सार भी उसके लिये, मिथ्या न यह ससार है॥

(८)

निर्जीव होवे वासनाये, होय मन निर्वासना।
तब शेष रहता ब्रह्म जिस मे, विश्व का है लेश ना॥
अद्वैत केवल सत्य है, निर्दोष सम शिव सार है।
भोला! नही वाणी न मन, मिथ्या तहा ससार है॥

वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(१)

त्यागी न भोजन लालसा, लाखो भरी मन कामना।
तृष्णा मरी छूटी नही, चाहता जगत में नामना ॥
स्वाधीन नाही इन्द्रियां, मन भी नही वश में किया।
साधन किया ना एक भी, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(२)

रूखा न भोजन भाय है, सूखा न खाया जाय है।
मीठा, सलौना, देखकर, मुख मांहि जल भर आय है॥
स्वादिष्ट भोजन मिल गया, तो पेट भर इतना लिया।
ना जाय बैठा ना चला, वेदान्त पढकर क्या लिया ?

(३)

सुत-दार की, परिवार की, ऐश्वर्य की, धन धाम की।
स्वामित्त्व को, भूपत्त्व की, अति चाह है आराम की ॥
छोटे बड़े जन के रिझाने माँहि आयुष खो दिया।
सीखी नही निष्कामता, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(४)

विख्यात हू मै देश मांही, जाति माँहि मान्य हूँ।
पाऊं प्रतिष्ठा राज्य मांही, सर्व से सन्मान्य हूं ॥
सन्मान पाने के लिये, धन-मत्त-जन पूजा किया।
कुल-धर्म भी पाला नही, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(५)

सुनकर प्रशसा आपकी, तू फूल तन में जाय है।
निन्दा सुने है जब कभी, तो खिन्न मन हो जाय है ॥
शीतोष्ण सहने का नही, अभ्यास तू ने है किया।
सुख दु ख सह सकता नही, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(६)

चिन्ता नही तेरी गयी, ना शोक भय तेरा गया।
ना मूढता तेरी गयी, 'मैं और मेरा' ना गया ॥
त्यागा न दुर्जन सग, नाही सग सन्तो का किया।
आसक्ति तन की ना गयी, वेदान्त पढकर क्या लिया ?

(७)

ना जानता है सत्, असत् आत्मा अनात्मा भी नही।
ममता नही त्यागी अभी, त्यागी अहता भी नही ॥
अभिमान विष पीता रहा, शम-दम सुधा नाही पिया।
श्रद्धा नही गुरु वाक्य में, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(८)

भोला ? श्रवण कर मनन कर, फिर ध्यान धर तू आत्म का।
सब विश्व भर को भूल जा, साक्षात् कर तू आत्म का ॥
यदि जान लीन्हा आत्म को वेदान्त सम्यक् पढ लिया।
जाना नही यदि आत्म तो, वेदान्त पढकर क्या लिया ?

तीसरा भाग

शम दम अहिंसा सत्य भाषण चाहना हित सर्व का।
सच्चा यही है तप, नहीं है तप सुखाना देह का॥
मन कर्म वाणी से मती पीडा किसी को दीजिये।
क्या शत्रु हो क्या मित्र भोला ! प्यार सब से कीजिये॥

—भोला

प्रकाशक :-

जैन पुस्तक भण्डार,
दरीबा कलां-देहली

अध्यक्ष—लक्ष्मीचन्द तायला

मूल्य ।।) आठ आने

सातवी बार

जून १९६२

मुद्रक—

कुमार फाईन आर्ट प्रेस,

११४३ चाह रहट, दिल्ली-६

॥ ओ३म् ॥

॥ ओ३म् श्री गुरवे नम ॥

निवेदन (प्रथम संस्करण से)

सब प्राणी नित्य सुखी होना, कभी नहीं मरना और सर्वज्ञ होना चाहते है। छोटे, बड़े, बालक, वृद्ध, स्त्री पुरुष सब ही इच्छा करते हुए देखने में आते है, कि वे उपरोक्त गुणों से सम्पन्न हों। परन्तु ससार मे इससे विपरीत देखने मे आता है। सुखी होने के बदले प्राय सब ही दु खी देखने मे आते हैं। मरते तो सब ही हैं और सर्वज्ञ कोई नहीं हैं नहीं, सब अल्पज्ञ ही हैं। यद्यपि स्वभाव से सब सुखी ही है परन्तु अज्ञान से सब दु ख ही भोग रहे हैं। इनके सुखी होने का उपाय वेदो के अन्तिम भाग वेदान्तों में यानी उपनिषदो मे भली प्रकार बताया है और ऋषि-मुनियो ने उसी को विस्तार से समझाया है। परन्तु इसको आज कल के मनुष्य अविद्या के कारण भोगासक्त होने से नही जानते। जिसका कारण उनकी अनभिज्ञता ही है। ऐसा विचार कर 'वेदान्त छन्दावली' के पहले, दूसरे भागो मे नित्य सुखी होने का उपाय, पहिले भाग मे उत्तम अधिकारियों के लिए बताया है और मध्यम अधिकारियो के लिए दूसरे भाग में विचार कर लिखा है। परन्तु यह भी पर्याप्त नहीं मालूम हुआ, इस लिए तीसरा भाग 'जगत् पुस्तक भण्डार' के अधिष्ठाता की प्रार्थना से यथा बुद्धि लिखकर प्रकाशित करने को दे दिया गया है। आशा है सब पाठक पढ़कर और गाकर ईश्वर की भक्ति करके निजानन्द मे सन्तुष्ट और मग्न होंगे और अपना अन्त करण शुद्ध बनावेंगे। शुद्ध अन्त करण ही सब सुख के साधनो का मूल है और कर्म, ज्ञान, उपासना, वैराग्य आदि ईश्वर-प्राप्ति के कारणों का परम कारण है, इसी से भोग और मोक्ष सिद्ध होता है ॥ इति शुभम् ॥ —सकल चराचरानुचर, "भोला"।

॥ ओ३म् ॥

पद्य-सूची

— ० —

पद्य	पृष्ठ-संख्या
मङ्गलाचरणम्	५
ईश्वर भजन ही सार है	६
भज ले रमापति राम रे !	८
ज्ञान क्या है ?	११
ज्ञान गुदडी	१३
ब्रह्माभ्यास	१६
सच्ची यही है सत्यता	१८
वेदान्त क्या कहता है ?	२१
गीतासार ! १	२३
गीतासार ! २	२६
रौद्र होली !	२८
सुखी होने की अचूक युक्तियां	३१
ऐसा ही हो ।	३३
यह विश्व क्या है ?	३६
यह कौन कहता है ?	३८
मरकर कहां पर जाय है	४१
सुख है यहां या दुःख है	४३
आशा निराशा	४६
वृक्षों से उपदेश	४८
क्या सत् तथा क्या है असत् ?	५१
परतन्त्र कौन है	५३
अज्ञान की महा महिमा ।	५६
क्या करना चाहिए ?	५८
संसार स्वप्न ।	६१
विद्या-अविद्या !	६३
मनोनाश !	६६
जागिये अब जागिये !	६८
जीता वही है जागता !	७१
बोले मती ।	७३
काम कहता है ।	७६
क्रोध कहता है !	७८
लोभ कहता है !	८१
कितनी बड़ी है मूर्खता !	८३
त्याग ही मुख्य है ।	८६
हमको दुःख क्यों होता है ?	८८
ईश्वर ने यह पेट क्यों बनाया ?	९१
कैसे सहज ही में मिट सके	९३

॥ ओ३म् ॥

वेदान्त छन्दावली तीसरा भाग

॥ मङ्गलाचरण ॥

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे। न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुश्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥१॥

न च प्राण संज्ञो न वै पँचवायुर्न वा सप्तधातुर्न वा पंचकोश.। न वाक्पाणिपाद न चोपस्थपायुश्चिदानंदरूप· शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥२॥

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यभाव.। न धर्मो नचार्थोन-कामो-न-मोक्षश्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥३॥

न पुण्य न पाप न सौख्य न-दु खं न-मन्त्रो न-तीर्थं न-वेदा न यज्ञ । अहं भोजन नैव भोज्य न भोक्ता-चिदानंदरूप शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥४॥

न मृत्युर्न शंका न मे जाति-भेद पिता नैव मे नैव माता-च जन्म। न बंधुर्न मित्र गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानंदरूप शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥५॥

अहं निर्विकल्पी निराकाररूपो विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्। न चासंगत नैवमुक्तिर्न मेयश्चिदानंदरूप. शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥६॥

ईश्वर भजन ही सार है !

(१)

ओंधे लटकना नरक में, रोते हुए फिर जन्मना।
पग पोटते जीना यहां, फिर अन्त में मरजावना॥
क्या लाभ ऐसे जन्म से, जहँ दुःख बारम्बार है।
संसार यह निस्सार है, ईश्वर भजन ही सार है॥

(२)

पिटना पिटाना रात दिन, कहना सभी का मानना।
सहना सभी की घुडकियां, भय हर किस्म से खावना॥
माता पिता धमकावते, आचार्य देता मार है।
इस बाल्य को धिक्कार है, ईश्वर भजन ही सार है॥

(३)

दिन रात धन की लालसा, युवती मिलन की कामना।
चिन्ता पुनः सन्तान की, कुल जाति मांही नामना॥
पित्रादि का कर्जा चुकाना, शीश धरता भार है।
यौवन नहीं सुख देय है, ईश्वर भजन ही सार है॥

(४)

तीनों अवस्थाओ माहि प्राणी, पेलता निज हाड है।
सब इन्द्रियाँ होती शिथिल, तृष्णा अधिक बढ जाय है॥
नाही बुढापे माहिं भी, प्राणी यहाँ सुख पाय है।
तब देह से है लाभ क्या, ईश्वर भजन ही सार है॥

(५)

ज्यों संग दुर्जन का किये, हो पाए सज्जन दुष्ट है।
त्यो सा कर इस देह का, आत्मा उठाता कष्ट है॥
आसक्त होना देह मे, नर मूढ का व्यापार है।
नर धीर भजता ईश है, ईश्वर भजन ही सार है॥

(६)

वेदोक्त करके कर्म नर, स्वर्गादि माहि जाय है।
गिरता वहा से एक दिन, रहने वहा ना पाय है॥
सब कर्म देता त्याग जो, सो होय भव से पार है।
करता सदा ईश्वर भजन, ईश्वर भजन ही सार है॥

(७)

कामादि तीनो त्यागिये, ईर्ष्यादि सब तज दीजिये।
चर अरु अचर सब प्राणियो मे ब्रह्म दर्शन कीजिये॥
नर देह ईश्वर ने दिया है, मोक्ष का यह द्वार है।
नर जन्म कर लीजे सफल, ईश्वर भजन ही सार है॥

(८)

जैसे मुझे सुख दुख हो, वैसे सभी को होय है।
ऐसा समझना धार जो, ज्ञानी अमानी सोय है॥
पीडा किसी को दे नही, पण्डित वही होशियार है।
पाया उसी ने मर्म है, ईश्वर भजन ही सार है॥

(९)

चिन्ता कभी मत कीजिये, सम शान्त मन रखिये सदा।
सब दृश्य मिथ्या जानकर, सद्ब्रह्म भजिये सर्वदा॥
समदर्शियों की नाव, निश्चय होय भव से पार है।
वे ही अचल पद पाय है, ईश्वर भजन ही सार है॥

(१०)

भोला ! न हो आसक्त तनु में, ईश में अनुरक्त हो।
मत भक्त हो तू विश्व का, विश्वेश का ही भक्त हो॥
निर्द्वन्द्व हो निःशक हो, यह मुख्य शिष्टाचार है।
दे सर्व तज हो स्वस्थ जा, ईश्वर भजन ही सार है॥

भज ले रमापति राम रे !

(१)

नर देह हड्डी मांस का, कच्चे घड़े सम तुच्छ है।
फिर भी दिलाता मोक्षपद, जो स्वच्छ से भी स्वच्छ है॥
दुर्लभ्य पाकर देह यह, हो मित्र आत्माराम रे।
मत भोग मे आसक्त हो, भजले रमापति राम रे॥

(२)

शब्दादि पाँचो सर्प हैं, बहु जन्म तक है मारते।
जो मूढ़ इनके होय वश, बहु बार है वे हारते॥
दे क्रोध तज, तज लोभ दे, दे त्याग विषधर काम रे।
अभिमान तज दे देह का, भजले रमापति राम रे॥

(३)

ससार के जो भोग है, सब योनियो मे प्राप्त हैं।
आहार मैथुन नीद भय, श्वानादि मे भी व्याप्त हैं ॥
शूकर बने, कूकर बने, ऐसा मति कर काम रे।
आशा सभी की छोड दे, भज ले रमापति राम रे ॥

(४)

खाना पहिनना कृष्ण हित, कर कृष्ण हित दे दान रे।
फल चाह फासी डाल कर, अपनी फसा मत जान रे ॥
निर्द्वन्द्व रह नि शक रह, निर्भय तथा निष्काम रे।
ससार से मुख मोड कर, भज ले रमापति राम रे ॥

(५)

धनदार मे आसक्त नर, सुख से कभी ना सोय है।
लेते जहा ही जन्म तहँ, माथा धुने है रोय है ॥
रामानुरागी धीर नर, पाते परम विश्राम रे।
आशा सभी ही त्याग दे, भजले रमापति राम रे ॥

(६)

सबके हृदय मे रम रहा है, राम सबके पास है।
ना देख सकता मूढ जो, माया मरी का दास है ॥
मै कौन हू, ना जानता, माया इसी का नाम रे।
पहिचान अपने आपको, भजले रमापति राम रे ॥

(७)

तू देह तीनों जानता पर, देह तीनो हैं नही ।
तीनों अवस्थाये नही है, जीव तीनो भी नही ॥
अज्ञान नाही वायु ना, ना रक्त तू ना चाम रे।
कर्ता नहीं भोक्ता नही, भज ले रमापति राम रे ॥

(८)

जो हो चुका सो राम है, जो होयगा सो राम है।
जो हो रहा सो राम है, जो ना हुआ सो राम है ॥
सब राम सब मे राम सबका, राम ही सुख धाम रे ।
कर दर्श सब मे राम का, भजले रमापति राम रे ॥

(९)

सुन रे सदा ही राम तू, गा ले सदा ही राम रे।
जप कर निरन्तर राम का, ध्या ले सदा ही राम रे ॥
चलते खडे बैठे हुए, भज नित्य सीताराम रे ।
दे छोड़ सब व्यापार तू, भज ले रमापति राम रे ॥

(१०)

ज्यो पल, घडी, घण्टा, पहर, दिन नाम है सब काल के ।
रवि, चन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शकर, नाम दशरथ लाल के ॥
है नाम का ही भेद जो है, धूप सो ही घाम रे ।
तज भेद भोला ! दूसरे, भज ले रमापति राम रे ॥

ज्ञान क्या है ?

(१)

जैसी करे जो भावना, वैसी हि सो हो जाय है।
शुभ-भाव का शुभफल, अशुभ का फल अशुभ ही पाय है॥
शिव-नाम शुचि उच्चारिये, शिव-मूर्ति मन मे धारिये।
शिव-तत्व चिंतन कीजिये, निज आत्म भव से तारिये॥

(२)

यह देह शव आत्मा नही, शिव-ब्रह्म आत्मा जानिये।
सब दृश्य मिथ्या मानिये शिव-आत्म निज पहिचानिये॥
शिव-भिन्नकरि शव देह से, शिव ही निरन्तर ध्याइये।
शव-देह मे अदभ्यास कर, अब शिव-मती हो जाइये॥

(३)

सो जाय तब अद्वैत है, मर जाय तब अद्वैत है।
जब स्वप्न जाग्रतकाल मे, मिथ्या हो भासे द्वैत है॥
मन है तहा ही भेद है, परमार्थ से एकत्व है।
जह मन नही तह भेद ना, मन का रचा भिन्नत्व है॥

(४)

जह मन नही तह कुछ नही, ना नीद मे कुछ भासता।
भासे नही कुछ है नही, तब शून्य ही है एकता॥
नाही कथन यह युक्त, जिस से भासती है शून्यता।
सो शून्य है ऐसे कथन से, सिद्ध होती न्यूनता॥

(५)

मन आदि-सब-सो जांय जब, तब देव जो है जागता।
कहते उसे जो शून्य उनको, पाप दारुण लागता॥
कहता उसे जो शून्य है, सो आप होता शून्य है।
जाने उसे जो पूर्ण सो, सर्वत्र होता पूर्ण है॥

(६)

चेतन-अचेतन सर्व को, जो देव चेतन कर रहा।
सम-शांत शाश्वत, मुक्त, जो सर्वत्र ही है भर रहा॥
सो देव आत्मा-सर्व का, सन्मात्र है, चिन्मात्र है।
शिव-शम्भु शकर एक अद्वय, सर्व पर सुख मात्र है॥

(७)

शिव-ब्रह्म को लीजे शरण, मत दूसरा कुछ मानिये।
चिन्मात्र सब में देखिये, सो आप है सच जानिये॥
मत-भय किसी को दीजिये, मत-भय किसी से खाइये।
निःशंक होकर विचरिये, जागो भले सो जाइये॥

(८)

ना राग कीजे द्वेष ना, शिव सर्व मे पहिचानिये।
है एक दूजा है नही, यह बात पक्की मानिये॥
आंधी चले, ओले गिरे, परवाह मत कुछ कीजिये।
चिन्ता कभी मत कीजिये, जो होय होने दीजिये॥

(९)

जो सत्य है सो सत्य ही है,सत् असत् कभी न हो सके।
जो है असत् सो है असत्, निश्चय यही जग हो मके ॥
वध्या नही सुत जन सके, ना ब्रह्मचारी हो पिता।
माता पिता विनु विश्व यह, अविचार से है भासता ॥

(१०)

उपरोक्त यह ही ज्ञान है, विपरीत सो अज्ञान है।
विनु विश्व केवल ब्रह्म भासे, सो कहा विज्ञान है ॥
भोला ! न अव सन्देह कर, ना रज्जु होती साप है।
यह विश्व जो है दीखता, सो ब्रह्म चेतन आप है ॥

ज्ञान गुदड़ी ।

(१)

जीना रहेगा जब तलक, सीना न तव तक जायगा।
जीना गया, सीना गया, सीने नही फिर आयगा ॥
मत आज कल कर क्या खवर,कल आय या ना आयगा।
जो होय करना कर अभी, पीछे नही पछतायगा ॥

(२)

सूई नही धागा नही, कैसे सिया फिर जायगा।
इस बात की चिन्ता न कर,विश्वेश सव सिलवायगा ॥
सीखा न मै सीना कभी, अव भी न सीखा जायगा।
मत सोच, सूत्रात्मा सभी, सिखलायगा सिलवायगा ॥

(३)

ले ले सूई सुविवेक की, तागा सुहाना त्याग का।
सी डाल गुदडी ज्ञान की, बाणा परम सौभाग्य का॥
सब मौसमों मे देय सुख, सीधा नही उल्टा, नही।
रहता सदा ही है नया, गलता नही, फटता नही॥

(४)

शम का लगा टुकडा प्रथम, दम का लगा ले दूसरा।
दोनो मिला फिर जोड़ दे, टुकडा तितिक्षा तीसरा॥
आनन्दमय शोभन परम, चौथा लगा उपराम का।
पञ्चम लगा विश्वास का, छठा लगा विश्राम का॥

(५)

यम नियम आदिक अन्य भी, टुकडे बहुत से जोड रे।
आर्जव दयादिक जोड़ सब ही, शेप कुछ मत छोड़ रे॥
निर्मानतादिक रूई भर, समभाव का अस्तर लगा।
नि.शकता की गोट, घु डी धैर्य की सुन्दर लगा॥

(६)

सी कर श्रवण से, मनन से प्यारे तुरत दे गूदडी।
फिर ध्यान डोरे डालकर, दृढ़, ठोस कर ले गूदडी॥
अद्वैत पक्के रंग मे, रग झक्क कर ले गूदड़ी।
मन वासनाये मेट सारी, पक्क कर ले, गूदडी॥

(७)

ऐसी पहिन कर गूदडी, निर्भय परम हो जायगा।
निर्द्वन्द्व हो, निश्चिन्त, सुख की नीद तू सो ज यगा ॥
गर्मी तनिक लागे नही, जाड़ा नही लग पायगा।
ना शोक हो, ना मोह हो, सुख पूर्ण जब हो जायगा।

(८)

ममता न होवे गेह मे, सब विश्व तेरा होय पर।
ना हो अहता देह मे, ब्रह्माण्ड मे तू जाय भर ॥
सब देश तेरे देश हो, सर्वत्र तेरा राज हो।
दिन रात तू चमके सदा, क्या कल्ल हो क्या आज हो ॥

(९)

मतिमन्द विषयासक्त नर, गुदडी न ऐसी, पा सके।
गुरु हरि कृपा से, धीर नर पहिने तथा पहिना सके ॥
जो भाग्यशाली ले पहिन, भवचक्र से छुट जाय हैं।
साम्राज्य अक्षय पाय है, ना गर्भ मे फिर आय है ॥

(१०)

भोला ! मती अब देर कर, सामान सब तैयार है।
सो पहिन, नाही देर, बेडा शीघ्र होगा पार है।
कल्याण कांक्षो शिष्ट जन, पहिने तथा पहिनायगे।
हरिहर कृपा तर जांयगे, भव सिन्धु मे ना आयगे ॥

(९)

ज्यों रज्जु ही है ज्ञान माहो, रज्जु ही अज्ञान मे।
त्यो ब्रह्म है अज्ञान माँहो, ब्रह्म ही है ज्ञान में ॥
जो आदि में अरु अन्त में, होना वही है मध्य मे।
ना आदि मे ना अन्त में, तो जग नहीं है मध्य मे ॥

(१०)

भोला ! सभी जब ब्रह्म है, तो द्वेष किससे कीजिये।
जब विश्व है सब कल्पना, तो चित्त किसमें दीजिये ॥
मत राग कर मत द्वेष कर, कर नित्य बोधाभ्यास रे।
जो बोध है, सो ब्रह्म है, दे त्याग देहाध्यास रे ॥

सच्ची यही है सत्यता।

(१)

सच्चित् तथा सुख ब्रह्म है, अब ब्रह्म है तब ब्रह्म है।
मै तू तथा सो ब्रह्म है, जो दीखता सब ब्रह्म है ॥
ना भेद की है गन्ध कुछ, है सर्वथा हो एकता ।
ना ब्रह्म से कुछ अन्य है, सच्ची यही है सत्यता ॥

(२)

सागर सभी जल मात्र है, जल के सिवा ना अन्य है।
ब्रह्माण्ड सब चिन्मात्र है, चित् से नहीं कुछ भिन्न है ॥
जल शीतता है एक ही, ना भिन्न जल से शीतता।
जो ब्रह्म है, सो है जगत्, सच्ची यही है सत्यता ॥

(३)

पटनाम जिसका है धरा, परमार्थ से सो सूत है ।
ना सूत बिनु पटनाम का, कोई कही पर भूत है ॥
सद्ब्रह्म की व्यापी हुई है, शिश्व भर मे पूर्णता ।
सब कुछ बना है ब्रह्म ही, सच्ची यही है सत्यता ॥

(४)

जो ब्रह्म को ना जानते, वे भेद नाना देखते ।
जो ब्रह्म को है जानते, वे भिन्नता ना देखते ॥
सद्ब्रह्म को ना जानना ही, विश्व की है विश्वता ।
परमार्थ से ना विश्व है, सच्ची यही है सत्यता ॥

(५)

जे मूढ देखे भिन्नता, वे दु ख पाते है सदा ।
जे धीर देखें एकता, रहते सुखी हैं सर्वदा ॥
देखे अभय में मूढ भय, भय से नही सो छूटता ।
रहता सदा भयभीत है, सच्ची यही है सत्यता ॥

(६)

सत् हो नही सकता असत्, नाही असत् सत् होय है ।
जो रज्जु है, सो रज्जु है, सापिन न होती सोय है ॥
नर मूढ सापिन मानकर, है व्यर्थ ही डर जावता ।
परमार्थ से भय है नही, सच्ची यही है सत्यता

(७)

है ब्रह्म शाश्वत एक रस, किञ्चित कहीं नाही जगत् ।
मिथ्या जगत् भी मूढ़ता से, मूढ़ नर कर देय-सत् ॥
मिथ्या जगत् सत् मानकर, हा-हा करे है रोवता ।
सुख मान लेता दुःख है, सच्ची यही है सत्यता ॥

(८)

आदित्य में जैसे कभी भी, ना अन्धेरा जा सके ।
चिद्ब्रह्म में त्योंही कभी, अज्ञान, नाही आ सके ॥
नर मूढ निज अज्ञान को, है ब्रह्म माही कल्पता ।
दु:खी इसी से होय है, सच्ची यही है सत्यता ॥

(९)

जाग्रत तथा स्वप्नादि जो, तीनों अवस्था देखता ।
सोता कभी भी है नहीं, दिन रात ही है जागता ॥
ऐसा सदा शिव सर्वसाक्षी, देत भी ना दीखता ।
मरता इसी से जन्मता, सच्ची यही है सत्यता ॥

(१०)

मन नेत्र से शिव के सिवा, मत अन्य भोला ! देख रे ।
जो कुछ कहीं देखे सभी कुछ, शँभु महिमा देख रे ॥
शिव एक सब मे देखने से, प्राप्त होती मुक्तता ।
है सार यह ही वेद का, सच्ची यही है सत्यता ॥

वेदान्त क्या कहता है ?

(१)

है ब्रह्म सच्चा, जगत् मिथ्या, मात्र यह सिद्धान्त है ।
ब्रह्मात्म के जाने बिना, होता नही दु:खान्त है ॥
जो जानता एकत्व है, होता वही नर शान्त है ।
जो ब्रह्म है सो आत्म है, कहता यही वेदान्त है ॥

(२)

जब तक न होता शुद्ध मन, वश मे नही आ जाय है ।
सिद्धान्त मेरा तब तलक, नाही समझ में आय है ॥
मन शुद्ध विषयासक्ति तजना, चाहता एकान्त है ।
एकान्त जा कीजे भजन, कहता यही वेदान्त है ॥

(३)

श्रोत्रादि पांचो इन्द्रियां, जो मूढ वस ना कर सके ।
सो चित्त को एकान्त मे भी, जाय वश क्या कर सके ॥
श्रोत्रादि के जो वश हुआ, शब्दादि माही भ्रान्त है ।
वेदान्त सो नाही पढे, कहता यही वेदान्त है ॥

(४)

तप के किये से पाप जिनके, क्षीण सब हैं हो गये ।
हैं शान्त मन जिनके, सदा ही, राग जिनके खो गये ॥
जाता रहा है शोक भय, जिनका हुआ मोहान्त है ।
अधिकारी वो वेदान्त के, कहता यही वेदान्त है ॥

(५)

शम, दम, तितिक्षा धारिये, मन भी समाहित कीजिये ।
श्रद्धा करो गुरू वाक्य पर, तज दूर संशय दीजिये ॥
होता वही मर्मज्ञ है, जो शान्त है अरु दान्त है ।
श्रद्धालु है समचित्त है, कहता यही वेदान्त है ॥

(६)

शिव तत्त्व केवल एक है, पर मूढ़ देखत भिन्नता ।
गुरु शास्त्र ईश्वर की कृपा से, भासती है एकता ॥
जल सूर्य नभ का सूर्य, इसमें युक्ति है दृष्टान्त है ।
अद्वैत है, एकत्व है, कहता यही वेदान्त है ॥

(७)

उठता जभी संकल्प है, चित्तत्व तब छुट जाय है ।
करता मनन है मन तभी, जग देखने में आय है ॥
संकल्प जब उठता नही, तब होय मन का अन्त है ।
मन का मरण ही मोक्ष है, कहता यही वेदान्त है ॥

(८)

मैं ब्रह्म हूं दिन रात यह, अभ्यास करना चाहिये ।
ना स्वप्न में भी देह में, अभ्यास करना चाहिये ॥
निर्वासना मन होय जब, होता तभी वेदान्त है ।
ना दीखता है फिर जगत्, कहता यही वेदान्त है ॥

(९)

ना है जगत् कर भावना, सकल्प तजना चाहिये ।
ब्रह्मात्म मे तल्लीन हो, अविकल्प भजना चाहिये ॥
अविकल्प मे टिक जाय जो, होता नही सो भ्रान्त है ।
एकत्व देखत सर्वदा, कहता यही वेदान्त है ॥

(१०)

भोला ! जगन् जन है नही, शिव एक केवल तत्त्व है ।
तो क्यों बहुत है बोलता, सब से भला मौनत्व है ॥
शिव मौन है जिसमे पहुच, नि शेष ही वचनान्त है ।
वाणी वहा से लौटती, कहता यही वेदान्त है ॥

गीता सार ! (१)

(१)

है सार गीता का यही, सब धर्म तजना चाहिये है ।
मन कर्म वाणी से सदा, धर्मेश भजना चाहिये ॥
करने न करने में कभी, नाही उलझना चाहिये ।
कर्ता अकर्ता कौन है, सम्यक् समझना चाहिये ॥

(२)

मन शुद्ध दाता मोक्ष का, विपरीत मन बन्धन करे ।
जो धीर करले शुद्ध मन, भव सिन्धु से निश्चय तरे ॥
मन शुद्ध करने के लिये, निज धर्म करना चाहिये ।
जिसके लिये जो है विदित, सो कर्म करना चाहिये ॥

(५)

शम, दम, तितिक्षा धारिये, मन भी समाहित कीजिये।
श्रद्धा करो गुरु वाक्य पर, तज दूर संशय दीजिये॥
होता वही मर्मज्ञ है, जो शान्त है अरु दान्त है।
श्रद्धालु है समचित्त है, कहता यही वेदान्त है॥

(६)

शिव तत्त्व केवल एक है, पर मूढ़ देखत भिन्नता।
गुरु शास्त्र ईश्वर की कृपा से, भासती है एकता॥
जल सूर्य नभ का सूर्य, इसमें युक्ति है दृष्टान्त है।
अद्वैत है, एकत्व है, कहता यही वेदान्त है॥

(७)

उठता जभी संकल्प है, चित्तत्व तब छुट जाय है।
करता मनन है मन तभी, जग देखने में आय है॥
संकल्प जब उठता नहीं, तब होय मन का अन्त है।
मन का मरण ही मोक्ष है, कहता यही वेदान्त है॥

(८)

मैं ब्रह्म हूं दिन रात यह, अभ्यास करना चाहि
ना स्वप्न में भी देह में, अभ्यास करना
निर्वासना मन होय जब, होता तभी वेदान्त
ना दीखता है फिर जगत्, कहता यही वेदान्त

(९)

ना है जगत् कर भावना, सङ्कल्प तजना चाहिये।
ब्रह्मात्म मे तल्लीन हो, अविकल्प भजना चाहिये ॥
अविकल्प मे टिक जाय जो, होता नही सो भ्रान्त है।
एकत्व देखत सर्वदा, कहता यही वेदान्त है ॥

(१०)

भोला ! जगत् जब है नही, शिव एक केवल तत्त्व है।
तो क्यों बहुत है बोलता, सब से भला मौनत्व है ॥
शिव मौन है जिसमे पहुच, निःशेष ही वचनान्त है।
वाणी वहा से लौटती, कहता यही वेदान्त है ॥

गीता सार ! (१)

(१)

है सार गीता का यही, सब धर्म तजना चाहिये है।
मन कर्म वाणी से सदा, घ ेश भजना चाहिये ॥
करने न करने में कभी, नाही उलझना चाहिये।
कर्ता अकर्ता कौन है, सम्यक् समझना चाहिये ॥

(२)

मन शुद्ध दाता मोक्ष का, विपरीत मन बन्धन करे।
जो धीर करले शुद्ध मन, भव सिन्धु से निश्चय तरे ॥
मन शुद्ध करने के लिये, निज धर्म करना चाहिये।
जिसके लिये जो है विदित, सो कर्म करना चाहिये ॥

(३)

जब तक न हो मन शुद्ध, तब तक कर्म में तत्पर रहे।
छोड़ें नही सुत दार धन, कल्याण कांक्षी घर रहे॥
जो कुछ करे दानादि सब, विश्वेश के अर्पण करे।
अभिमान अपना त्याग दे, फल में कभी ना मन भरे॥

(४)

यह बात सम्यक् सत्य है, संन्यास सबसे श्रेष्ठ है।
तो भी बिना अधिकार का, सन्यास करना भ्रष्ट है॥
ना कर्म तजना योग है, ना अग्नि-तजना न्यास है।
सब कर्म का फल त्यागना, माना यही संन्यास है॥

(५)

ससार यह निस्सार है, ईश्वर भजन ही सार है।
सब कर्म तज ईश्वर भजे, पण्डित वही होशियार है॥
तज राग दे, तज द्वेष दे, शब्दादि पांचों त्याग रे।
मन इन्द्रियां स्वाधीन कर, ईश्वर भजन मे जाग रे॥

(६)

एकान्त पावन देश मे कुटिया बना कर वास रे।
दूजे किसी को मत बुला, मत जा किसी के पास रे॥
विक्षेप मन के दे हटा आसन लगाकर ध्यान कर।
सब वस्तुओ को भूल केवल आत्म अनुसन्धान कर॥

(७)

मत बाह्य का कुछ ध्यान कर, भीतर मती कर चिंतवन।
सकल्प से कर शून्य मनको, आप तू हो जा अमन ॥
जिसमे न यह वह लेश है, जो सत्य का भी सत्य है।
जो एक रस आनन्दघन, अच्युत अनामय नित्य है॥

(८)

जब मन अमन हो जाय है, तव शेष सो रह जाय है।
यह विश्व लय हो जाय है, सवत्र सो ही पाय है॥
करके उसी का ध्यान, निशिदिन वासनाये काट रे।
ना लेश भी रख कामना, एकैक करके छांट रे ॥

(९)

चिन्ता न करना चाहिये, आशा न करना चाहिये।
तज अन्य केवल आत्मा का ही, ध्यान धरना चाहिये॥
निर्वासना मन को वना, सुख से विचरना चाहिये।
ममता अहंता छोड कर, निर्भय विचरना चाहिए॥

(१०)

ना शोक करना चाहिए, ना मोह करना चाहिए।
जब एक अपना आप है, क्यो व्यर्थ डरना चाहिए॥
भोला! शरण ले ईश को, भव सिन्धु तरना चाहिए।
जन्मा मरा अब तक घना, अब तो न मरना चाहिए॥

गीता सार ! (२)

(१)

निज धर्म में तत्पर रहे, पर धर्म तजना चाहिये ।
सब कर्म करके कृष्ण अर्पण कृष्ण भजना चाहिये ॥
करता कराता ईश है, निश्चय समझना चाहिए ।
कर्ता स्वय बन कर्म में, फिर क्यों उलझना चाहिये ॥

(२)

मन इन्द्रियां सब जीत, निज उद्धार करना चाहिए ।
डूबे हुए इस आपका, उपकार करना चाहिए ॥
भव सिन्धु में से काढ कर, पार करना चाहिए ।
हरि भक्ति सद्गुरु वाक्य, कर्णाधार करना चाहिए ॥

(३)

नर देह पा दुर्लभ्य भोगो मे न फसना चाहिए ।
चढ़ मेरु गिरि भव कूप दलदल, मे न फसना चाहिए ॥
संसारियो का संग तज एकान्त बसना चाहिए ।
हिमवान आदिक द्वन्द्व सहकर, देह कसना चाहिए ॥

(४)

शम दम तितिक्षा आदि करके, शान्त होना चाहिए ।
अभ्यास कर वैराग्य कर, मन शान्त होना चाहिए ॥
सब भेद तज, एकत्व भज, दुःखान्त होना चाहिए ।
है वहम केवल सत्य यह, सिद्धांत होना चाहिए ॥

(५)

कांक्षा न करना चाहिये, न सोच करना चाहिये ।
सम्पत्ति मे आपत्ति मे, सम धैर्य धरना चाहिये ॥
नाहिं अमर मर हो सके, क्यो व्यर्थ जलना चाहिये ।
मर भी अमर ना हो सके, फिर क्यो उछलना चाहिये ॥

(६)

क्या मर्म कर्म अकर्म का, पहिचान लेना चाहिये ।
जो है उभय से पर उसे, भी जान लेना चाहिये ॥
मन बुद्धि उसमे जोड़कर, तज भ्रान्ति देना चाहिये ।
सर्वस्व अपना अर्प कर, सुख शान्ति लेना चाहिये ॥

(७)

सब ब्रह्म है तो सर्व को ही, प्यार करना चाहिये ।
ना वैर ईर्षा द्वेष नाही, रार करना चाहिये ॥
इस देह के निर्वाह हित, व्यापार करना चाहिये ।
निर्पेक्ष ज्यो व्यासादि, शिष्टाचार करना चाहिये ॥

(८)

सब ब्रह्म है, तो सर्व मे ही, ब्रह्म रहना चाहिये ।
मै अन्य हूँ यह अन्य है क्यो भेद रखना चाहिये ॥
कर वृत्ति ब्रह्माकार, ब्रह्मानन्द कहना चाहिये ।
ना कल्पना कर अन्य, आत्मानन्द रहना चाहिये ॥

(९)

ब्रह्मात्म अनुसन्धान कर, अच्युत होना चाहिये।
सुतदार में आक्सत हो, हंसना न रोना चाहिये॥
तल्लीन हो कर ब्रह्म में, तद्रूप होना चाहिये।
निर्द्वन्द्व हो, निःशंक हो, सुख नींद सोना चाहिये॥

(१०)

सब धर्म भोला ! त्याग अब, कठपुतली बनना चाहिये।
जैसे नचावै सारथी, वैसे हि नचना चाहिये॥
हरि गुण गवावे कृष्ण तो, गुण-गान करना चाहिये।
निज ध्यान धरने को कहे, तो ध्यान धरना चाहिये॥

रौद्र होली !

(१)

शंभो ! बहुत लो खेल अब होली न ऐसी खेलिये।
थे एक नाना बन गए व्यामोह करने के लिये॥
हैं आप तो चैतन्य हम सब कर दिए बेचैन हैं।
जीवित सदा हैं आप तो, निज गण बनाए प्रेत है॥

(२)

दाना दिखा, चारा दिखा, पशु तुल्य है हम कर दिये।
हैं आप पशुपति बन गए, हम को चराने के लिये॥
जो पूजते है आपको, वे पेट भर-भर खांय हैं।
ना पूजते जो आपको, भूखे मरें दु.ख पांय हैं॥

सुखी होने की अचूक युक्तियां ।

(१)

सब चाहते होना सुखी, कोई सुखी देखा नही ।
लाखो करोडो मे मिला, ज्ञानी सुखी विरला कही ॥
विद्वज्जनो से वहुत सी, शोभन सुनी है युक्तिया ।
सुख कारिणी भय हारिणी, सुनिये सुनाऊँ सूक्तिया ॥

(२)

सुख दु ख वाहर है नही, सुख दु ख मन के माहि है ।
मन स्वस्थ हो तो दु ख फिर, किंचित् कही भी नाही है॥
जो मूढ वाहर ढूँढता सुख, सो कभी ना पाय है ।
अन्तर्मुखी हो जाय सो, सत्वर सुखी हो जाय है ॥

(३)

जो आय आने दीजिये, जो जाय जाने दीजिये ।
जो होय होने दीजिये, चिन्ता कभी ना कीजिये ॥
हो लाभ अथवा हानि हो, मन मे न धरना चाहिये ।
माया समझ निर्द्वन्द्व हो, सुख से विचरना चाहिये ॥

(४)

अपना नही यह देह है, ना आप ही यह देह है ।
समुदाय हड्डी मास का है, वायु का यह गेह है ॥
ममता अहता देह मे, करता नही जो धीर है ।
ना स्वप्न मे भी हो सके, उसको कभी भव पीर है ।

(७)

बालकपना खाती तरुणता, ताहि वृद्धा खावती।
पाता बहुत ही कष्ट बूढ़ा, मृत्यु फिर आजावती॥
ऐसी भयानक सृष्टि रचनी, आपको क्या शोभती।
मारी बहुत पिचकारियां, पिचकारि अब मारो मति॥

(८)

मदिरा पिलाकर मोह की, मोहित सभी हम कर दिये।
तू जीव है, तू देह है, कह कान सब के भर दिये॥
पूरा अधूरा कर दिया, कर्ता किया भोक्ता किया।
घर शीश कोचड़ का घड़ा, फिर फोड़ डंडे से दिया॥

(९)

जो कुछ किया अच्छा किया, अब तो न होली खेलिये।
सामीप्य अपना दीजिये, नाहीं नरक में ढ़ेलिये॥
कच्चे उडा सब रंग, पक्के रग में रंग दीजिये।
पिचकारी देकर ज्ञान की, अज्ञान तम हर लीजिये॥

(१०)

भोला ! न कुछ मैंने किया, यह सर्व तव अज्ञान है।
न देह, नाही विश्व, नाही जीव, नाही प्राण है॥
मैं हूँ अकेला एक ही, तुझ मैं न मुझ में भेद है।
हो लीन मुझ में भेद तज, क्यों व्यर्थ करता खेद है॥

सुखी होने की अचूक युक्तियां।

(१)

सब चाहते होना सुखी, कोई सुखी देखा नही।
लाखो करोडो मे मिला, ज्ञानी सुखी विरला कही॥
विद्वज्जनो से बहुत सी, शोभन सुनी है युक्तिया।
सुख कारिणी भय हारिणी, सुनिये सुनाऊँ सूक्तिया॥

(२)

सुख दुःख बाहर हे नही, सुख दुःख मन के माहि है।
मन स्वस्थ हो तो दुःख फिर, किंचित् कही भी नाही है॥
जो मूढ बाहर ढूँढता सुख, सो कभी ना पाय है।
अन्तर्मुखी हो जाय सो, सत्वर सुखी हो जाय है॥

(३)

जो आय आने दीजिये, जो जाय जाने दीजिये।
जो होय होने दीजिये, चिन्ता कभी ना कीजिये॥
हो लाभ अथवा हानि हो, मन मे न धरना चाहिये।
माया समझ निर्द्वन्द्व हो, सुख से विचरना चाहिये॥

(४)

अपना नही यह देह है, ना आप ही यह देह है।
समुदाय हड्डी मास का है, वायु का यह गेह है॥
ममता अहता देह मे, करता नही जो धीर है।
ना स्वप्न मे भी हो सके, उसको कभी भव पीर है।

(५)

ज्यों वृक्ष द्रष्टा वृक्ष नाहीं वृक्ष से सो अन्य है।
त्यों देह द्रष्टा देह नाहीं देह से सो भिन्न है।
आसक्ति तजिये देह की, कीजे भजन देहेश का।
जो है भजन देहेश का, सो ही भजन विश्वेश का॥

(६)

'हूं' देह निज अज्ञान से, अभिमान है दृढ़ हो गया।
था भूप सो भिक्षुक हुआ, स्वराज्य सुखमय खो गया॥
मैं देह हूं, भजिये कभी मत, ब्रह्म भजिये सर्वदा।
सुख सिन्धु में मिल पूर्ण हो, ज्यों सिन्धु माहीं नर्मदा॥

(७)

नर देह सुर दुर्लभ्य है, ना व्यर्थ मित्रो खोइये।
विश्वेश को सब अर्प कर निर्द्वन्द्व सुख से सोइये॥
दिन चार के धन पुत्र आदिक, सुख नहीं वे दें सकें।
शिव शांत शाश्वत जो भजें, सुख शांति वेहीं ले सकें॥

(८)

है देह मर, देही अमर विश्वास सम्यक् लाइये।
मत भय किसी को दीजिये मत भय किसी से खाइये॥
शिव एक सब में देखिये, तज भेद बुद्धि दीजिये।
भय भेद दर्शी पाय है श्रुति वाक्य यह सुन लीजिये॥

(६)

समभाव सच्चा योग है, समभाव सच्ची भक्ति है ।
समभाव सम्यक् ज्ञान है, समभाव जीवन्मुक्ति है ॥
समभाव भजिये सर्वदा, पापौघ यह हर लेय है ।
अन्त.करण कर स्वच्छ अति, सुख शाति अविफल देय है ॥

(१०)

शिव शात में मन दीजिये, नाता जगत् से तोड़िये ।
एकत्व गोला छोड़कर, भांडा दुई का फोडिये ॥
आखें दिखाती भिन्नता, मन है बताता शून्यता ।
ना भिन्नता ना शून्यता, भोला सदा भज पूर्णता ॥

ऐसा हि हो ।

(१)

प्रण कीन दृढ़ मदालसा मम, गर्भ में जो आयगा ।
निश्चय करूंगी मुक्त सो नहि जन्म दूजा पायगा ॥
भव से निकाले पुत्र को नहि, दूसरा फिर जन्म हो ।
निज पुत्र की हितकारिणी, हो मातु तो ऐसी हि हो ॥

(२)

हे पुत्र गोपीचन्द ले ले, योग माता ने कहा ।
कीन्हा चिरजीवी उसे है, आज तक यश छा रहा ॥
जो पुत्र के कल्याण हित तज पुत्र दे निर्मोहि हो ।
माता उसे ही जानिये, हो मात तो ऐसी ही हो ॥

(३)

पितु-वाक्य शिरधर परशुराम, शिर काट माता का दिया।
देखा उन्हें हि प्रसन्न जब, तब मातु को जिलवा दिया॥
राजी रखे पितु मातु को, दोनों हि का हितकारी हो।
नहिं धर्म से अपने हटे, हो पुत्र तो ऐसा हि हो॥

(४)

श्री कृष्ण ने पितु-मातु का, बंधन छुड़ाया जगत् का।
परलोक का भी सुख दिया, कारण मिटाया अहित का॥
इस लोक अरु परलोक में पितु-मातु का कल्याण हो।
ऐसा करे, है पुत्र वहि, हो पुत्र तो ऐसा हि हो॥

(५)

पा जन्म राक्षस वंश में, प्रहलाद ने हरि को भजा।
पाये अनेकों कष्ट तो भी, भक्ति करना नहिं तजा॥
निज इष्ट को भजता रहे, कितना ही चाहे विघ्न हो।
नहिं भय करे नहिं दीनता, हो भक्त तो ऐसा हि हो॥

(६)

आपत्ति पर आपत्तियां, मीरा सही नहिं हाय की।
विष का पियाला पी गई, कुछ भी नहीं परवाह की॥
माने कभी नहिं दु:ख को, मरने तलक का भय न हो।
दिन-रात श्रीपति को रटे, हो भक्त तो ऐसा हि हो॥

(७)

राजा जनक ने दान दीना, याज्ञवल्क्य लिया उसे।
शोभे तभी ही दान हों, दाता गृहीता एक से ॥
नहिं दग्ध हाथो को करे, दोनो हि का अति-श्रेय हो।
कल्याण कर सब भांति से, हो दान तो ऐसा हि हो ॥

(८)

मल्लाह पुत्री से हुए, विस्तार वेदो से किया।
करिशास्त्र-रचनाविविध विध,ससार भरको सुख दिया ॥
कल्याण कर्ता व्यास सम, जग मे न कोई अन्य हो।
तारे महा पापी तलक, कल्याण कर ऐसा हि हो ॥

(९)

जो जन्म ले नहिं जन्मता, जन्मा उसे ही जानिये।
मर कर नहीं मरता पुनः, मरना उसी का मानियें ॥
ले जीत जग संग्राम को, रण शूर उसको ही कहो।
हैं अन्य झूठे शूर, जो हो शूर तो ऐसा ही हो ॥

(१०)

सो बुद्धि है व्यभिचारणी, निज आत्म से जो दूर है।
है बुद्धि सो ही पतिव्रता, जो आत्म-रति मे चूर है।
है बुद्धि वहि कौशल्य ! जिसका आत्म से नहिं भेद हो।
जल-दूध सम रहवे मिली, हा बुद्धि तो ऐसी ही हो ॥

यह विश्व क्या है?

(१)

यह विश्व शिव की वाटिका है, सैर करने के लिये।
ना राग, ईर्षा, द्वेष चिन्ता, वैर करने के लिये॥
इच्छा न आने की करे, जो आय आने दीजिये।
चिन्ता न जाने की करे, जो जाय जाने दीजिये।

(२)

यह विश्व शिव की मूर्ति है, शिव भक्ति करने के लिये॥
विश्व शिव का कर बाध, शिव का ध्यान करने के लिये।
हो विश्व भू-स्वाहा सभी, संन्यास ऐसा कीजिये।
रह जाय केवल एक शिव, सो ही ग्रहण कर लीजिये॥

(३)

यह विश्व शिव अवतार है, नर मूढ़ धोखा खाय है।
शिव से विलक्षण जानकर, बिनु अर्थ ही भय पाय है॥
तत्वज्ञ समदर्शी कहीं भी, भेद नाही देखता।
भय भी कही ना खाय है, सर्वत्र देखे एकता॥

(४)

यह विश्व है दर्पण भवन, घुसकर उसे शिव देखता।
नाना कही है देखता, देखे कही है एकता॥
जहं एकता देखे तहा, आनन्द अक्षय लूटता।
जहं भिन्नता देखे तहाँ, कर हाय हा! शिर कूटता॥

(५)

यह विश्व तस्कर ग्राम है, कामादि ठग फिरते यहा।
कामी जहा मिल जाय, उसको लूट लेते है तहा ॥
जो मूढ़ होय अचेत सो, निश्चय यहा लुट जाय है।
जो धीर रहता जागता, निज धन बचा ले जाय है ॥

(६)

यह विश्व भय मय धाम है, कोई यहा निर्भय नही।
है चोर का या अग्नि का, या काल का भय हर कही ॥
वैराग्य की जो शरण ले, निर्भय यहाँ सो होय है।
सम-शान्त आत्मा राम ही, सुख से यहां पर सोय है ॥

(७)

यह विश्व अद्भुत जेल है, जेली यहा सब हैं दु:खी।
फिर भी न छोडा चाहते बस, दु:ख मे भी है सुखी ॥
गुरु-शास्त्र से इस जेल का, जो जान लेता मर्म है।
छुट जेल से होता सुखी, लेता नही फिर जन्म है ॥

(८)

है विश्व गहरा गर्त, मन मातग गिरने के लिये।
या ब्रह्म ही है स्वाद-अद्भुत नित्य चखने के लिये ॥
जब होय विषयाकार मन, भव गर्त मे गिर जाय है।
जब होय ब्रह्माकार सो ही, स्वाद अद्भुत पाय है ॥

(९)

यह विश्व है अथवा नहीं, नांहीं समझ में आय है।
मन मांहि है या ब्रह्म है, यह भी कहा ना जाय है॥
यदि ना कहूं तो स्पष्ट है, यदि है कहूं तो है नहीं।
जो होय, ना भी होय, ऐसी वस्तु ना देखी कहीं॥

(१०)

यह विश्व मन ने घड़ा, जहं मन तहां हो विश्व है।
जहं मन नहीं तहं विश्व ना, सम शान्त केवल तत्व है॥
भोला ! बना निर्वासिना मन, मर्म सब खुल जायगा।
सर्वत्र होगा ब्रह्म दर्शन, विश्व यह घुल जायगा॥

यह कौन कहता है।

(१)

यह कौन कहता है कि मत कर मातु-पितु की चाकरी।
सेवा करेगा, क्यों न तू, जब मातु-पितु सेवा करी॥
माया प्रकृति है मातु तब, मायेश तेरा बाप रे।
सब में उन्हें ही देख तू कट जायेंगे सब पाप रे॥

(२)

यह कौन कहता है कि तू मत दार से सम्बन्ध कर।
श्रुति कह रही विस्पष्ट है मत तन्तु का विच्छेद कर॥
आसक्त मत हो नारि में, उत्पन्न शुभ सन्तान कर।
ईश्वर भजन सिखलाय उनको, आपका कल्याण कर॥

(३)

यह कौन कहता है कि तू, धन की कमाई मत करे ।
खेती न कर व्यपार मत कर, सेवकाई मत करे ॥
उद्यम बिना इस देह का, निर्वाह नाही होयगा ।
धन को कमा दानादि कर, नाही कभी तू रोयगा ॥

(४)

यह कौन कहता है कि तू, घरबार तज कर भाग रे ।
निज धर्म का उत्साह से, मत दीन हो मत माँग रे ॥
अपना न कुछ भी मान तू, विश्वेश का सब जान रे ।
मत राग कर मत द्वेष कर, मत देह का अभिमान रे ॥

(५)

यह कौन कहता है कि तू, धर्मादि करता रह सदा ।
जब तक न हो मन शुद्ध तब तक कर्म कर तू सर्वदा ॥
जो कुछ करे जप तप हवन हो दान, याजन या यजन ।
विश्वेश अर्पण कर सभी, सच्चा यही ईश्वर भजन ॥

(६)

यह कौन कहता है कि तू, माता पिता ने है जना ।
रज वीर्य के सयोग से है, देह ही तेरा बना ॥
ज्यों वृक्ष द्रष्टा वृक्ष नाही, वृक्ष से अति भिन्न है ।
त्यों देह द्रष्टा देह नाही, देह से तू अन्य है ॥

(७)

कौन यह कहता है कि तू, मन इन्द्रियां या प्राण है।
जड़ दृश्य ही मिथ्या क्षणिक, यह अन्य की पहिचान है॥
मन आदि मिथ्या अन्य है, तू भिन्न उनसे आप है।
मन आदि मानत आप तू, सबसे बड़ा यह पाप है॥

(८)

यह कौन कहता है कि तू, है कर्म करता भोगता।
निस्संग तुझ में कर्म को, किञ्चित् नहीं है योगता॥
विज्ञान करता कर्म है, विज्ञान ही फल चाहता।
निष्कर्म तू सम्बन्ध ना, कुछ कर्म फल से राखता॥

(९)

यह कौन कहता है कि तू, पापिष्ठ है अति दीन है।
अति शुद्ध तू पावन परम, चिद्घन निरामय पीन है॥
उस देह से कर संग तू, पापिष्ट निज को मानता।
समशान्त शाश्वत पूर्ण शिव, को तुच्छ प्राणी जानता॥

(१०)

यह कौन कहता है कि तू, हरिदास या हरदास है।
है दास तू जब तक गले मे, डाल रक्खी पाश है॥
दे काट आशा पाश भोला! त्याग जग की आश रे।
यह ही कहाता योग है, कहाता यही संन्यास रे॥

मर कर कहा पर जाय है ?

(१)

इस लोक या परलोक हित, जा-जो करे नर कर्म हैं।
शुभ कर्म से शुभ, औ अशुभ से अशुभ पाता जन्म है ॥
जब तक रहे मन वासना, ना कर्म से छुट पाय है।
होती जहा को वासना, मर कर तहा ही जाय है ॥

(२)

ज्यों पान आदिक चाबने से, रक्तता मुख आय है।
त्यो भूत पाचों के मिले, चैतन्य तन हो जाय है।
रज वीर्य मिल बन जाय तन, फिर भूमि मे मिल जाय है।
ऐसा समझता मूढ सो, फिर-फिर मरे पछताय है ॥

(३)

जो प्रेत भूतन पूजता, सो भूत योनि पाय है।
जो पूजता है पितृयो को, पितृयो मे जाय है ॥
करता भजन जो देवतो का, देव योनि पाय है।
जो ब्रह्म का करता भजन, सो ब्रह्म ही हो जाय है ॥

(४)

शिव का करे पूजन भजन, शिवलोक में वह जाय है।
जो ध्यान नित शिव का धरे, सायुज्य शिव का पाय है ॥
जो विष्णु का पूजन करे, सो विष्णु पार्षद होय है।
जो ध्यान धरता विष्णु का, सो विष्णु साक्षात् होय है ॥

(५)

संसार से मुख मोड़ कर, जो ब्रह्म केवल ध्याय है।
करता उसी का चिन्तवन, निशदिन उसे ही गाय है॥
मन में न जिसके स्वप्न मे भी, अन्य आने पाय है।
सो ब्रह्म ही हो जाय है, ना जाय है, ना आय है॥

(६)

आशा जगत् की छोड़ कर, जो आप में ही मग्न है।
सब वृत्तियाँ हैं शान्त जिसकी, आप में संलग्न है॥
ना एक क्षण भी वृत्ति जिसकी, ब्रह्म से हट पाय है।
सो तो सदा ही है अमर, ना जाय है, ना आय है॥

(७)

संतुष्ट अपने आप में, सतृप्त अपने आप में।
मन बुद्धि अपने आप में, है चित्त अपने आप में॥
अभिमान जिसका गल गलाकर, आप में रल जाय है।
परिपूर्ण है सर्वत्र सो, ना जाय है ना आय है॥

(८)

ना द्वेष करता भोग मे, ना राग रखता योग में।
हँसता नही है स्वास्थ्य मे, रोता नही है रोग मे॥
इच्छा न जीने की जिसे, ना मृत्यु से घबराय है।
समशान्त जीवन्मुक्त सो, ना जाय है, ना आय है॥

(९)

मिथ्या जगत् है ब्रह्म सत्, सो ब्रह्म मेरा तत्त्व है।
मेरे सिवा जो भासता, निस्सार सो निस्तत्व है॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, ना मृत्यु उसको खाय है।
सशरीर भी अशरीर है, ना आय है, ना जाय है॥

(१०)

भोला कभी मत भूल, छोटी वस्तु आवे जाय है।
जो पूर्ण है, सो है अचल, जावे नही ना आय है॥
नर धीर भजता पूर्ण अव्यय, पूर्ण सो हो जाय है।
नर मूढ भजता अल्प सो, बिन मृत्यु मर मर जाय है॥

सुख है यहां या दुःख है !

(१)

चिन्ता हजारो से ग्रसा, सोता रहे है जागता।
हो जाय अन्धा स्वप्न मे बैठा हुआ भी भागता॥
सोवत मरा सा जाय हो, फिर भी सुखी है मानता।
सुख है यहा या दु ख है, नर मूढ नाही जानता॥

(२)

रोता हुआ जन्मा यहां, बचपन रहे पिटता सदा॥
मर्कट त्रिया का हो जवानी माहि नाचे सर्वदा॥
पाता निरादर वृद्ध हो सब भांति दु ख उठावता।
सुख है यहा या दु:ख है, यह ध्यान नाही आवता॥

(३)

है देह तीनो रोग मय, इनमे हजारो रोग है।
त्यों-त्यो बढे हैं रोग, ज्यो–ज्यों भोगते नर भोग है॥
ना भोग छोडे मूढ़ नर, ना देह तजना चाहता।
सुख है यहाँ या दु.ख है, नाही समझ नर पावता॥

(४)

ज्वर आदि पीडा स्थूल में है, सूक्ष्म में कामादि है।
अज्ञान कारण देह में निद्रा तथा मूर्छादि है॥
सुख चाहता नर देह से, जो रोग का भण्डार है।
सुख है यहाँ या दुःख है, इसका इसे न विचार है॥

(५)

सर्दी सताती है कभी, गर्मी जलाती है कभी।
क्षुधा रुलाती है कभी, तृष्णा सुखाती है कभी॥
नर मूढ़ इतने दुःख को भी, दुःख नाही मानता।
सुख है यहाँ या दुःख है, इतना तलक ना जानता॥

(६)

धन जोड़ने में कष्ट हैं, धन राखते मे कष्ट है।
धन खर्चने में कष्ट है, धन जावने मे कष्ट है॥
तो भी कमाते धन सभी, है चाव से उत्साह से।
सुख है यहां या दुःख है, निर्णय करे किस राह से॥

(७)

मन ठहर जावे एक क्षण, तो सुख निराला होय है।
फिर भी न मन के ठहरने मे, यत्न करता कोय है॥
मन होय जिस मे अधिक चचल, कर्म करते है कही।
सुख है यहां या दुःख है, इसकी खबर इनको नही॥

(८)

सगति करें यदि सत की, तो चित्त समता पाय है।
यदि दुर्जनो मे बैठते, बुद्धि विगड तो जाय है॥
दुःसग मे बैठे सदा, सत्सग मे ना जा सके।
सुख है यहां या दुःख है, कैसे इन्हे समझा सकें॥

(९)

भगवत्कथा करते श्रवण, तो शान्ति मन मे आय है।
बातें सुने बाजार की, तो घूम माथा जाय है॥
लगता न मन हरि गान मे, गप्प शप्प में लग जाय है।
सुख है यहा या दुःख है, नाही समझ मे आय है॥

(१०)

सुख दुःख बाहर है नही, सुख दुःख मन के माय हैं।
जो धीर करते शुद्ध मन, सुख शान्ति वे ही पाय है॥
भोला! न बाहर देख तू, मन शुद्ध तब हो जायेगा है।
सुख है यहाँ या दुःख है, सम्यक् समझ मे आयेगा॥

आशा निराशा

(१)

आशा सुखाती रक्त है, बहु जन्म तक है मारती।
करती निराशा है सुखी, भव-सिंधु से है तारती ॥
नर मूढ़ आशासक्त हो, बहु योनियों में जावता।
नर धीर आशामुक्त हो, अक्षय, परम पद पावता ॥

(२)

जो आश में है तप्तता, ना आग मे सो तप्तता।
शीतल निराशा है यथा, ना चन्द्र मे सो शीतता ॥
आशा मरी के बश हुए, जलते रहे हैं सर्वदा।
आशा जिन्होने त्याग दी, वे शान्त रहते हैं सद

(३)

जो आश के नर दास हैं, रहते सदा ही दीन है
भजते निराशा धीर जो, वे पूज्य पडित पीन हैं ॥
करती निराशा पीन है, आशा बनाती दीन है।
फिर भी निराशा ना भजे, सो मूढ़ मति से हीन है ॥

(४)

मरते रहे हैं देह ये, आशा मरी मरती नहीं।
जाता जहां पर जीव है, आशा मरती जाती नहीं।
आशा पिशाची जाय छुट, तो जीव है फिर ब्रह्म ही।
सद्ब्रह्म को ससार माही, आश है भटका रही ॥

(५)

आशा जिन्होने त्याग दी, वे धीर नर ही धन्य है।
है पूज्य भी वेही यहा, वे ही जगत् मे मन्य है॥
जो बद्ध आशा पाश मे, उस मूढ को धिक्कार है।
सो भार वाही बैल सम, ढोता सदा ही भार है॥

(६)

नर मूढ़ आशा मे बधा, सबसे नुचाता मास है।
ज्यो श्वान रहता दौड़ता, बनता सभी का दास है॥
ज्ञानी विनाशी धीर ना, करता किसी की आश है।
ढोता नहीं है भारना, जाता किसी के पास है॥

(७)

भण्डार होवे पूर्ण तो भी, आशा वाला निर्धनी।
कुछ भी नही हो पास में, तो भी निराशी है धनी॥
पृथ्वी बिछौना नभ उढाना, नित्य नीलाकाश है।
मैदान मे रहता पडा, उस धीर को शाबाश है॥

(८)

निर्द्वन्द्व रहता सर्वदा, आजाय सो खा लेय है।
नाही किसी से लेय कुछ, नाही किसी को देय है॥
पीयूष ब्रह्मानन्द पीकर, आत्म मे सतृप्त है।
सब विश्व मिथ्या देखता, है आप मे अनुरक्त है॥

(९)

यह दृश्य जो है दीखता, ना आपसे सो अन्य है ।
है दृश्य द्रष्टा आप ही, ना आप से कुछ भिन्न है ॥
जब अन्य कुछ है ही नही, तो आश फिर किसकी करे ।
ऐसा विवेको धन्य है, भवसिंधु से निश्चय तरे ॥

(१०)

जो सुख निराशा माहि हैं, भोला ! कही भी है नही ।
आशा किसी की मत करे, मत आ कही मत जा कही ॥
मत कुछ कभी रख पास रे, मत कुछ किसी से मांग रे ।
ससार से मुख मोड़ले, कर आप में अनुराग रे ॥

वृक्षों से उपदेश

(१)

वृक्षो ! बताओ तो सही, गुरु कौन तुम को मिलग या ।
वेदान्त भी अरु योग भी, जिसने तुम्हें सिखला दिया ॥
जितना कि शिष्टचार है, तुम में सभी मे दीखता ।
नर भाग्यशाली शिष्ट, शिष्टचार तुम से सीखता ॥

(२)

निर्द्वन्द्वता नि.शंकता, ज्ञानी तुम्ही से सीखते ॥
एकाग्रता, निश्चिन्तता, ध्यानी तुम्ही से सीखते ॥
निर्मानिता अरु नम्रता, दानी तुम्ही से सीखते ।
निर्वैरता, समता क्षमा, प्राणी तुम्ही से सीखते ॥

(३)

शम, दम, तितिक्षा, माहिं मित्रो ! मुख्य तुम दृष्टांत हो ।
ममता अहता से रहित, ज्यो सत योगी शांत हो ।।
जो खीचकर पाले तुम्हें, ना मित्रता उससे करो ।
काटे तुम्हें जो भूल से, ना शत्रुता उससे करो ।।

(४)

हो शत्रु अथवा मित्र सबको, एकसा हो जानते ।
उपकार करना मुख्य अपना, धर्म हो तुम मानते ।।
सर्वस्व अपना अर्प कर, सेवा हमारी कर रहे ।
हिम वात गर्मी सह रहे, श्रम तुम हमारा हर रहे ।।

(५)

हम मारटे ईटे तुम्हारे, तुम हमे फल दे रहे ।।
करते नमन भी साथ मानो, सूर्य को जल दे रहे ।।
सब ईश का, सब ईश है, ऐसा हमे दिखला रहे ।
सुख दु ख आदिक हैं, असत् यह भी हमे सिखला रहे ।।

(६)

फल ही नही हो दे रहे, उपदेश भी हो दे रहे ।
सब कुछ हने हो दे रहे, कुछ भी न हमसे ले रहे ।।
श्रुति सत्य ही है कह रही, यह विश्व शिव अवतार है ।
विश्वेश का यह विश्व होना, विश्व पर उपकार है ।।

(७)

विश्वेश जिसने हो न देखा, विश्व यह सो देखले।
तो भी न हो यदि ईश-दर्शन, वृक्ष यह सो देखले॥
निर्दोष सम है ब्रह्म ऐसा, वृक्ष भी है देखले।
उपकार करता ब्रह्म जैसा, वृक्ष भी है देख ले॥

(८)

है ब्रह्म अज तरु जन्मता, है भेद इतना मात्र है।
है वृक्ष डाली पात वाला, ब्रह्म सत् चिन्मात्र है॥
ज्यों वृक्ष रहता बीज में, त्यों विश्व रहता ब्रह्म में।
ज्यों बीज व्यापक वृक्ष मे त्यों ब्रह्म व्यापक विश्व में॥

(९)

उपदेश देने के लिए, ईश्वर बनाया विश्व है।
उपदेश लेने के लिये, पर्याप्त केवल वृक्ष है॥
जो तत्व जाने वृक्ष का, सो तत्व जाने विश्व का।
जो तत्व जाने विश्व का, सो तत्व जाने ब्रह्म का॥

(१०)

शुभ गुण सभी के ग्रहण कर, सब दोष भोला त्याग रे।
गुण दोष आदिक जानकर, निज तत्व मांही जाग रे॥
निष्कम्प होकर वृक्ष सम, कर आत्म अनुसंधान रे।
तीनों गुणों से मुक्त हो, कर आत्म का कल्याण रे॥

क्या सत् तथा क्या है असत् ?

(१)

यह दृश्य तब तक देखता, जब तक रहू हूँ जागता।
यह दृश्य होता लापता, जब नीद मे पड जावता॥
थोडा हटा जहँ नीद से, तब स्वप्न नाना देखता।
क्या सत् तथा क्या है असत्, कुछ भी नही लगता पता॥

(२)

जो आज है सो कल्ल ना, जो कल्ल सो परसों नही।
दिन चार की है चादनी, फिर है अघेरी रात ही॥
जो दिन चला सो चल दिया, ना लौट कर फिर आय है।
क्या सत् तथा क्या है असत्, कहते नही बन आय है॥

(३)

कुछ काल मे वालकपने, को खा जवानी जाय है।
खाती जवानी को जरा, फिर मृत्यु उसको खाय है॥
ज्यों मृत्यु का खाया हुआ, ना दृष्टि मे फिर आय है।
क्या सत् तथा क्या है असत्, निर्णय नही हो पाय है॥

(४)

जो मर गया सो मर गया, फिर मुख नही दिखलाय है
अब कौन बस्ती मे रहे है, सूचना ना आय है॥
कुछ काल तक है देह सत्, पीछे असत् हो जाय है।
क्या सत् तथा क्या है असत्, नाही समझ मे आय है॥

(५)

नारी सुशीला मिल गई है, पुत्र भी दो चार हैं।
एकत्र धन बहु कर लिया, होते कई व्यापार है॥
सुख भोग का आया समय, सब छोड़ लाला चल दिये।
क्या सत् तथा क्या है असत्,दिन चार रहने के लिये॥

(६)

जल की नही है छीट भी, मृग जल दिखाई देय है।
मृग मूढ़ पीने जाय दौड़ा, जान अपनी देय है॥
जो दीखता सो सत्य है, इसमें न कोई मान है।
क्या सत् तथा क्या है असत्,इसकी कठिन पहिचान है॥

(७)

जिस काल में जो दीखता,उस काल में सो होय सत्॥
जब जो नहीं है दीखता, उस काल में सो है असत्॥
जो हो कभी ना हो कभी, सच्चा न सो कहलाय है।
क्या सत् तथा क्या है असत्,यह जान बिरला पाय है॥

(८)

यह दृश्य नाहीं सत्य, तो भी दृश्य-द्रष्टा सत्य है।
निर्लेप उसकी दृष्टि है, द्रष्टा इसी से नित्य है॥
द्रष्टा लिया यदि जान, तब तो चित्त उसमें दीजिये।
क्या सत् तथा क्या है असत्, सशय कभी मत कीजिये

(९)

चिद्ब्रह्म केवल सत्य है, ना विश्व उससे भिन्न है।
ज्यों सिन्धु सब जलमात्र है, जल से नहीं कुछ अन्य है॥
चिद्ब्रह्म में अभ्यास से, जब लीन मन हो जायगा।
क्या सत् तथा क्या है असत्, यह मर्म सब खुल जायगा॥

(१०)

है ब्रह्म सत् है ईश सत्, है जीव सत् है सत् जगत्।
जब एक अद्वय तत्त्व है, तब सर्व ही है मात्र सत्॥
अद्वय लखाने के लिये, कल्पे गये है सत् असत्।
भोला! जगा जब स्वप्न से, पाया अखण्डित आप सत्॥

परतन्त्र कौन है ?

(१)

परतन्त्र सो ही मूढ है, वश में ना जिसकी इन्द्रियाँ।
अपनी तरफ है खीचती, ज्यों एक की बहु पत्नियां॥
कैसे सुखी सो होय जो, दस इन्द्रियों का दास है।
नर मूढ भोगासक्त का, निश्चय ही होता नाश है॥

(२)

परतन्त्र सो ही मूढ है, जो क्रोध के वश होय है।
बहु काल का तप एक दिन, में व्यर्थ देता खोय है॥
जो मूढ़ वश है क्रोध के, निज तन्त्र ना हो हो सके।
जिसके लगी घर आग हो, सुख से कहां वो सो सके॥

(३)

परतन्त्र सो ही मूढ है, जो लोभ के आधीन है।
हो जाय कोटाधीश भी, तो भी सदा ही दीन है॥
निजतन्त्र होना चाहता, पर लोभ नाँही त्यागता।
नभ वृक्ष से सो मूढ़ नर, है पुष्प लेना मांगता॥

(४)

परतन्त्र है सो मूढ़ जिसको, देह में अध्यास है।
छोटा बनाता आत्म को, सर्वत्र जिसका बास है।
छोटा बना दे वृहत् को, सो क्यों नही परतन्त्र हो।
मैला बतावे आपको, सो क्यों नही अपवित्र है॥

(५)

परतन्त्र है सो मूढ़ जो, ममता करे है गेह में।
करता सदा ही सनेह, अति अपने पराये देह में॥
मर देह माने आपको, स्वाधीन वा सो हो सके।
ना आदि को ना व्याधि को,ना मृत्यु को है खा सके॥

(६)

परतन्त्र सो ही मूढ है, जो भेद शिव मे देखता।
निज तन्त्र है सो धीर जी, शिव एक सब में देखता॥
शिव शुद्ध सब मे एक है, पावन परम निज तन्त्र है।
शिव आत्म जो ना जानता,निज तन्त्र भी परतन्त्र है॥

(७)

परतन्त्र सब ही जीव हैं, निज तन्त्र केवल ईश है।
होता वही निजतन्त्र जो, भजता सदा जगदीश है ।।
निजतन्त्र होना चाहता, जीवत्व नाही छोडता ।
सो मूढ़ फल टूटा हुआ, फिर वृक्ष मे है जोड़ता ।।

(८)

परतन्त्र सो है मूढ़ जो, सत्सग में जाता नही।
मै कौन हू क्या है जगत् ,यह जान है पाता नही ।।
क्या जीव है क्या ईश है, यह भी नही जो जानता ।
निजतन्त्र कैसे होय सो, जो भेद सच्चा मानता ।

(९)

परतन्त्र है सो मूढ जो, दुर्ग्रन्थ पढता नित्य है ।
सद्ग्रन्थ के पाठन पठन मे, देत नाही चित्त है ।।
सज्जन तथा सत् शास्त्र से, जो धीर करता नेह है ।
सो जान जाता है तुरत, परतन्त्र सबका देह है ।।

(१०)

परतन्त्र केवल देह है, देही सदा निजतन्त्र है ।
जो देह देही जानले, होता न सो परतन्त्र है ।।
चिन्मात्र देही भज सदा, जड देह भोला ! त्याग रे ।
निजतन्त्र हो परतन्त्रता, भव जेल से उठ भाग रे ।

अज्ञान की महा महिमा ।

(१)

मांसादि की नारी बनी, नर भी उन्ही का है बना ।
चैतन्य दोनों माहि सम है, भेद है तब लेश ना ॥
तो भी परस्पर मोह वश, आसक्त ऐसे होय हैं ।
यदि दैव वश जावे बिछुड,तो प्राण तक भी खोय है ॥

(२)

धन हेतु कोई रो रहा, सुत हेतु कोई रो रहा ।
दारा बिना कोई यहां, मुख आंसुओं से धो रहा ॥
रोता हुआ है जन्मता, रोता रहे है जन्म भर ।
रोता हुआ मर जाय है,धन धाम तज मुख फाड़ कर ॥

(३)

धन धर्म करने हेतु है, या भोग करने के लिये ।
ना पृथ्वी मे खोद गढ्ढा, गाढ धरने के लिये ॥
देता नही अधिकारियो को, आप भी ना खाय है ।
रक्षा करन मर कर यहां, फिर सर्प बन कर आय है ॥

(४)

यह देह है तो धन कमाना, क्या बडी कुछ बात है ।
धन भी न हो तो अन्नदाता, ईश हरदम साथ है ॥
तो भी रहे नर मूढ़ रोता, रात दिन धन के लिये ।
तज धर्म देता पुत्र दारा, प्राण तक धन के लिये ॥

(५)

राजा महाराजा बहुत से भूप बन कर चल दिये।
पृथ्वी यहां की है यहां ही, रो रही उनके लिये ॥
दिन रात प्राणी मर रहे, है देखते सुनते रहे।
धिक्कार है उस मूढ को, फिर भी जगत सच्चा कहे ॥

(६)

है ब्रह्म सत् मिथ्या जगत, श्रुति भगवति चिल्ला रही।
देही अनश्वर देह नश्वर, गीन गीता गा रही ॥
तो भी भजे है देह नर, देहेश है भजता नही ॥
आसक्ति धन की धाम की, सुतदार की तजता नही ॥

(७)

सच्चा न मिथ्या हो सके, मिथ्या न सच्चा हो सके।
साक्षी सदा सत असत् का, किस भांति मिथ्या हो सके।
सो सत्य नाही दीखता, मिथ्या कभी जो होय ना ॥
मिथ्या जगत है दीखता, जो कल्ल था है आज ना ॥

(८)

इस नाम के अरु रूप ने, सद्ब्रह्म ऐसा ढक दिया।
जिससे हुए है जीव सच्चे, ब्रह्म मिथ्या है किया ॥
सद्ब्रह्म के अज्ञान से, यह भासती है भिन्नता।
जब तक रहेगी भिन्नता, नाही मिटेगी खिन्नता ॥

(९)

मिथ्या जगत् कहते बहुत, चिन्ता नही पर छोडते ।
जिससे बढे चिन्ता अधिक, करने उसे ही दौड़ते ।।
श्रुति युक्ति अनुभव सिद्ध है, बाहर नही है सुख कही ।
बाहर फिरें सुख ढूँढते, मन स्वस्थ नर करते नही ।।

(१०)

अज्ञान की महिमा महा, यह पार इसका है नही ।
भोला ! सदा कहता रहे, नर अन्त आवेगा कही ।।
अज्ञान का सिर काट दे, जो ज्ञान की तलवार से ।
होता तुरत ही हैं सुखी, छुट जाय है संसार से ।

क्या करना चाहिए ?

(१)

ना राग नाही द्वेष नाही, रार करना चाहिये ।
छोटे बड़े सब जन्तुओं को, प्यार करना चाहिये ।।
सच्चा सरल सीधा सदा, व्यवहार करना चाहिये ।
निज आत्म के उद्धार हित, व्यापार करना चाहिए ।।

(२)

गुरु दान करना चाहिये, जल छान पीना चाहिए ।
शव देह की आसक्ति तज, शिव हेतु जीना चाहिये ।।
रवि, चन्द्र, पर्वत, मेघ, सम, निर्हेतु जीना चाहिये ।
टूटे जग मर्याद ज्यो, जल सेतु जीना चाहिये ।।

(३)

ना ऋद्धि मे ना सिद्धि मे, ही अब अटकना चाहिये ।
भटका बहुत भव भूमि मे, अब ना भटकना चाहिये ॥
भटका घनो मर्कट यथा, अब ना भटकना चाहिये ।
लादा बहुत सिर बोझ अब, बोझा पटकना चाहिये ॥

(४)

स। इन्द्रिया स्वाधीन करके, दान्त होना चाहिये ।
शिव शान्त का कर ध्यान पावन,शान्त होना चाहिये ॥
मिथ्या जगत् की चमक से, ना भ्रान्त होना चाहिये ।
सायुज्य शिव का पायके, दु खान्त होना चाहिये ॥

(५)

रह दुर्जनो से दूर ही, दुस्सग तजना चाहिये ।
रह सज्जनों के सग मे, सत्सग भजना चाहिये ॥
सब रग कच्चे धोय पक्के, रग रगना चाहिये ।
बहु काल सोते हो गया, तज नीद जगना चाहिये ॥

(६)

धीरज धरा से सीख करके, धीर बनना चाहिए ।
गिरि सम अचल दृढ सिधु सम,गभीर बनना चाहिए ॥
पर पाप हरने हेतु, गगानीर, बनना चाहिए ।
दानी अमानी ज्ञानियो मे, मीर बनना चाहिए ॥

(७)

ज्यों सूर्य, छल, त्यों द्रव्य कर, एकत्र लेना चाहिए।
पाकर समय अधिकारियों को, बाँट देना चाहिए॥
दर्पण यथा मन मांहि ले, सब त्याग देना चाहिए।
ज्यों 'कैम्रा संस्कार नाही, दाव लेना चाहिए॥

(८)

ना हर्ष नाहीं शोक नाही, लोभ करना चाहिए।
यदि मृत्यु दीखे सामने, तो भी न डरना चाहिए॥
आत्मा न जन्मे ना मरे, निश्चय न हटना चाहिए।
शव देह में से भिन्न कर, शिव माहिं डटना चाहिए॥

(९)

यह बन्धु है यह शत्रु है, यह भेद तजना चाहिए।
सब ब्रह्म के ही रूप है, ऐसा समझना चाहिए॥
करने न करने में कभी, नाही उलझना चाहिए।
चेतन अचेतन, ग्रन्थि दृढ, सम्यक् सुलझना चाहिए॥

(१०)

मै देह हू सकल्प यह, ना भूल करना चाहिए।
ममता अहता देह की, निर्मूल करना चाहिए॥
मन हाथ में विज्ञान की, तलवार लेना चाहिए।
अज्ञान का सिर काट भोला! मार देना चाहिए॥

संसार-स्वप्न

(१)

ना रज्जु जानी जाय तब तक, सर्प भय दिखलाय है।
जब रज्जु जानी जाय है, तब सर्प लय हो जाय है ॥
जब तक न दीखे ब्रह्म तब तक, भय जगत् उपजाय है।
जब ब्रह्म जाना जाय है, जग का पता ना पाय है ॥

(२)

ज्यो बाल कल्पित भूत से, मर जाय बालक आप है।
अपने रचे ससार से, त्यो पाय नर सन्ताप है ॥
जब तक मलिन है बुद्धि तब तक, दु ख देता है जगत् ।
जब बुद्धि होती शुद्ध तब ना, दु ख देता जग असत् ॥

(३)

मरुभूमि माहो वारि जैसे, धूप मे है दीखता।
मिथ्या जगत् भो मूढ नर को, सत्य तैसे दीखता ॥
ज्यो स्वप्न से जागे बिना, होता नही स्वप्ना असत् ।
त्यो तत्त्व को जाने बिना, होता नही मिथ्या जगत् ॥

(४)

ज्यो अक्ष काँचन कटक को, कर का कटक है मानता।
यह है कनक नाही कटक, ऐसा नही है जानता ॥
नर मूढ़ त्यो इस दृश्य को, है दृश्य सच्चा मानता।
है ब्रह्म यह नाही जगत, ऐसा नही है जानता ॥

(५)

जैसे मुमुक्षु व्योम में, गधर्वपुर है देखता।
गधर्वपुर का दूसरे को, कुछ नही होता पता॥
है बुद्धि जिसकी शुद्ध उनको, ब्रह्म केवल भासता।
जिनकी मलिन है बुद्धि उसको, दीखती है भिन्नता॥

(६)

यह विश्व लम्बा स्वप्न है, ममता अहता युक्त है।
है दीखता उस मूढ़ को, जो देह से संयुक्त है॥
जिन सज्जनों को देह में, होता नहीं अभ्यास है।
उनके लिये यह दीखता, जग शून्य ज्यों आकाश है॥

(७)

सम शान्त चेतन एक रस, शिव सर्व मे भरपूर है।
है आप सबका आप ही, ना पास है ना दूर है॥
जो शस्त्र से कटता नही, जो आग से जलता नही।
ना सूखता जो वायु से, जो वारि से गलता नही॥

(८)

अशरीर नभ सम सर्वगत, तीनों अवस्था से परे।
कर्त्ता नही भोक्ता नही, जन्मे नहीं नाँही मरे॥
ज्ञाने विना जिनके कभी, मिटना नही है यह जगत्।
देता महां है दुःख यद्यपि, बीज धुन है सम असत्॥

(४)

तव दृश्य द्रष्टा देखता, जव आप से हट जाय है।
जव आपको है देखता, तव दृश्य नाही पाय है॥
द्रष्टा स्वय सर्वत्र अपने, आपको है देखता।
ना स्वप्न में भी दृश्य को, या अन्य को है देखता॥

(५)

विनु आख के ज्यो रूप नाही, देखने मे आय है।
विनु बुद्धि निर्मल ब्रह्म का, कोई पता नहि पाय है॥
भोला ! बनाले बुद्धि निर्मल, ब्रह्म दर्शन पायेगा।
स्वपना भयानक जायगा, शिव तत्त्व मे जग जायगा॥

विद्या-अविद्या

(१)

एकत्व दर्शन ज्ञान है, विद्या वही कहलाय है।
भिन्नत्व दर्शन है अविद्या, भ्रान्ति मानी जाय है॥
जानी अविद्या जाय है, तव फिर नही है खेंचती।
ज्यो जानने के वाद मृग-तृष्णा नही है ऐंचती॥

(२)

परमार्थ के दृढ वोध से, निर्मूल होती वासना।
ज्यो दीप से भागे अधेरा, आय जाता चाँदना॥
निर्मूल होती वासना, तव ना अविद्या पाय है।
जैसे गधे के सीग नाही, देखने मे आय है॥

(३)

जब शास्त्र से अरु युक्ति से, मिथ्या अविद्या जाय गल।
ना दीखता है फिर जगत् संकल्प का ज्यो सैन्यदल ॥
आस्था ना होती देह मे ना भोग की ही आश है।
आयास के बिनु सहज ही, कट जाय यह भवपाश है ॥

(४)

जब आश रूपी पाश यह, मन मांहि से जाती निकल।
तब पुरुष अति ही शोभता, ज्यों चन्द्र शोभे पूर्ण कल ॥
होता परम शीतल हृदय, ज्यो वृष्टि से धोया अचल।
पाता परम आनन्द है, ज्यो मेरु है होता अटल ॥

(५)

कंगाल पाकर राज्य ज्यो, होता बहुत ही है सुखी।
ना स्वप्न मे भी फिर कभी, होता कभी भी है दु:खी ॥
नाही समाता आप मे, सर्वत्र ही भर जाय है।
कल्पांत का सागर यथा, सीमा रहित हो जाय है ॥

(६)

धारण करत अति धीरता, ना कांपता ना कोपता।
ज्यो वृक्ष रहता है अचल, सम शान्त नाही क्षोभता ॥
पीकर सुधा ज्योंमनुज त्यो, होता स्वयं ही तृप्त है।
हो दु:ख कितना ही कड़ा, होता कभी ना तप्त है ॥

(७)

ज्यो दीप घट भीतर धरा, ज्यों अग्नि ज्वाला तेजमय।
मणि होय अथवा चमकता,त्यो होय भीतर शान्तिमय॥
सर्वात्म होता सर्वतग, हो जाय सर्वाधार है।
आकार विनु देखे स्वय, सर्वेश सर्वाकार है॥

(८)

इच्छा न करना भोग को, तजना जो निन्दित भोगना।
है योग सम्यक सिद्ध अन्न, कर्तव्य उसका योग ना॥
निर्द्वन्द्व है, नि शँक है, सलग्न अपने आप मे।
निर्मोह है, नि शोक है, समग्न अपने आप मे॥

(९)

रुचता नही जीना उसे, ना मरण से भय खाय है।
स्वस्वरूप से हटता नही, सर्वत्र आवे जाय है।
ससार मे सो जाय है, निज तत्त्व मे जग जाय है।
करता सभी भोगे सभी, फिर भी न पीवे खाय है॥

(१०)

भोला ! अविद्या है नही, तो त्याग मत या त्याग रे।
दे मोह निन्दा त्याग अब, तू तत्त्व माँही जाग रे॥
जब तत्व मे जग जायगा, तब दु ख सब भग जायेगा।
सुख सिन्धु केवल आपको, ही सर्वदा तू पायगा॥

मनोनाश !

(१)

जब एक केवल आत्म है, तो मन वहां से आ सके।
संकल्प से यदि आ सके, सच्चा कहा ना जा सके ॥
नाही किसी भी भान्ति, जैसे बाँझ सुत उपजा सके।
संकल्प मिथ्या से कभी भी, सत्य मन ना आ सके ॥

(२)

ना मन नहीं है बुद्धि, नाही प्राण नाहीं देह है।
है एक सच्चित् आत्म ही, इसमें नही सदेह है ॥
सकल्प से प्रसाद को, सच्चा ना कोई मानता।
संकल्प जा मन सत्य क्यों, हे प्राज्ञ ! तू है जानता ॥

(३)

जब मन नहीं है सत्य तो, यह दृश्य कैसे सत्य है।
कारण असत् का कार्य भी, सर्वत्र होय असत्य है ॥
यह दृश्य नाही सत्य है, मन चित्र माया मात्र है।
अध्यस्त आत्मा मांहि है, इस हेतु आत्मा मात्र है ॥

(४)

मन है बना अज्ञान का, आत्मा तलक ना जा सके।
जैसे उजाले के निकट, नाही अन्धेरा आ सके ॥
जब आत्म दर्शन के लिये, उत्साह में मन जाय है।
तब आप लय हो जाय है, दर्शन न करने पाय है ॥

(५)

मन का जहा होता उदय, आत्मा तहा ढक जाय है।
ज्यों चन्द्र सम्मुख राहु आकर, चन्द्र बिम्ब छुपाय है।।
मिथ्या स्वयं मन सत्य आत्मा, तक नही है जा सके।
अपने बनाये दृश्य को ही, मात्र है बतला सके।।

(६)

कूटस्थ आत्मा जब कभी, स्वस्वरूप से हट जाय है।
सकल्प उठने से तभी, मन नाम सोई पाय है।।
रुक जाय ज्योही प्राण, त्योही लीन मन हो जाय है।
सच्चित तथा आनन्दघन,शिव आत्म ही बन जाय है।।

(७)

मन मे नही कुछ शक्ति है,ना चलन की ना ज्ञान की।
है ज्ञान शक्ति ब्रह्म की, अरु चलन शक्ति प्राण की।।
चिद्ब्रह्म निश्चल पूर्ण है, जड अल्प चलता प्राण है।
चेतन अचेतन युक्त हो, ना युक्ति है ना प्रमाण है।।

(८)

चिज्जड नही जब मिल सके,फिर मन कहांसे जाय बन।
चिज्जड मिलाते मूढ है, वे ही बनाते भूत मन।।
जो मूढ मन लेते बना, वे दुःख निशिदिन पाय है।
ऊँचे चढे नीचे गिरें, जन्मे मरें पछताय हैं।।

(९)

चित् शक्ति का अरु प्राण का, सकल्प करता संग है।
संकल्प ना जावे किया तो, भवभय भंग है॥
सर्वत्र है परिपूर्ण चित, आता न जाता है कही।
संकल्प उसमें हो सके, यह भी कभी संशय नही॥

(१०)

भोला ! नहीं तब मन कही, जैसे नहीं 'हौवे' कभी।
तो भी किये भयभीत है, इस मृतक 'हौवे' ने सभी॥
गुरु शास्त्र की जो ले शरण, भयभीत से छुट जाय है।
सर्वत्र करते आत्मदर्शन, मन कहीं ना पाय है॥

जागिये अब जागिये।

(१)

जो कुछ यहाँ है दीखता, मिथ्या सभी ही जानिये।
जो आज है कल होय ना, सो सत्य कैसे मानिये॥
शिव सत्य साक्षी एक, अद्वय देव में अनुरागिये।
व्यामोह निद्रा त्याग दीजे, जागिये अब जागिये॥

(२)

देखे वहुत से स्वप्न अब तक, अब न स्वप्ना देखिये।
जो जागता है सर्वदा, सो आप अपना देखिये॥
इस आपको मत छोड़िये, इसके सिवा सब त्यागिये।
ना त्याग सकते आप इसको, जागिये अब जागिये॥

(३)

रोते बहुत दिन हो गये, आगे कभी मत रोइये।
ना व्यर्थ अपना शुद्ध मुखडा, आंसुओ से धोइए॥
इस दुःखमय भव जेल से, उठ कर तुरत ही भागिए।
भव बेडियाँ दो तोड सारी, जागिए अब जागिए॥

(४)

सीखी बहुत सी युक्तियाँ, यह पेट भरने के लिए।
बहु वेष धारे अन्त मे, मुख फाड मरने के लिए॥
मत दण्ड धारण कीजिए, भिक्षा न घर-घर मागिये।
दीजे पटक यह देह झोली, जागिये अब जागिये॥

(५)

मरुभूमि जल आभास से, ना प्यास जैसे जा सके।
कल्पों तलक ये भोग भोगें, तृप्ति नाँही पा सके॥
शब्दादि से मुख मोड कर, ईश्वर भजन मे लागिये॥
सतृप्त अपने आप में हो, जागिये अब जागिये।

(६)

है राग भोगो माँहि तब, तक वोध नाही प्राप्त हो।
ना वोध होवे प्राप्त तब तक मोक्ष नाही प्राप्त हो॥
यदि भोग मे ही प्रेम है, ब्राह्मी मिठाई पागिये।
लीजे निरन्तर स्वाद अद्भुत, जागिये अब जागिये॥

(७)

मन का कहा मत मानिये, यह मन बडा ही धूर्त है।
मन के कहे में आनकर, उलटा टँगे अवधूत है॥
माता उदर में आपको, आगे ना उलटा टांगिये।
इच्छा न कीजे नारि की, अब जागिये अब जागिये॥

(८)

दुस्सग बन्धन रूप है, तज सग दुर्जन दीजिये।
सत्सग निशिदिन कीजिये, निस्संगता भज लीजिये॥
निस्सगता की तोप से, माया किले को दागिये।
माया किले को कीजिए सर, जागिए अब जागिए॥

(९)

अभिमान तजिए गेह का, सम्बन्ध तजिए देह का।
निर्मूल कर भव वासना, दो काट रस्सा नेह का॥
तज राग दीजे रागनी, शिव राग माही रागिए।
शिव रूप हो सुख पायगा, बस जागिये अब जागिये॥

(१०)

भाला ! सिखा मत अन्य को, तू ले सभी से सीख रे।
शम शान्त शिव का ध्यान कर, मैं ब्रह्म हूँ मत चीख रे॥
ना हर्ष कर, ना शोक कर, ना द्वेष कर ना राग रे।
सोजा जगत से तत्व निज में, जाग रे अब जाग रे॥

(१]

ससार मिथ्या मानता है, ब्रह्म सच्चा जानता।
देखा सभी समझे सभी, करता सभी करवावता ।।
जल मे रहे जैसे कमल, कोई जिसे ना खीचता।
ज्ञानी वही योगी वही, जीता वही है जागता ।।

(२)

नाँही किसी से द्वेष है, नाही किसी मे राग है।
सतृप्त अपने आप में है, आप मे अनुराग है ।।
नाही किसी से वासता, या सर्व से है वासता।
शूरा वही पूरा वही, जीता वही है जागता ।।

(३)

कोई फसा है भोग मे, कोई लगा है योग में ।।
नाही लगे हैं योग मे, नाँही फँसे है भोग मे ।।
रहता सदा ही मौन, सब से बोलता है चालता।
निश्चिन्त्य आत्मा राम है, जीता वही है जागता ।।

(४)

कोई भजे है भिन्नता, कोई भजे है शून्यता।
कोई भजे है अल्पता, कोई भजे सर्वज्ञता ।।
कुछ भी नही करता ग्रहण, कुछ भी नही है त्यागता।
निर्द्वन्द्व नित ही स्वस्थ है, जाता वही है जागता ।।

(२५१)

(५)

दूजा नही सुनता कभी, दूजा कही ना देखता।
दूजा कभी छूता नहीं, दूजा कही ना सूघता॥
दूजा कभी चक्खे नही, दूजा कभी ना मानता।
दूजा नही है जानता, जीता वही है जागता॥

(६)

जो एक ही सुनता सदा है, एक ही है देखता।
जो एक ही छूता सदा है, एक ही है सूँघता॥
जो एक ही चक्खे सदा है, एक ही है मानता।
जाने सदा है एक ही, जीता वही है जागता॥

(७)

जो आपही सुनता सदा है, आप ही है देखता।
छूता सदा ही आपको, जो आपको ही सूँघता॥
चक्खे सदा जो आपही को, आप ही को मानता।
जाने सदा जो आपको, जीता वही है जागता॥

(८)

एकत्व में संमग्न है, पूर्णत्व मे तल्लान है।
निर्दोष समचित एक रस, शिव सर्व संशय हीन है॥
अल्पज्ञता, सर्वज्ञता विक्षिप्तता एकाग्रता।
कोई न जिसमे धर्म है, जीता वही है जागता॥

(९)

निष्कम्प जैसे वृक्ष जैसे, सिन्धु ज्यों गम्भीर है।
ज्यो कृष्ण लीला मात्र करता, राम सम रणधीर है॥
कर्तृत्व ना भोक्तृत्व ना, जिसमे नही त्रैगुण्यता।
सो युक्त है सो मुक्त है, जोता वही है जागता॥

(१०)

दे त्याग भोला! विषमता, भजरे सदा ही साम्यता।
विश्वेश के होजा शरण, तज मूर्खरा चातुर्यता॥
इस देह का अभिमान अव्यय, आत्म को है बाधता।
दे त्याग देहाध्यास जो, जीरा वही है जागता॥

बोले मती

(१)

है ब्रह्म सत् मिथ्या जगत, यह जीव ही सो ब्रह्म है।
ना ब्रह्म से है अन्य ये, यह सत्य है यह धर्म है॥
है सिद्ध अनुभव युक्ति से, चिल्ला रही श्रुति भगवती।
यह जीव है ब्रह्मांश ही, ऐसा कभी बोले मती॥

(२)

होता सदा जय सत्य का, झूठा सदा है हारता।
मिथ्या वचन है बाधता, सच बोलता है तारता॥
सच बोल पूरा तोल रे, झूठी गवाही दे मती।
तर जायगा संसार से, मिथ्या कभी बोले नही॥

(३)

नांही कभी जो नष्ट हो, सो सत्य निस्सदेह है ।
है सत्य ऐसा ब्रह्म ही, इसमें नही सन्देह है ।।
जो आज है सो कल नही, सच्ची कही ना जावती ।
यह देह सच्चा मान मत, मिथ्या वचन बोले मती ।।

(४)

जो सत्य उपजे देह से, सो सत्य है कल्पा हुआ ।
कैसे भला हो सत्य जो, हो असत् से उपजा हुआ ।।
सो है असत् यह ठीक है, पर बात यह भूले मती ।
है सत्य भाषण पाप हर, मिथ्या बचन बोले मती ।।

(५)

परमार्थ से जो सत्य है, सो सत्यता ना त्यागना ।
मिथ्या जगत के मांहि भी, उस सत्य की है सत्यता ।।
उस सत्य को बतलाय जो, सच्ची वही है भारती ।
उस भारती को गा सदा, उसके सिवा बोले मती ।।

(६)

सो भारती है कह रही, अद्वैत है, एकत्व है ।
जो दीखता है द्वैत माया, मात्र है, निस्तत्व है ।
है वस्तुतः एकत्व मन से, भिन्नता है भासती ।
एकत्व का अभ्यास कर, निष्चेष्ट हो बोले मती ।।

काम कहता है।

(१)

होता जहां पर काम है, आता वहाँ पर राम है।
रहता जहाँ पर राम है, जाता वहां ना काम है॥
लोकोक्ति यदि यह सत्य है, यह बात भी झूठी नही।
मेरे बिना ना राज को, देखा किसी मे है कही॥

(२)

दूषण पराये देखना, अच्छी नही यह बात है।
निर्दोष को दोषी बताना क्या भली यह बात है॥
सतसंग कर सत्शास्त्र पढ,शुचि सूक्ष्म मति कर लीजिये।
बनकर विवेकी सत् असत्, का ठीक निर्णय कीजिये॥

(३)

मेरे बिना विश्वेश मे, ईक्षण नही है घट सके।
ईक्षण नही जो घट सके, तो सृष्टि कैसे घट सके॥
यदि सृष्टि ना ईश्वर करे, तो कौन जाने ब्रह्म को।
जाने यदि नही ब्रह्म कैसे, मुक्ति पावे कौन फिर॥

(४)

यदि मैं न होता विश्व यह, ईश्वर बना सकता न था।
होता नही यदि विश्व कोई, भोग पा सकता नही॥
होता नही यदि भोग तो, फिर कर्म कर सकता न था।
कटता यदि नहीं कर्म तो,फिर मोक्ष घट सकता न था॥

(५)

मेरे बिना ना दृष्टि हो, मेरे बिना ना सृष्टि हो।
ना यज्ञ हो ना दान तप, मेरे बिना ना वृष्टि हो॥
ना दुःख हो ना दोष सुख, ना नर्क हो ना स्वर्ग हो।
साधन न हो साधक न हो ना बन्धना अपवर्ग हो॥

(६)

यदि मैं न होता जीव सब, रहते पड़े अज्ञान में।
जैसे मरे या सो रहे हों, भूत बन सुन्सान में॥
मुझको ही भेजा ईश ने, उनको जगाने के लिये॥
कर कर्म ईश्वर प्रति हित, निज अघ मिटाने के लिये।

(७)

वैराग्य करके मोह से, गुरु पास जाने के लिये।
श्रवणादि कर गुरु के निकट, निज बोध पाने के लिये॥
अभ्यास से वैराग्य से, मन के मिटाने के लिये।
सब वासनाएं क्षीण कर, शिव दर्श पाने के लिये॥

(८)

कोपाग्नि से था शम्भु पहिले, भस्म मुझको कर दिया।
उपरोक्त करके चिंतवन जग,व्याप्त फिर मुझको किया॥
शिव ने जिलाया है मुझे, जग श्रेय करने के लिये।
जो श्रेय के ना योग्य, उनका प्रेम करने के लिये॥

(९)

मत दोष मुझको दीजिये, कल्याण अपना कीजिये।
विश्वेश के हो कर परायण, जीत मुझको लीजिए॥
मेरी मती बस हूजिए, वश मे मुझे कर लीजिए।
फिर आप ही है राम, संशय लेश भी मत कीजिए॥

(१०)

दुर्वासनाये त्याग भोला! शुभ किया कर भावना।
तज दे असत् की कामना, सद्ब्रह्म की कर कामना॥
जब सत्य दृढ हो जायगा, तब असत् सब मिट जायगा।
यह काम अपना आप करके, आप भी हट जायगा॥

क्रोध कहता है।

(१)

छाती जलाता क्रोध है, ना क्रोध करना चाहिए।
क्यो मन जलाना अन्य का, क्यो आप जलना चाहिए॥
है काम मे सुख लेश पर, सुख लेश नाही क्रोध में।
सब दोष ही हैं क्रोध मे: गुण एक नांही क्रोध मे॥

(२)

ईश्वर बनाया व्यर्थ ही, है क्रोध आकें क्रोध मे।
ऐसा कथन नाँही उचित, गुण भी बहुत है क्रोध मे॥
सामान्य नर की बुद्धि मे, ना तत्व मेरा आ सके।
ईश्वर कृपा एकाद हो है, मर्म मेरा पा सकें॥

(३)

यदि मै न होता राम, कसे ताडिका जा मारते।
शर एक से मारीच कैसे, सिंधु पार उतारते॥
मेरे विना लका पुरी, हनुमान कैसे जारते।
सीता न मिलती राम तदि, लकेस नाही मारते॥

(४)

यदि मै न होता कृष्ण, कैसे नाग का करते दमन।
कसादि कैसे मारते, होता यहा कैसे अमन॥
यदि मै न होता विष्णु, कैसे फिर सुदर्शन धारते।
गजराज का जीवन बचाकर, ग्राह कैसे मारते॥

(५)

यदि मैं न होता यम, किसी को दड कर सकते न थे।
विनु दड उनके पाप लाखो, जन्म हर सकते न थे॥
हरते नही यदि पाप तो, नर जन्म पा सकते न थे।
पाते नही नर जन्म, तो, कैवल्य पा सकते न थे॥

(६)

यदि मैं न होता शभु शकर, रुद्र बन सकते न थे।
बनते नही यदि रुद्र तो, सहार कर सकते न थे॥
सहार यदि करते नही, भवचक्र चल सकता न था।
चलता नही भवचक्र तो, भवबन्ध टल सकता न था॥

[७]

यदि मै न होता भोग से, वैराग्य हो सकता न था।
होता नही वैराग्य तो, निज वोध हो सकता न था॥
बिनु वोध के भव सिधु से, कोई निकल सकता न था।
भव सिधु से निकले बिना,सुख सिधु मिल सकता न था॥

[८]

मेरे बिना चिकना घड़ा, नर जोश मे ना आवता।
ना जोश में आये बिना, घर छोड़ कोई जावता॥
जाता नहीं घर छोड तो, एकान्त मे ना आवता।
आये बिना एकान्त में, शिवतत्व नाही ध्यावता॥

[९]

मै आधि हूं, मै व्यधि हूं, यमदूत हूं, मैं काल हूं।
मै सिह हू, मै भेड़िया, मै अग्नि हूं, मै व्याल हूं॥
इत्यादि लाखों रूह धर, मै पापियो को मारता।
निष्काम भगवद्भक्त को, वैराग्य सिखला तारता॥

[१०]

क्रोधी स्वय है रुद्र भोला ! क्रोध कैसे तज सके।
मारा त्रिपुर नही जाय तब तक, रूप कैसे भज सके॥
जब तक त्रिपुर नाहि मरे,तव तक क्रोध भी ना जायगा।
जिस दिन मरेगा त्रिपुर उस दिन, क्रोध नाही आयगा॥

लोभ कहता है ।

(१)

अन्धा करूँ बहरा करूँ, गूँगा बनाऊँ लोभ मैं ।
दानी अमानी शिष्ट का, अपयश कराऊँ लोभ मै ॥
जैसे मदारी बांदरा, तैसे नचाऊँ लोभ मैं ।
भवसिंधु माँही डालकर, गोते खिलाऊ लोभ मै ॥

(२)

यह बात सम्यक् सत्य है, विश्वास इस पर कीजिये ।
यह भी नही है झुठ, यह भी कान दे सुन लीजिये ।
यदि होय हित तो मानिये,यदि हो अहित मत मानिए ॥
करता न जो हित आपका, पशु तुल्य सो नर जानिए ॥

(३)

ना पुत्र ना परिवार का, ना लोभ धन का कीजिए ।
ना खान का ना पान का, ना लोभ तन का कीजिए ॥
जप का नही तप का नही, ना लोभ यज्ञ का कीजिए ।
यदि लोभ है प्यारा तुम्हें, तो लोभ सुख का कीजिए ॥

(४)

सब लोभ सुख का कर रहे, पर सुख नही है जानते ।
क्या वस्तु है सुख है कहा, दो चार ही है जानते ॥
शब्दादि मे सुख है नहीं, शब्दादि मे सुख मानते ।
नर मूढ़ पाते सुख नही, वे व्यर्थ रेता छानते ॥

(५)

जो वस्तु मिथ्या प्लप है, सुख रूप हो सकती नही।
मिथ्या नदी मरुकिरण,किञ्चित,प्यास खो सकती नही॥
जो जाय जल पीने वहाँ, सो दुःख ही नर पाय है।
आस्था करे शब्दादि की, सो व्यर्थ कष्ट उठाय है॥

(६)

सुख एक अक्षय नित्य है, सो आप सबका आप है।
जिसमें न किञ्चित पाप है, ना लेश भी सताप है॥
बस एक उसका लोभ कीजे, अन्य का तज दीजिए।
सब विश्व से मन को हटा कर,ध्यान सुख का कीजिए॥

(७)

जिस वस्तु का मन,ध्यान करता होय उससे सग है।
हो जाय जिससे सग मन, रंग जात उसके रंग है॥
ना हो किसी का ध्यान तो,वह मन अमन हो जाय है।
हो जाय है जग मन अमन,तब स्वाद अद्भुत आय है॥

(८)

मत ध्यान कीजे अन्य का, मत संग कीजे अन्य का।
निस्सग हो कर कीजिये, बस ध्यान एक अनन्य का॥
जब पक्व होगा ध्यान तब, मन मैल सब धुल जायगा।
जल उपज जैसे पिघल कर,मन ब्रह्म में मिल जायगा॥

(९)

जो ब्रह्म है सो आत्म है, सच्चित् वही, सुख है वही ।
उसके सिवा सुख है नही, सुख रूप है सो आप ही ।।
जो लोभ उसका है करे, निर्लोभ वे ही जाँय है ।
सव झझटो से छूट कर, सुख रूप हो सुख पाय है ।।

(१०)

होता नही यदि लोभ तो, सुख कौन कैसा ढूढता ।
ढूढे विना मिलता न सुख, तो दुःख कैसे छूटता ।।
जो लोभ सुख देवे दिखा, उस लोभ मे क्या दोप है ।
भोला ! कहाँ है दोप जव, सव ब्रह्म सम निर्दोप है ।।

कितनी वड़ी है मूर्खता !

(१)

सुख दुःख वाहर हैं नही, यह कौन नाही जानता ।
सुख दुःख मन के धर्म हैं, वच्चा तलक है मानता ।।
फिर भी भटकता मूढ नर, वाहर फिरे सुख खोजता ।
छोडा वगल ढूढा नगर, कितनी वडी है मूर्खता ।।

(२)

मैं कौन हूँ आया कहाँ, से, कुछ नही है जानता ।
क्या सत्य है, क्या है असत्, यह भी नही पहिचानता ।।
क्या धम और अधर्म क्या, इस वात का ना है पता ।
उपदेश फिर भी दे रहा, कितनी वड़ी है मूर्खता ।।

(३)

सत्शास्त्र है देखा नही, सत्सग भी नाही किया।
आचार शिष्टाचार मैं, ना भूल कर भी मन दिया॥
बन जाय है फिर भी गुरु, चेले घने कर डालता।
अन्धा बनाता मार्ग है, कितनी बड़ी है मूर्खता॥

(४)

बाहर जगत् मे भिन्नता है, तत्त्व में है एकता।
श्रुति सन्त सब ही कह रहे है, आप भी है देखता॥
फिर भी जगत् में एकता, नर मूढ़ करना चाहता।
दिन रात करना रात दिन, कितनी बडी है मूर्खता॥

(५)

व्यवहार कारण भिन्नता है, शान्ति कर अद्वैतता।
व्यवहार माँहो एकता. अरु चित्त माही भिन्नता॥
विपरीत करता आप है, अरु अन्य को सिखलावता।
खारी मिलाना खीर में, कितनी बड़ी है मूर्खता॥

(६)

निज तन्त्र केवल ईश है, यह विश्व सब परतन्त्र है।
तज विश्व जो ईश्वर भजे, हो जाय सो निज तन्त्र है॥
निज तन्त्र होना चाहता है, विश्व नांही छूटता।
ईशत्व चाहे कूकरा, कितनी बड़ी है मूर्खता॥

(७)

ना भक्ति का, ना ज्ञान का, ना योग का साधन किया।
खाने पहिनने मे बिता, कौमार यौवन है दिया ॥
ईश्वर भजन से अन्य को, भी यत्न-पूर्वक रोकना।
आकर नर पशु तुल्यता, कितनी बड़ी है मूर्खता ॥

(८)

गीता पढ़े है रात दिन, करता नही निज धर्म है।
जितना करे जो कुछ करे, करना सभी पर-धर्म है ॥
नर धर्म ईश्वर भक्ति है, ना ईश मे अनुरागता।
संसार मे रच पच रहा, कितनी बड़ी है मूर्खता ॥

(९)

आदेश लेता लालची, उपदेश देता मूढ है।
दोनो नरक मे जायगे, कल्याण होना दूर है ॥
नर तन मिला था मोक्ष हित, ना हाथ आई मुक्तता।
उलटा गवाया भोग भी, कितनी बड़ी है मूर्खता ॥

(१०)

भोला ! सदा सत्शास्त्र पढ, सत्सग मे भी जा सदा।
बाहर कभी मत देख रे, अन्तर्मुखी हो सर्वदा ॥
नाही कही है भिन्नता, नाही कही है शून्यता।
तज भिन्नता, तज शून्यता, भज प्रेम-पूर्वक पूर्णता ॥

त्याग ही मुख्य है।

(१)

आदित्य किरणें छोडता, तब भूमि से जल कर्षता।
जल का बने है मेघ, वर्षा-काल में सो वर्षता॥
बरसात से है अन्न होता, अन्न सब को पालता।
यदि सूर्य ना तजता किरण, भव चक्र कैसे चालता॥

(२)

रज वीर्य तजते मातु-पितु, तब पुत्र पाता जन्म है।
वे ही तजे है द्रव्य जब, तब सीखता सुत धर्म है॥
इस धर्म बिन ना प्राप्त होता, अर्थ नाही काम है।
इनके बिना ससार मे, मिलता नहीं आराम है॥

(३)

जब बीज मिलता धूल मे, पाता परम विस्तार है।
हो वृक्ष पत्ते पूल दे, करता महा उपकार है॥
यदि धूल मे नांही मिले, तो बीज क्या यश ले सके।
पत्ता नही, फल फूल नाही, छाह भी ना दे सके॥

(४)

मिट्टी गला जावे, सड़ाई खूब कूटी जाय है।
फिर चक्र के ऊपर चढ़ा, चक्कर खिलाई जाय है॥
तप में सुखा कर धर अवे, माही तपाई जाय है।
तब ही सुराही जल पिला, शीतल सराही जाय है॥

(५)

श्री राम तज कर राज्य, चौदह वर्ष तक बन मे रहे।
हिम, वात, तप, कटक तथा, शर तीक्ष्ण असुरो के सहे॥
सीता तलक दी त्याग, तब ही आज गाये जाय है।
सुन कीर्ति उनकी नारि नर, सुख शान्ति अक्षय पाय है॥

(६)

श्री कृष्ण मथुरा त्याग दीनी, जाय गोकुल मे बसे।
गोकुल तजा तज द्वारिका दी, सिंधु के भीतर धसे॥
रण तक दिया है छोड, यो 'रणछोड़' पाया नाम है।
आयुष्य भर ही त्याग कीन्हा, अन्य ना कुछ काम है॥

(७)

उपदेश दीन्हा पार्थ को, सब धर्म तजने के लिये॥
अपनी शरण मे आय केवल, आत्म भजने के लिये।
है सिद्ध इससे त्याग ही, सब साधनो मे मुख्य है॥
मिलती इसी से शक्ति है, मिटता इसी से दु:ख है॥

(८)

करता भगीरथ त्याग ना, गगा बुलाता कौन फिर।
गगा न तजती गोमुखो तो, अघ मिटाता कौन फिर॥
मिटते न अघ तो सत निर्मल, चित्त कैसे दीखते।
मिलते हमे ना सत तो, हरि भक्ति किससे सीखते॥

(९)

निज दृष्टि तजता ब्रह्म जब,तब दीखती यह श्रष्टि है।
जब त्तागता है श्रष्टि तबही, पावता निज दृष्टि है॥
जब श्रष्टि का होना न होता, त्याग के स्वाधीन है।
तो त्याग सबसे श्रेष्ट है, यह बात संशयहीन है॥

(१०)

दे त्याग भोला ! देखना फिर दृष्टि नाना सृष्टि है।
दोनों जहां दीखे नही, सो ही अलौकिक दृष्टि है॥
विरला करोडों मांहि अद्भुत, दृष्टि ऐसी पाय है।
सो भक्त योगी मुक्त है, ज्ञानी वही कहलाय है॥

हमको दुःख क्यों होता है ?

(१)

सुख दुःख मन के माँहि है, श्रुति सन्त सब ही कह रहे।
हम ढूंढते बाहर फिरे, भय-मय नदी मे वह रहे॥
शिष्टाचरण का अनुकरण, सुख शान्ति का आधार है।
हम दु.ख इससे पा रहे, तज दीन शिष्टाचार है॥

(२)

सुख दु.ख मादक है, मृषा श्रीकृष्ण यह बतलाय है।
आवे चले फिर जाय है, नाही ठहर वह पाय है॥
जो धीर सह लेते उन्हे, सुखमय रपम पद पाय है।
हम दु.ख पाते क्योकि वे, हमसे सहे ना जाय है॥

(३)

ना अन्य कोई दुःख है, विक्षेप मन का दुःख है।
विक्षेप मन मे हो न तो, होता न तन का दुःख है॥
विक्षेप लाखो ही हमारे, चित्त मे है बस रहे।
क्यो ना हमे हो दुःख जिनको, सर्प लाखो डस रहे॥

(४)

लाये न थे कुछ हम यहा, ले भी नही कुछ जायगे।
बस कर यहा पर रात भर, तडका हुआ उठ जायगे॥
फिर भी कटे लड लड मरे, है रात दिन तकरार है।
पाते इसी मे दुःख देहासक्ति, का सिर भार है॥

(५)

है दुःख सब अविचार से, निर्मूल होय विचार से।
ना काम लेय विचार से, सब कर्म हो अविचार से॥
जो मीच आँखे दौडता, सो खाय क्यो ना ठोकरे।
ज्यो अन्ध करते कर्म हम, फिर दुःख से कैसे तरे॥

(६)

सुतदार धन परिवार, नाही अन्त आते काम है॥
देते यहा भी दुःख ही, देते नही आराम है।
दारादि में आसक्ति कोई, सुख नही है पा सके॥
दारादि मे आसक्ति हम है, दुःख कैसे जा सके॥

(७)

ससार यह निस्सार है, ईश्वर भजन ही सार है।
इसमे नही संदेह कुछ, सब जानता ससार है॥
फिर भी सदा ईश्वर विमुख, संसार में आसक्त है।
पावे नही हम दुःख क्यों जब मूढ़ विषयाशक्त है॥

(५)

सुख है कहाँ अरु दुःख क्या है, कुछ नही हम जानते।
क्या सत्य और असत्य क्या, यह भी नही पहिचानते॥
सुख आप अपना तत्व है, मुख फेर उससे है लिया।
पाते इसी से दु.ख है, मन अन्य को है दे दिया॥

(४)

फिरता रिझाता अन्य को, सो मूढ सुख नर पाय है।
जो रीझता है आप पर, झट ही सुखी हो जाय है॥
हम आप पर ना रीझते, धनियन रिझावत फिर रहे।
कैसे भला फिर हों सुखो, विपरीत ही जब कर रहे॥

(३)

भोला ! रिझा मत अन्य केवल, आप पर ही रीझ रे।
मत दूसरे पर रीझ नाही, दूसरे से खीज रे॥
हास्यादि सब रस त्याग निश्चल, शान्त रस मे भीजरे।
होगा कभी ना दुःख मन, भव बीज कर निर्जीव रे॥

ईश्वर ने यह पेट क्यों बनाया ?

(१)

अज्ञान अजगर का डसा, यह विश्व पूर्व अचेत था।
सोया मरा सा था पडा, कुछ भी इसे ना चेत था ॥
इस विश्व को चैतन्य करके, पेट ईश्वर रच लिया।
घुस पेट रूपी पाल मे, चैतन्य उसको कर दिया ॥

(२)

चैतन्य होकर विश्व यह, सुख दुःख जानन लग गया।
सुख को बुलावन दुःख को, निशदिन हटावन लग गया ॥
यह पेट यदि होता न तो, हम दुःख कैसे जानते।
यदि दुःख नांही जानते, सुख भी नही पहिचानते ॥

(३)

सुख दुःख अरु अच्छा बुरा, यह पेट ही बतलाय है।
क्या धर्म और अधर्म, क्या, यह पेट ही सिखलाय है ॥
क्या बध है क्या मोक्ष, यह भी पेट ही दिखलाय है।
भव बन्ध से छुडवाय यह ही, मोक्ष पद दिलवाय है ॥

(४)

होता नही यदि पेट तो, वेदाग रचता कौन फिर।
वेदाङ्ग यदि होते नही, तो वेद पढना कौन फिर ॥
पढता नही यदि वेद कोई, कर्म करता कौन फिर।
करता नही यदि कर्म ही, तो स्वर्ग चढता कौन फिर ॥

(५)

होता नही यदि पेट यह, तो कौन चूल्हा फूँकता।
चूल्हा बिना फूंके अतिथि, को कौन कैसे पूजता॥
सबके गुरु सन्यासी का, अभिमान कैसे छूटता।
अभिमान के छूटे बिना, भव बन्ध कैसे टूटता॥

(६)

यदि पेट कुत्ता हो नही, वैराग्य सीखे कौन फिर।
वैराग्य यदि होवे नही, तो भोग त्यागे कौन फिर॥
त्यागे नही यदि भोग तो, वेदान्त समझे कौन फिर।
वेदान्त यदि समझे नही, तो मोक्ष पावे कौन फिर॥

(७)

सारांश यह है पेट ने, ही विश्व सारा है रचा।
खा जाय यह सब विश्व को, अरु खाय के लेता पचा॥
ब्रह्माड में है ज्ञान जितना, पेट माही है भरा।
छोटे बड़े सब जानते, सिद्धान्त यह ही है खरा॥

(८)

यह पेट देता दु.ख है, ऐसा कहे सो मूढ़ है।
मन मलिन मतिकामन्द है, चातुर्यता से दूर है॥
जह भेद है तहं दु ख है, एकत्व जह सुख है तहा।
एकत्व दर्शन पेट मे है, दु ख हो कैसे वहाँ॥

(९)

यह पेट निश्चय ब्रह्म है, श्रुति भगवती सिखलाय है।
ऐसा उपासन जो करे, सो पेट मे छुट जाय हे ॥
जो पिड सो ब्रह्माण्ड है, ब्रह्माण्ड जो सो पिड है।
अध्यस्त दोनो ब्रह्म माही, ब्रह्म एक अखड है।

(१०)

भोला ! उदर भरते सभी, तू उदर मे ही ब्रह्म लख।
जैसे उदर मे विश्व मे रस ब्रह्म का ही स्वाद चख ॥
जो सर्प है सो रज्जु है, इसमे नही सदेह है।
तो पेट ही है ब्रह्म, यह भी सत्य निसदेह है ॥

कैसे सहज ही मे मिट सके।

(१)

मीठे सलौने चटपटे की, चाट जब लग जाय है
तो स्वप्न मे भी जीभ, षट्रस चाखने लग जाय है
वर्षो करे जब यत्न तब, भी चाट नाही छुट सके।
बिनु यत्न मन चॉचल्य कैसे, सहज ही मे मिट सके ।

(२)

कोई नशा करने लगे, छोडा ना जल्दी जा सके।
है छोडने की चाह तो भी, छोड जल्दी ना सके ॥
जब तुच्छ भी बीडी चुरट, बिनु यत्न नाही छुट सके
बिनु यत्न देहाध्यास कैसे, सहज ही मे मिट सके ॥

(३)

कामी पुरुष या कामिनी, जो कामरत हो जांय है।
वृद्धा अवस्था मांहि भी वे, काम के गुण गांय है॥
असमंथता के मांहि भी, जो काम नांही छूटता।
बिनु यत्न सोई काम कैसे, सहज में हो मिट सके॥

(४)

ज्वारी धनी ही मार खावे, जेलखाने जांय है।
आदत जुए की पड गई, छोड़ी न उससे जाय है॥
तप मे तपे जल में गले, जो पाप नाहीं कट सके।
बिनु हरि भजन सो पाप कैसे, सहज ही में मिट सके॥

(५)

अभ्यास से भी ना बतोरी, बात करना तज सके।
बहुकाल में बहुयत्न से ही, मौन थोड़ा भज सके॥
आदत बुरी अभ्यास से भी, जब नहो है छुट सके।
अभ्यास बिनु जीवत्व कैसे, सहज में ही मिट सके॥

(६)

पानी नही ऊंचा बहे, नीचे सदा ही दौड़ता।
बहुयत्न से नल आदि द्वारा, निम्न बहना छोड़ता॥
बिनु यत्न के पानी नही जब, ऊपर कभी भी चढ़ सके।
दृढ़ ज्ञान बिनु ससार कैसे, सहज ही में मिट सके॥

(८)

विनु यत्न के ना दूध से, बनता कभी भी है दही।
मथने विना होता दही से, है कभी भी ना मही ॥
विनु यत्न लोहे से कभी भी, जग नाँही छूट सके।
विन यत्न मन का मैल कैसे, सहज ही मे मिट सके ॥

(९)

चिरकाल से यह जीव है, कामादि के वश हो रहा।
व्यवहार मे है जग रहा, निज तत्त्व मे है सो रहा ॥
एकान्त मे डट ना सके, व्यवहार से ना हट सके।
उस मूढ़ का यह मोह कैसे, सहज ही मे मिट सके ॥

(१०)

अज्ञान से देहत्व है, अज्ञान से जीवत्व है।
अज्ञान यदि जावे चला सशय रहित ब्रह्मत्व है ॥
जब होयगी ईश्वर कृपा, अज्ञान तब ही छुट सके ॥
बिनु हरि कृपा अज्ञान कैसे, सहज ही मे मिट सके ॥

(११)

सब धर्म भोला! छोड जब, ईश्वर शरण हो जायगा।
तब होयगी भगवत् कृपा, भव से तरण हो जायगा ॥
हरि से मिलन होगा तभी, ससार से छुट जायगा।
मिटना कठिन जिसका महा, सो सहज ही मिट जायगा ॥

॥ इति समाप्तम् ॥

॥ ओ३म् ॥

चौथा भाग

वेदान्त का चर्चा है अमृत, गुप्त यह चिरकाल से ।
भोला ! लुटाया जा रहा, बाजार मे कुछ साल से ॥
जो भाग्यशाली पान करते, कृत्य कृत हो जाय हैं ।
स्वराज्य निश्चल पाय के, सुख नींद मे मो जाय हैं ॥

—भोला

मूल्य ॥) आठ आना

पांचवीं बार

सन् १९६२

मुद्रक—

कुमार फाईन आर्ट प्रेस,

११४३ चाह रहट, दिल्ली-६

❀ ओ३म् ❀

❀ श्री गुरवे नमः ❀

निवेदन

पूर्ण मन ही ब्रह्माकार होकर ब्रह्म का दर्शन करता है। मन के ठहरने से ही अष्टावक्र के उपदेश से राजा जनक ने ब्रह्म का साक्षात्कार किया था। एक बार का साक्षात् किया हुआ ब्रह्म फिर विस्मृत नहीं होता। अभ्यास और वैराग्य से जो कोई मन को वशीभूत कर लेता है जब वह चाहे तब मन को ठहरा सकता है और जब चाहे रोक सकता है। जब तक मन अपनी इच्छानुसार ठहरे और चल न सके, तब तक आपको निरन्तर अभ्यास और वैराग्य होता है, त्यों-त्यों आनन्द की वृद्धि और अधिक होती है और अन्त में किसी न किसी दिन आनन्द अक्षय हो जाता है। फिर कभी नहीं हटता। समाधि और उत्थान में मन एक-सा ही रहता है क्योंकि सिद्ध उत्थान छाया मात्र है, जैसे छाया से किसी की हानि नहीं होती, इसी प्रकार उत्थान से समाधि में विक्षेप नहीं होता। यह ही कारण है कि तत्वज्ञ समाधिस्थ रहता हुआ भी प्रारब्धानुसार सब कार्य कर सकता है। जनक-अश्वपति आदि इसमें दृष्टान्त रूप हैं।

कु०—झूठा है संसार यह, झूठा देहाध्यास।
हो विरक्त संसार से, करिये ब्रह्माभ्यास॥
करिये ब्रह्माभ्यास, आश झूठे की तजिये।
सबसे होय निराश, सत्य शाश्वत शिव भजिये॥
भोला! सच्चा देव, ब्रह्म चिन्मात्र अनूठा।
ज्ञाता सब का एक, है तब मन झूठा॥

सकल चराचरानुचर "भोला"

❀ ओ३म् ❀

पद्य-सूची

पद्य	पृष्ठ संख्या
मङ्गलाचरणम (सस्कृत)	५
शिव शिव रटाकर !	६
देहाध्यास ।	८
अन्तर्मुखी बहिर्मुखी ।	११
सुखी होने का उपाय ।	१३
माया, छाया काया ।	१६
सङ्कल्प तेरा है सभी ?	१८
जीव-कूटस्थ ।	२१
मेरा क्या कर्तव्य है ?	२३
चाह करके भ्रष्ट है।	२६
काल चेष्टा ।	२८
कैसे भला ! सुख पा सके ।	३१
चेतावनी ।	३३
यह ही महा अज्ञान है ।	३६
यह ही कहाता ज्ञान रे ।	३८
अहिंसा ।	४१
पादपो स शिक्षा ।	४३
सब से बड़ा पाप ।	४६
अद्वैत होली ।	४८
अच्छा निकाला ढङ्ग है ।	५१
बन्ध-मोक्ष ?	५३
दिव्य-जीवन ।	५६
मोक्षोपाय ?	५८
घडी कहती है ?	६१
आत्म-चिन्ता ।	६३
कुम्भ से शिक्षा ।	६६
एकत्व दर्शन ।	६८
कोई किसी को क्या कहे ।	७१
भीतर सदा रह शान्त रे ।	७३
कुछ भी नही तेरा यहा ।	७६
अब चित्त मेरा शान्त है ।	७८

—:o:—

॥ ओ३म् ॥

❀ श्री परमात्मने नम. ❀

वेदान्त-छन्दावली चौथा भाग

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

(१)

बोधाभीषुशतैरबोधतिमिरं हृद्व्योमग दारयन्,
प्रज्ञावारिधिमुन्नति च गमयन्सोम सदोदेति य. ।
त ससारसहस्ररश्मिनितक्लेशापह दक्षिणा,
मूर्तिनिर्मलयोगिचिन्त्यचरणाम्भोज भजे शंकरम् ॥

(२)

सोमः सोमकलाविभूषितजटाजूट प्रसन्नेक्षणो,
विद्यार्थिर्थिभिरादरेण परित. ससेव्यमानो जनैः ।
अज्ञानान्धतमोविदारणपटु ब्रह्मात्मविज्ञानदो,
मच्चित्तान्तरवस्थित करुणया कुर्यादभीष्ट मम ॥

(३)

यस्माद्विश्वमुदेति येन विविध सञ्जीव्यते लीयते,
यत्रान्ते गगने घना इव महामायिन्यसगेऽद्वये ।
सत्यज्ञानसुखात्मकेऽखिलमनोऽवस्थानुभूत्यात्मनि,
श्रीगम्भी रमता मनो मम सदा हेमाम्बुजे हसवत् ॥

शिव शिव रटा कर !

(१)

शव देह में आसक्त होना है तुझे ना सोहता।
शव देह तू है ही नहो क्यों व्यर्थ ही है मोहता ॥
शिव शिव रटा कर रात दिन शिव मांहि तू मिल जायगा।
सकट सभी कट जांयगे आनन्द अक्षय पायगा ॥

(२)

शिव पास से भी पास हैं ना दृष्टि तो भी आवते।
शव देह जब बन जाय तू तब शान्त शिव हट जावते ॥
शिव शिव रटा कर प्रेम से मन देह से हट जायगा।
शिव शान्त मे लग जायगा आनन्द अद्भुत आयगा ॥

(३)

आनन्द तू है ढूँढ़ता आनन्द तेरे पास है।
आनन्द शिव देता छुपा शव देह का अध्यास है ॥
शिव शिव रटा कर नित्य देहाध्यास सब गल जायगा।
जिनको फिरे है ढूढ़ता तू पास उनको पायगा ॥

(४)

शब्दादि में सुख है नही जो सुख तुझे है भासता।
सो सुख नही है दु.ख ही, क्षण माहि लेता रासता ॥
सो भी नही सुख बाह्य है सुखसिन्धु तुझ में भर रहा।
शिव शिव रटा कर हो सुखी क्यों कर रहा है हाय-हा ॥

(५)

बैठे हुए चलते हुए, पीते हुए खाते हुए।
पढ़ते हुए लिखते हुए, आते हुए जाते हुए॥
शिव शिव रटाकर भूल सब तब कष्ट सब कट जायगा॥
पूरा सुखी हो जायगा, शिव शान्त मे डट जायगा॥

(६)

सुतदार आदिक बन्धु गण, ना साथ तेरे जायगे।
नाता निभाया बहुत मर्घट माहि पहुचा आंयगे॥
शिव शिव रटा कर अन्त तक, यह साथ तेरा देयगा।
भव से करेगा मुक्त, तुझको, पाप सब हर लेयगा॥

(७)

शिव नाम सुन कर दूत यम के, पास नांही आंयगे।
शिव गण चढा सुय्यान पर शिव लोक मे ले जांयगे॥
शिव शिव रटा कर शिव तुझे सब भाति से सुख देयँगे।
ससार का दुख देयकर, फिर आपसा कर लेयँगे॥

(८)

जो मूढ शिव भजते नही नांही कभी शिव पावते।
पाते सदा ही दु ख है जिस योनि माहि जावते॥
शिव शिव रटा कर प्रेम से ना दु ख सन्मुख आयगा।
चिन्ता रहेगी दूर तुझसे हो सुखी तू जायगा॥

(९)

नर देह शिव ने है दिया शिव भक्ति करने के लिये।
ना भोग में आसक्त हो बहुबार मरने के लिये॥
शिव शिव रटा कर बुद्धि तेरी सूक्ष्मतम हो जायगी।
देगी तुझे सो नित्य सुख अरु आप भी सुख पायगी॥

(१०)

शिव एक शाश्वत देव है शिव के सिवा ना अन्य है।
जो अन्य कुछ यदि है कही शिव से नही सख भिन्न है॥
शिव शिव रटाकर नित्य भोला ! शम्भु में मन जोड़रे।
मत भूल शिव सब भूल जा, भवजेल भयमय तोड़ दे॥

देहाध्यास

(१)

जो अन्य दीखे अन्य में कहलाय सो अध्यास है।
ज्यों सर्प दीखे रज्जु में यह सर्प मिथ्या ध्यास है॥
अध्यास देही देह का कहलाय देहाध्यास है।
जो दे रहा अज्ञानियो को जन्म मृत्यु त्रास है॥

(२]

जो त्रास देवे मेट सो चिन्मात्र ब्रह्माभ्यास है।
ब्रह्मात्म का ऐकत्व ब्रह्माभ्यास आत्माभ्यास है॥
जो ब्रह्म है सो आत्म है जो आत्म है सो ब्रह्म है।
दोनो समझना एक यह सच्चा मुमुक्षु धर्म है॥

(३)

निर्द्वन्द्व अक्षय ब्रह्म का, ना अन्य से सम्बन्ध है ।
सम्बन्ध भासे भूल से, कहलाय यह भी बन्ध है ।।
ना भूल सम्भव एक में, तब बध ना-ना मोक्ष है ।
ऐसी समझ है सत्य जिसको, ज्ञान यह अपरोक्ष है ।।

(४)

ना गेह गेही हो सके, गेही न होता गेह है ।
ना देह देही हो सके, देही न होता देह है ।।
ज्यो गेह से तू भिन्न है, त्यो देह से तू भिन्न है ।
क्यो देह में अध्यास करके, हो रहा तू खिन्न है ।।

(५)

है पिड भी अध्यस्त तुझमे अड भी अध्यस्त है ।
चिन्मात्र साक्षी शुद्ध तू, ना हो उदय ना अस्त है ।।
लाखो करोड़ो पिड औ ब्रह्माड तुझमे हो गये ।
होते रहेंगे वृक्ष मे पत्ते पुराने ज्यो नये ।।

(६)

जो काल है सबसे बली जो सर्व को खा जाय है ।
रवि चन्द्र भुमि शेष तरु भी वच ना जिससे पाय है ।।
उस काल का भी काल तू, ना काल तुझको खा सके ।
जो काल से भी हो बडा क्या काल मुख मे जा सके ।।

अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी

[१]

अन्तर्मुखी है धीर जो, ब्रह्मात्म मे समग्न है।
बाहर मुखी है मूढ जो, शब्दादि मे सलग्न है॥
ब्रह्मात्म मे समग्न हो, आनन्द अक्षय पायगा।
शब्दादि मे सलग्न हो, ना दुख से छुट जायगा॥

[२]

तेरा नही है देह तो, तेरा कहा फिर गेह है।
तब देह ना, तब गेह ना, क्यो व्यर्थ करता नेह है॥
ना देह मे, ना गेह मे, तू नेह करके हो दुखी।
निर्द्वन्द रह, निस्नेह रह, रह सर्वदा अन्तर्मुखी॥

[३]

दृग सूत्र तेरा देह जड से, कुछ नही सम्बन्ध है।
तू है समझता देह मे, तेरा इसो से बन्ध है॥
ममता अहंता देह की से, हो रहा तू दीन है।
अन्तर्मुखी हो नित्य तू, तो दीन से भी दीन है॥

[४]

मत दीन हो, मत हो दुखी, मैं देह हू मत मान तू।
है दृश्य द्रष्टा, विश्व द्रष्टा, एक ही सच जान तू॥
दे दुर्जनों को दण्ड सम्यक्, सज्जनो को मान तू।
अन्तर्मुखी हो, सर्वदा, कर आपका कल्याण तू॥

(७)

तू काल से भी है महा, अरु देश से भी है महा।
तू सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, सबसे परे सबसे महा॥
है काल भी अध्यस्त तुझमें, सत्य है तू सत्य का।
परिणाम वाला काल है, तू नित्य शाश्वत नित्य का॥

(८)

ऐसा समझ तू आपको, क्यों काल से भय खाता है।
है काल तेरा मुख वृहत्, जिसमें निगल सब जाय है॥
है सर्व का भी आप तू, कोई तुझे ना खा सके।
ना सूक्ष्म नाही स्थूल कोई, भूल तुझ तक आ सके।

(९)

अध्यास मत कर देह मे, अध्यास मत कर अड मे।
अध्यास से बन्ध पिंड मे, भटकत फिरे ब्रह्माण्ड में॥
तू विश्व से भी है बडा, है विश्व तुझ मे कल्पना।
अध्यास तुझ निस्संग में, निस्सीम मे है अल्प ना॥

(१०)

कर्त्ता न बन भोक्ता न बन, तज मूढ देहाध्यास रे।
मत जन्म ले मत ले मरण, कर नित्य ब्रह्माभ्यास रे॥
निर्वासना हो जायगा, जब नित्य ब्रह्माभ्यास से।
भोला ! परम पद पायगा, हो मुक्त देहाध्यास से॥

अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी

[१]

अन्तर्मुखी है धीर जो, ब्रह्मात्म में समग्न है।
बाहर सुखी है मूढ जो, शब्दादि में सलग्न है॥
ब्रह्मात्म मे समग्न हो, आनन्द अक्षय पायगा।
शब्दादि मे सलग्न हो, ना दुख से छुट जायगा॥

[२]

तेरा नही है देह तो, तेरा कहा फिर गेह है।
तब देह ना, तब गेह ना, क्यो व्यर्थ करता नेह है॥
ना देह मे, ना गेह मे, तू नेह करके हो दुखी।
निर्द्वन्द रह, निस्नेह रह, रह सर्वदा अन्तर्मुखी॥

[३]

दृग सूत्र तेरा देह जड से, कुछ नही सम्बन्ध है।
तू है समझता देह मे, तेरा इसी से बन्ध है॥
ममता अहता देह की से, हो रहा तू दीन है।
अन्तर्मुखी हो नित्य तू, तो दीन से भी दीन है॥

[४]

मत दीन हो, मत हो दुखी, मै देह हूँ मत मान तू।
है दृश्य द्रष्टा, विश्व द्रष्टा, एक ही सच जान तू॥
दे दुर्जनों को दण्ड सम्यक्, सज्जनो को मान तू।
अन्तर्मुखी हो, सर्वदा, कर आपका कल्याण तू॥

(५)

तू आप ही कल्याण है, कर विश्व का कल्याण रे।
तू आप ही है देह यह, अरु आप ही है जान रे॥
है विश्व भर में पूर्ण तू, संशय न इसमें मान रे।
अन्तर्मुखी हो, सर्वदा, तू आपको पहिचान रे॥

(६)

चेतन अचेतन तू नहीं, तू शुद्ध संवित् तत्त्व है।
इस दृश्य का है तत्त्व तू, यह दृश्य सब निस्तत्त्व है॥
तुझमें सभी कुछ दीखता, तुझसे सभी कुछ दीखता।
अन्तर्मुखी हो आप तू, है अन्य सब यह लापता॥

(७)

जब तू तमाशा देखने को, आप से हट जाय है।
तब एक ही तू ही अनेकों, दृष्टिमाहीं आय है॥
जब दृष्टि लेता रोक तू, तब दृश्य सर्व बिलाय है।
अन्तर्मुखी हो, देख क्या, क्या रूप तू दिखलाय है॥

(८)

सम शान्त रह कुल ले मती, सुख भोग आवे भोग है।
रोवे मती धोवे मती, दुःख भोग आवे भोग है॥
तुझमें नहीं है आवरण, तुझमें नहीं विक्षेप है।
अन्तर्मुखी हो, रह सुखी, तुझमें नहीं कुछ लेप है॥

(९)

कर्त्ता अकर्त्ता तू नही, भोक्ता अभोक्ता तू नही।
तुझमे न कोई है क्रिया, वेत्ता अवेत्ता तू नही॥
तू है न कुछ तू सर्व है, तू एक है तू है घना।
है सर्व यह तुझसे बना, कुछ भी नही तुझसे बना॥

(१०)

अन्तर्मुखी हो, देख भोला! मर्म सब खुल जायगा।
जब तक रहेगा बहिर्मुखी, कुछ भी समझ न पायगा॥
जब तक न देखा आप तब तक, पाप है सन्ताप है।
जब देख लीना आप तब, ना दुराप है ना पाप है॥

सुखी होने का उपाय

(१)

हे मित्र! सुख क्यो चाहता, तै आप सुख भण्डार है।
सुख लेश तेरे से सुखी, सब हो रहा ससार है॥
सुख-चाह से तू स्वस्थ भी, अस्वस्थ है-बीमार है।
सुख चाह भाई! छोड सुखियो माहि तू सरदार है॥

(२)

राजा बने तो भी कभी, भी तू सुखी ना होयगा।
जग सेठ भी बन जाय तो, भी शान्ति से ना सोयगा॥
हो इन्द्र शिव या विष्णु ब्रह्मा, पूर्ण सुख ना पायगा।
हो जायगा जब पूर्ण तू, पूरा सुखी हो जायगा॥

(३)

सुख अल्प में नाँही कभी, ना अल्प है सुख हो सके।
जब तक बना है स्वप्न, ना सुख से कभी है सो सके॥
ससार मिथ्या स्वप्न है, इसमें नही सुख लेश है।
यद्यपि मृषा दुःख देय है, सुख पूर्ण अपना देश है॥

(४)

घर माहि सुख जैसा मिले, बाहर नहीं वैसा कही।
बाहर फिरे सुख ढूंढता, सुख इसलिये मिलता नहीं॥
बाहर मती फिर रे सखे! सुख आपमे ही ढूढ रे।
होगा तुरत ही तू सुखी, मत जानकर बन मूढ रे॥

(५)

भीतर मिले जब तक न सुख, तब तक निरन्तर यत्न कर।
आलस्य तज पुरुषार्थ कर, निर्द्वन्द्व हो मत धर्य धर॥
जो कुछ मिले पुरुषार्थ से, ना दैव आ दे जाय है।
चाबे बिना मुख ग्रास भी, भीतर नही जा पाय है॥

(६)

पुरुषार्थ करते धीर जो, निश्चय परम सुख पाय हैं।
आलस्य करते मूढ़ जो, पछतांय मर-मर जाँय हैं॥
आलस्य मत कीजे कभी, सर्वत्र सुख ही देखिये।
दूजा कही है ही नही, मत दुःख कही भी देखिये॥

(७)

सर्वत्र सुख है भर रहा, तव दु ख कहा मे आयगा ।
सुख रूप शिव है आप तू, तव सुख कहा से लायगा ॥
सुख-चाह तेरी ढक दिया सुख-सिंधु अपना आप है ।
तू आप पीछे हो गया, कहलाय यह ही पाप है ॥

(८)

पानो लबालब है भरा, ना मत्स्य पीने पाय है ।
उलटा जभी हो जाय है, तव बूंद मुख मे जाय है ॥
सुख इष्ट है तो मित्र ! मुख शब्दादि से ले मोड रे ।
आशा जगत् की त्याग मन, जगदीश माही जोड रे ॥

(९)

सुख मे किसी को राग है, दु ख से किसी को द्वेष है ।
सुख-दु:ख जिसे है एक सम, पाता नही सो क्लेश है ॥
सुख-दु ख माया मात्र है, आवे कभी फिर जाय है ।
दोनो सहे निर्द्वन्द्व हो, वे धीर नर सुख पाय है ॥

(१०)

सुख होय अथवा दु ख हो, भोला । सदा रह शान्तमन ।
सुन सिन्धु शिव तू आप हैं, क्यो हो रहा है भ्रान्तमन ॥
दे भ्राति तज सुख शक्ति भज,तज शोक रे तज मोह रे ।
निर्द्वन्द्व हो, नि शक हो, नि:शोक रे निर्मोह रे ॥

माया, काया, छाया ।

(१)

जब एक ही है देव तो, माया कहाँ से आगयी ।
माया कभी आयी न तो, छाया कहाँ से आगयी ।।
छाया कभी आई न तो, काया कहा से आगयी ।
आया गया कोई नहीं है, भ्रान्ति तब मति छागयी ।।

(२)

निज भ्रान्ति से माया हुई, निज भ्रान्ति से छाया हुई ।
निज भ्रान्ति से काया हुई, निज भ्रान्ति से जाया हुई ।।
है भ्रान्ति से ही जन्म लेता, भ्रान्ति में ही है मरण ।
है कर्म सारे भ्रान्ति से ही भ्रान्ति से कर्त्ता करण ।।

(३)

है ज्ञान ज्ञाता भ्रान्ति से तो भ्रान्ति से ही ज्ञेय है ।
जब खोल आखे देखिये, ना ज्ञेय है ना ध्येय है ।।
निस्संग आत्मा एक है, श्रुति भगवती चिल्ला रही ।
अज है अजर है, है अमर, सो गीत गीता गा रही ।।

(४)

'मै' एक ही हूँ सर्व में, मै एकसा रहता सदा ।
बालक युवा या वृद्ध में, नाही बदलता है कदा ।।
श्रुति युक्ति से सिद्ध आत्मा, नित्य है निस्सग है ।
निस्सग शास्वत आत्म का, ना देह से कुछ संग है ।।

(५)

सम्बन्ध करके देह से, पामर स्वय को भूल कर ।
सच्चित् तथा आनन्दघन, समार माहीं बाध कर ॥
है बम गया दारादि मे, दे चित्त अपना मूढ नर ।
ज्यो-ज्यों चहे छूटना, त्यो-त्यो बन्धे है अधिकतर ॥

(६)

अविचार से माया बनी, अविचार से छाया बनी ।
अविचार से काया बनी, अविचार से जाया बनी ॥
अविचार से ससार है, सुविचार से है कुछ नही ।
है मात्र केवल एक शिव, ना सत् कही ना असत् कही ॥

(७)

नाहीं जगत्, नाही अविद्या, अस्मिता ना शेष है ।
अच्छा बुरा कुछ है नही, ना राग है ना द्वेष है ॥
ईश्वर कृपा से गुरु कृपा से, भूल अब जाती रही ।
माया गयी, छाया गयी, काया नही बाकी रही ॥

(८)

इन तीन के अभ्यास से, सब तीन तेरह हो रहे ।
इन तीन से जो है परे, वे नीद सुख की सा रहे ॥
इन तीन के वश मूढ नर, बिनु मृत्यु ही हैं मर रहे ।
इन तीन से छुट धीर नर, सिर मृत्यु के पग धर रहे ॥

(९)

ना तीन है ना दो कही, नांहीं कहीं पर एक है।
जब एक तक भी है नहीं, तो कथन मात्र अनेक है ॥
ना एक है न अनेक है, ना मीन है, ना मेष है।
नर मूढ ने गढ़ बिंदु मन, ली खेंच झूठी रेख है ॥

(१०)

भोला ? कही कुछ है नही, बस एक आत्मा तत्त्व है।
श्रुति सन्त सब ही कह रहे, अद्वैत है एकत्व है ॥
एकत्व के अज्ञान से, निस्तत्व भासे तत्त्व सा।
सत् रज्जु के अज्ञान से, ज्यो सर्प भासे सत्य सा ॥

संकल्प तेरा है सभी ?

(१)

करता जभी संकल्प तू, तो विश्व से ना कल्प है।
सकल्प करता जब नही, तो कल्पना का अल्प है ॥
यह विश्व क्या है ? कुछ नही है मात्र तव सकल्प है।
सकल्प यदि तू ना करे, तो कुछ नही ना स्वल्प है ॥

(२)

है मोक्ष तेरी कल्पना, है बन्ध तेरी कल्पना।
क्या मोक्ष से क्या बन्ध से, सम्बन्ध तेरा अल्प ना ॥
निस्सग तूने मूर्खता से, बन्ध कल्पा आप का।
इस मूढ़ता से बन गया, तू आप पुतला ताप का ॥

(३)

यदि वुद्धि तुझमे अल्प भी, है ले समझ से काम तू ।
ऐसी समझ किस काम की, कामी वना निष्काम तू ॥
कामी वना निष्काम तू, सम्वन्ध कीन्हा अन्य से ।
निजतन्त्र भी परतन्त्र होकर जड हुआ चैतन्य से ॥

(४)

कर ध्यान अपनी याद कर, तू एक देव अनन्य है ।
तू एक अपना आप है, तेरे सिवा ना अन्य है ॥
तू एक हो सन्मात्र है, चिन्मात्र है सुखमात्र है ।
तू आप अपना भूल कर, अपनी दया का पात्र है ॥

(५)

कर आप पर अपनी दया, मत आपको तू भूल रे ।
जो कुछ यहाँ है दीखता, सव जान मिथ्या धूल रे ॥
तुझ सत्य द्रष्टा आप मे यह दृश्य मिथ्या जान रे ।
द्रष्टा कभी ना दृश्य हो, सिद्धन्त सच्चा मान रे ॥

(३)

क्यो ढूंढता है सुख कही, तू आप सुख भण्डार है ।
ना सार कुछ ससार मे, तू नित्य सुख का सार है ॥
रहता सदा है तू उदय, होता कभी ना अस्त है ।
तुझ सीप सच्चो सार मे, चादी जगत् अध्यस्त है ॥

(७)

शम शान्त रह, दम दान्त रह, चिन्ता किसी की कर मती।
आनन्द कर निर्भय विचर, तू एक ही है डर मती॥
मत राग करके अन्य में, फांसी गले में डाल रे।
ना द्वेष करके दूसरे से, चाल उल्टी चाल रे॥

(८)

यह मित्र है संकल्प तज, यह शत्रु है तज कल्पना।
अवतार सब शिव के समझ, है भेद उनमे अल्पना॥
जब एक है सम शान्त शिव, दूजा कहा से आयगा।
दूजा समझ कर मूढ नर, भय खायगा दुःख पायगा॥

(९)

श्रुति युक्ति से अनुभव प्रभा से, एक है अद्वैत है।
ना भूल में ना स्वप्न में, किंचित् कभी भी द्वैत है॥
भ्रम से समझ के दूसरा नर मूढ़ है भय खा रहा।
सूखी नदी की लहर में, बहता चला है जा रहा॥

(१०)

भव नद यहा संकल्प, निस्संकल्प भोला ? तैरना।
संकल्प निस्सकल्प तज, पैरा बहुत अत्र पैर ना॥
ना जल यहां, ना थल यहा, संकल्प जल थल था वहां।
जल-थल नहीं सकल्प निस्संकल्प फिर भासे कहां॥

जीव-कूटस्थ

(१)

कूटस्थ है चिन्मात्र सत्, सम एक रस सुख मात्र है।
यह जीव उसकी छाह है, ना एक सम दु.ख मात्र है॥
कूटस्थ सम्यक् तत्व है, यह जीव उसमे कल्पना।
ससार सब हे जीव मे, कूटस्थ मे है अल्प ना॥

(२)

है जीव ही वही कूटस्थ करदे, बाध यदि जीवत्व का।
ना भिन्न दु ख आभास सुखसे, यदि बाध हो भासत्व का॥
यदि जान लेते तत्व तब, तो जीव ही कूटस्थ है।
ना जन्म हो, नाही मरण, रहता निरन्तर स्वस्थ है॥

(३)

यह जीव मै कूटस्थ हूँ नाही कभी भी जानता।
कितना भले समझायेगा, देह ही है मानता॥
मै दीन हूँ, मैं हूं दु खी, सब भान्ति से असमर्थ हूँ।
मै आदि व्याधी युद्ध हूँ कैसे कहूँ कूटस्थ हूँ॥

(४)

कर्म करता भोगता हूँ कर्म के आधीन हूँ।
ऊंचा चढ़, नीचा गिरूँ, सब भांति दैवाधीन हूँ॥
निर्द्वन्द्व मैं स्वच्छन्द हूँ, नाही समझ मे आय है।
अघहीन हूँ, अति दीन हूँ ऐसी समझ ना आय है॥

(५)

जाता नरक में पाप कर, कर पुण्य पाता स्वर्ग है।
ना ज्ञान है अति आपको, पाता कभी अपवर्ग है॥
मैं जागता मैं सोवता, मैं स्वप्न नाना देखता।
मैं हूँ अचल कूटस्थ हूँ, इसका नही लगता पता॥

(६)

मै देह हूँ मम गेह है, करता सदा अभिमान है।
मै कूट के सम हूँ अचल, होता न इसको ज्ञान है॥
कुल जाति विद्या द्रव्य का, करता निरन्तर मान है।
तीनो गुणों से हूं परे, ऐसा न आता ध्यान है॥

(७)

यदि जानले कूटस्थ यह, यह तो कूट सम होवे अचल।
चाले भले पाँचों पवन, आवें न इसमें हल न चल॥
ना राग हो ना द्वेष हो, ना चित्त भय से हो विकल।
देखें सभी मे आपको, अरु आपमें देखें सकल॥

(८)

आसक्त ना हो भोग में, हो आप में आसक्तता।
मै ब्रह्म हुं सर्वात्म हूं, देखें कही ना शून्यता॥
सब भेद भ्रम जावे निकल, भासे कही ना द्वैतता।
ना मोह हो ना शोक हो सर्वत्र हो निःशंकता॥

(६)

चिद्ग्रन्थि नाही हो उदय, मिल जांय सब ही कामना ।
होवे कमी ना कामना, मिट जाय मन की वासना ॥
आना न जाना हो कही, हर स्वास सुख हो पास ही ।
ना शिष्य फिर होवे किसी का, ना किसी का दास ही ॥

(१०)

कूटस्थ तेरा तत्त्व है, भोला ! इसे ही जान रे ।
जाने बिना ना हो सुखी, सशय न कर, सच मान रे ॥
जागे बिना ना नीद से, स्वप्ना कभी भी जाय है ।
जोवत्व के त्यागे बिना, कूटस्थ नाही पाय है ॥

मेरा क्या कर्तव्य है ?

(१)

कर्तव्य तेरा है यही, उद्धार कर तू आपका ।
शुभ आचरण कीजे शरण, आचार मत कर पाप का ॥
जब तक न तब उद्धार हो, चिन्ता करे मत अन्य की ।
भूखा स्वय क्या दे सके, है अन्य मुठ्ठी अन्न की ॥

(२)

यह देह नश्वर जान कर, आसक्ति उसकी त्याग दे ।
सुत–दार का परिवार का भी, त्याग समयक् राग दे ।
देहेश का कर तू भजन विश्वेश की ले-ले शरण ।
माथा किसी को मत झुका,ले पकड शिव के तू चरण ॥

(३)

आशा न कर चिन्ता न कर, भय भी किसी से मत करे।
परदेशियों से प्रीत कर, मत शोक ज्वाला में जरे॥
परदेशियों की प्रीत ऐसी, फूँस का ज्यों तापना।
दीजे कलेजा काढ़, पर ना सोय विदेशी आपना॥

(४)

देशी स्वयं है आप तू, तुझसे विदेशी अन्य है।
अपना बिराना जान ले, सो ही विवेकी धन्य है॥
अपना बिराना जानना ही, मुख्य तब कर्तव्य है।
अपना ग्रहण पर का तजन, यह वेद का मन्तव्य है॥

(५)

द्रष्टा स्वयं है सत्य तू, यह दृश्य मिथ्या जान रे।
सब दृश्य मिथ्या त्याग, द्रष्टा आपको पहिचान रे॥
कर ध्यान अपना ही निरन्तर, दृश्य सब घुल जायगा।
परिपूर्ण भासेगा नही, शिव मर्म सब खुल जायगा॥

(६)

जब तक खुले ना मर्म तब तक शान्त होकर तू विचर।
ममता अहंता त्याग केवल, आत्म अनुसन्धान कर।
जब एक केवल ब्रह्म है, सो ब्रह्म सब का आप है।
फिर काम क्या है शोक का, यह किस लिये सन्ताप है॥

(७)

ना शोक नाहिं मोह ना, सन्ताप करना चाहिए।
नि शक हो, निर्द्वन्द्व हो, सुख से विचरना चाहिये॥
नर देह दुर्लभ पाय कर, भव सिन्धु तरना चाहिये।
अब तक मरा सो मर लिया, अब तो न मरना चाहिये॥

(८)

अभ्यास से वैराग्य से, विद्या सबल कर लीजिये।
माया किले के जीतने को, फिर चढ़ाई कीजिये॥
विज्ञान का गोला चला, माया किला ढा दीजिये।
कामादि शत्रु मार कर, स्वराज्य अपना लीजिये॥

(९)

कैवल्य के प्रसाद पर, आरूढ हो सुख पाइये।
निर्जर अमर पद पाय के, निर्भय परम हो जाइये॥
यह भक्ति है यह ज्ञान है, यह स्वार्थ है परमर्थ है।
यह सिद्धि है, यह शान्त है, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(१०)

सब धर्म भोले ! त्याग दे, ब्रह्मात्म मे अनुरक्त हो।
ब्रह्मात्व मे मन बुद्धि दे, ब्रह्मात्व मे ही सक्त हो॥
ब्रह्मात्व मे रत सर्वदा, ब्रह्मात्व मे सलग्न हो।
ब्रह्मात्व मे सतुष्ट हो, ब्रह्मात्व मे समग्न हो॥

चाह करके भ्रष्ट है।

(१)

है चित्त ! क्या है चाहता, ! सब वस्तु की तू खान है।
जो भूप हो भिक्षुक बने, सो तो बड़ा अनजान है॥
क्या माँगता है इष्ट से ! तू इष्ट का भी इष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

(२)

मेले तमाशे देखता, तुझको बता क्यों भाय है।
है खेल जादू के सभी, क्यों देख धोका खाय है॥
तू आप है बहुरूपिया, क्या यह तुझे न अस्पष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

(३)

सुख को कहां है ढूंढता, बाहर नही सुख है कहीं।
तू आप सुख का सिन्धु है, इसकी खबर तुझको नही॥
आनन्द रख इच्छा न कर, इच्छा बडा ही दुष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

(४)

क्यों रूप है तू चाहता। है मूर्ति तेरी मोहनी।
तेरी प्रभा है सूर्य में, शशि मे भी तेरी रोशनी॥
आसक्त होकर रूप पर, पाता पतगा कष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

(५)

हे मूर्ख ! तू सतान को, किस वास्ते है चाहता।
सतान तेरी हैं सभी, तू विश्व भर का है पिता॥
जो तू न हो नाहिं होय कुछ,ब्रह्मादि जो कुछ सृष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

(६)

ऐश्वर्य क्यो है चाहता, ! तू ईश का भी ईश है।
तेरे चरण का धूल पर, ब्रह्मा झुकाता शीश है॥
अभिमान को जड से मिटा, अभिमान व्याधि कुष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

(७)

क्यो सिद्ध बनना चाहता, तुझसे सभी कुछ सिद्ध है।
है खेल सारी सिद्धिया, तू सिद्ध का भी सिद्ध है॥
हो र वली दुर्बल न बन, तू पुष्ट से भी पुष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

(८)

पाडित्य क्यो है चाहता, तू तो महा विद्वान है।
सब शास्त्र तूने ही रचे, सद्शास्त्र वाक्य प्रमाण है॥
जो सहज हैं विद्वान को, वहि मूर्ख को अति क्लिष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ट तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

(९)

इच्छा करे क्यों ज्ञान की ! तू मूल है सब ज्ञान की।
ज्ञानी तुझे ही जानते, करते समाधि ध्यान की॥
कौशल्य ! ने सत सत्त कहा, समझे असत् पापिष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

(१०)

धन किस लिये है चाहता, तू आप मालामाल है।
सिक्के सभी जिससे बने, तू वह महा टकसाल है॥
सच्चा धनी वहि जानिये, जो नित्य ही संतुष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

काल चेष्टा

(१)

है काल अति ही भारी, करता चोट है यह ओट से।
है कौन ऐसा शूर जो, बच जाय इसकी चोट से॥
राजे महाराजे घने, निज गाल माँही रख लिये।
मनु सैकड़ो ही खालिये, सुरराज बहु चट कर लिये॥

(२)

गांडीवधर अर्जुन पिता, गोविन्द मातुल देव-वर।
चाचा वृकोदर वीरवर, अभिमन्यु तो भी जाय मर॥
बन जाय पाँडव राम नल,था दुःख अति दारुण सहा।
जाना इसी से जाय है, यह काल है बलवन्त महा॥

(३)

नर मूढ रोते पीटते, निज वन्धु जब मर जाय है।
है काल मुख मे आप भी, ना ध्यान ऐसा आय है ॥
जो कल हसते बोलते, एकत्र धन हैं कर रहे।
वे आज नाँही देखते, या काल वश हैं मर रहे ॥

(४)

जो कल करना कार्य हो, सो आज ही कर लीजिये।
जो आज करना होय हो, अब ही तुरत हो कीजिये ॥
पडित भले ही मूर्ख हो, धन-युक्त या धनहीन हो।
हैं काल को सब एक से, वल-युक्त या बल-हीन हो ॥

(५)

दिन रात आयु जा रहा, मृत्यु निकट है आ रहा।
भजता नही विश्वेश, फिर भी भोग ही है भा रहा ॥
सबको पकाता काल है, करता वही सहार है।
सब वेखवर हैं काल तो, रहता सदा हुशियार है ॥

(६)

जब जीव आता गर्भ में तब काल आता साथ है।
क्षण एक वा सौ वर्ष मे, निश्चित उसे ले जात है ॥
माता समझती वाल वढता, वाल घटता जाय है।
ज्यो मूप विल्ली, काल आकर, एक दिन खा जाय है ॥

(७)

क्या द्रव्य से क्या राज्य से, क्या नारियों से प्रेय हो।
जो काल के हों गाल में, उनसे भला क्या श्रेय हो॥
ना शस्त्र से ना अस्त्र से, तम से नही ना बुद्धि से।
नर मुक्ति होवे मृत्यु से, ना ऋद्धि से ना सिद्धि से॥

(८)

मृत्यु नही है देखता, क्या शेष किसका कार्य है।
होते नही पूरण मनोरथ, काल आ ले जाय है॥
ऐसा करूंगा आज फिर, कैसा करूंगा काल में।
सोचा करे जाने नहीं, नर काल के हूं गाल में॥

(९)

हो काल जिसका मित्र, अथवा जो अजर हो अरु अमर।
कल होगया यह यदि कहे, हो कथन उसका युक्ततर॥
पल का भरोसा है नही, विश्वास नांही श्वांस का।
आश्चर्य है नर मूढ़ तो भी, दास होता आश का॥

(१०)

सोते हुए जगते हुए, नित्य मृत्यु शिर पर है खड़ा।
हे मित्र ? क्यों है बेखबर, तू मोह निद्रा में पड़ा॥
दे मोह निद्र त्याग भोला ? तत्त्व मे अब जाग जा।
कालेश अनुसन्धान कर, संसार से छुट भाग जा॥

कैसे भला ? सुख पा सकें

(१)

दुर्ग्रन्थ पढता रात दिन, सद्ग्रन्थ नाही एक क्षण ।
गप शप्प में लग जाय मन, हरिगान मे लगता न मन ।।
मीठा सलौना भावता, रूखा नही है खा सके ।
वश मे नही है इन्द्रिया, कैसे भला ! सुख पा सके ।।

(२)

ससारियो मे रम रहा, सत्संग मे ना जाय है ।
प्यारे लगे है भोग नाही, योग लेश सुहाय है ।।
शीतोष्ण माना मान किंचित् भी सहा ना जा सके ।
ना कष्ट थोडा सह सके, कैसे भला ! सुख पा सके ।।

(३)

ना जानता है सत् असत्, आत्मा अनात्मा भी नही ।
जाने नही है शुचि अशुचि, समता विपमता भी नही ।।
कुल आदि का अभिमान भी, त्यागा न जिससे जा सके ।
देहाभिमानी मूढ सो, कैसे भला ! सुख पा सके ।।

(४)

ना राग छोडा जाय है, ना द्वेष छोडा जाय है ।
कारण बिना है क्रोध जिसको शीघ्र ही आ जाय है ।।
यह है भला, यह है बुरा, मन से न जिसके जा सके ।
सो भेददर्शी तामसी, कैसे भला ! सुख पा सके ।।

(५)

लाखों भरी मन कामनायें, लोक या परलोक की ।
युवती यहाँ को चाहता, देवागना परलोक की ॥
अब यह करूं अब वह करूं, चिन्ता न क्षण भी जा सके ।
लाखों जिसे चिन्ता लगी, कैसे भला ! सुख पा सके ॥

(६)

सर्वत्र जल है भर रहा, मछली रहे जल माँहि है ।
जब तक न उलटी होय है, जल पी सके सो नाँहि है ॥
सर्वत्र सुख परिपूर्ण है, विषयी देख तक भी ना सके ।
संसार से मोड़े न मन, कैसे भला ! सुख पा सके ॥

(७)

सुख सिन्धु तट तक पूर्ण है, सुख चाह इसमें आड़ है ।
सुख चाह ने है ढाँप दीन्हा, उच्च शान्ति पहाड है ॥
छोड़े धनादिक चाह उसकी, दृष्टि मे सुख आ सके ।
जो चाह नाँही तज सके, कैसे भला ! सुख पा सके ॥

(८)

धाम पामर त्यागते, इच्छा न उनकी त्यागते ।
बनाने के लिये, दर दर फिरें धन माँगते ॥
क न हो निर्लोभ, तब तक दीनता ना जा सके ।
दीनता, कैसे भला ! सुख पा सके ॥

(९)

जाडा सहे गर्मी सहे, कपडा न रखता पास है।
सत्कार की सन्मान की, मन मांहि रखता आश है॥
आशा ना जब तक जायगी, ना दुःख तब तक जा सके।
जो दास होवे आश का, कैसे भला! सुख पा सके॥

(१०)

सुख शान्ति यदि है इष्ट तो, संसार से मुख मोड़ रे।
होकर निराश सर्व से, शिव शान्त में मन जोड रे॥
दे काट आशा पास सो ही, निकल भव से जा सके।
भव से न निकले जब तलक, भोला! नही सुख पा सके॥

चेतावनी

(१)

सुख को कहाँ है ढूँढता, तू आप सुख भण्डार है।
तेरे हि सुख आभास को, सुखी मानता ससार है॥
तज दे विषय सुख यदि तुझे, कल्याण अपना इष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

(२)

धन किस लिए है चाहता, तू आप मालामाल है।
सिक्के सभी जिससे बने तू, वह महा टकसाल है॥
सच्चा धनी वही जानिये, जो नित्य ही सतुष्ट हो।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

(३)

क्यों चाहता है रूप तू, है मूर्ति तेरी मोहनी।
तेरी चमक है सूर्य में, शशि माँहि तेरी रोशनी ॥
तुझसे ही सब कुछ भासता, दृष्ट है अदृष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है ॥

(४)

सतान क्या हे चाहता, क्यों भूत प्रेतन पूजता।
तू विश्व भर का है पिता, इसका नही तुझको पता ॥
पूरा अधूरा जाय बन, यह तो बड़ा ही कष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है ॥

(५)

ऐश्वर्य क्यों है चाहता, तू ईश का भी ईश है।
तेरे चरण की धूल पर, ब्रह्मा झुकाता शीश है ॥
है तू नियन्ता चर अचर का, पुष्ट से भी पुष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू पर चाह करके भ्रष्ट है ॥

(६)

क्यों ज्ञान को है चाहता, तू ज्ञान का भी ज्ञान है।
है प्राज्ञ अनुभव रूप तू, प्रज्ञान है विज्ञान है ॥
तुझसे हि चेतन सर्व है, तू सर्व माँहि प्रविष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ट तू, पर चाह करके भ्रष्ट है ॥

(७)

क्यो सिद्धियाँ है चाहता तुझसे हि सब कुछ सिद्ध है ।
ब्रह्माण्ड भर है कल्पना, तू सिद्ध एक प्रसिद्ध है ॥
जो नष्ट को है चाहता, सो आप होता नष्ट है ।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है ॥

(८)

पाडित्य क्यो है चाहता, तू सर्व का सिद्धान्त है ।
है वेद वेता वेद तू, रचता तुही वेदान्त है ॥
सब ज्योतियो की ज्योति तू,तो शिष्ट से भी शिष्ट है ।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू पर चाह करके भ्रष्ट है ॥

(९)

क्या है प्रतिष्ठा चाहता, तू तो प्रतिष्ठा रूप है ।
सुर सिद्ध जितने है प्रतिष्ठित सर्व का तू भूप है ॥
इस देह मे अभिमान कर तू, हो गया पापिष्ट है ।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है ॥

(१०)

श्रुति मातु चिल्ला रही, उठ जाग भोला ! जाग रे ।
बहुकाल सोते हो गया, अब मोह निद्रा त्याग रे ॥
ममता अहता त्याग दे, नहिं इष्ट कुछ न अनिष्ट है ।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है ॥

यह ही महा अज्ञान है।

(१)

क्या ब्रह्म है क्या ईश है, क्या जीव है क्या है असत्।
क्या बन्ध है क्या मोक्ष है, क्या सत्त क्या है असत्॥
क्या धर्म वस्तु अधर्म क्या, क्या भक्ति है क्या ज्ञान है।
उन सर्व से अनभिज्ञ हो, यह ही महा अज्ञान है॥

(२)

आया कहां से कौन हूँ, क्या साथ में लाया यहां।
करना मुझे है क्या यहां, जाना मुझे है फिर कहाँ॥
क्या प्रेम क्या श्रेय है, क्या है दया क्या दान है।
कुछ भी नही है जानता, यह ही महा अज्ञान है॥

(३)

ज्यो पान आदिक चाबने से, आय मुख में रक्तता।
त्यो भूत पाचों के मिले, आजाय तनु चैतन्यता॥
आत्मा यही है देह जब तक, देह मांही जान है।
लेना न देना बाद कुछ, यह ही महा अज्ञान है॥

(४)

बूढ़ें युवा बालक तथा, दिन रात मरते देखता।
है आप भी बूढा हुआ, तो भी नही है चेतता॥
नाही मरूंगा मैं कभी. ऐसा करे अभिमान है।
नर देह को माने अमर, यह ही महा अज्ञान है॥

(५)

दिन रात पाता कष्ट है, ना देह माही शक्ति है।
शिर पर खडी है मृत्यु, तो भी देह मैं ग्रासक्ति है ॥
है चित्त माया मे फंसा, धन धाम सुत मे जान है।
भजता नही विश्वेश को, यह ही महा अज्ञान है ॥

(६)

कहता रहे है सर्वदा, ससार यह निस्सार है।
ईश्वर भजन ही सार है, फिर भी भजे ससार है ॥
दानी बताता ग्रापको, करता ना कौड़ी दान है।
मुख मांहि कुच, मन माँहि कुछ, यह ही महा ग्राज्ञान है ॥

(७)

तखता लगाना सत्य का, पर झूठ का व्यवहार है।
ना सत्य है ना धर्म है, न विचार ना ग्राचार है ॥
ऊँची बनी दुकान है, फीका धरा पकवान है।
बनता भगत, ठगना जगत, यह ही महा अज्ञान है ॥

(८)

ना स्वर्ग है ना है नरक, ना पुण्य है, ना पाप है।
ना साख्य है ना योग है, व्रत तप नही ना जाप है ॥
इस देह का उद्देश्य केवल, खान है या पान है।
ऐसी समझ है मूर्खता, यह ही महा अज्ञान है ॥

(९)

तनका फुलाना पुण्य है, कुल पोसना ही दान है।
धन का कमाना धर्म है, अपनी चलाना ज्ञान है॥
है एक दृष्ट प्रमाण ही, ना शब्द है ना अनुमान है।
है वेद चारों कल्पना, यही महा अज्ञान है॥

(१०)

पर दोष भोला ! देखमत, निज दोष नित्य निहार रे।
मत अन्य को उपदेश दे, कर आपना उद्धार रे॥
मन को बनाना शुद्ध, यही भक्ति, यह ही ज्ञान है।
अवगुण पराये देखना, यह ही महा अज्ञान है॥

यह ही कहाता ज्ञान रे।

(१)

सत्संग भज पीयूष सम, दुस्सग विष सम त्याग रे।
सद्ग्रन्थ छाती से लगा दुग्रन्थ पर धर आग रे॥
हो संग तैसा रंग यह लोकोक्ति पक्की मान रे।
यह भक्ति है यह योग है यह ही कहाता ज्ञान रे॥

(२)

यह विश्व ईश्वर वाटिका है सैर कर सुख चैन से।
मत फूल पत्ता तोड़े कछ भी देख केवल नैन से॥
सब कर्म कर जगदीश हित-मत राख फल पर ध्यान रे।
यह भक्ति है यह योग है यह ही कहाता ज्ञान रे॥

(३)

आलस्य तज दे, मोह तज दे, लोभ तज तज चाह रे।
संतोष समता धैर्य भज रे, पूर्ण भज उत्साह रे॥
अपनी प्रतिष्ठा चाह मत, दे सर्व को सन्मान रे।
यह भक्ति है यह योग है, यह ही कहाता ज्ञान है॥

(४)

परदोष मत देखे कभी, निज दोष गिन गिन छाँट रे।
रख इन्द्रियाँ स्वाधीन प्यारे! मैल मन का काट रे॥
निर्मल बनाले बुद्धि सब, मे शान्त शिव पहिचान रे।
यह भक्ति है, यह योग है, यह ही कहाता ज्ञान रे॥

(५)

तृष्णा पिशाचिन जीव को, सोने न सुख से देय है।
जो त्याग तृष्णा का करे,सुख शान्ति सो ही लेय है॥
तज आश, तृष्णा त्याग मत, कर देह मे अभिमान रे।
यह भक्ति है यह योग है, यह ही कहाता ज्ञान रे॥

(६)

दिन चार है रहना यहाँ, मत कर किसी से रार रे।
कर प्यार सबको एक सम, तू मत बढ़ा व्यवहार रे॥
जैसे बने वैसे यहा कर, चार दिन गुजरान रे।
यह भक्ति है यह योग है, यह ही कहाता ज्ञान रे॥

(७)

है देह रोगों का भरा, छीजा कर दिन रात रे।
बड़ी आंत वाली मौत का, इस पर सदा है दांत रे॥
आस्था न कर इस देह में, देहेश का धर ध्यान रे।
यह भक्ति है यह योग है, यह ही कहाता ज्ञान रे॥

(८)

जो वृक्ष है सो बीज है, जो बीज है सो वृक्ष है।
जो विश्व है, सो ब्रह्म है, जो ब्रह्म है सो विश्व है॥
कर विश्व मांहो ब्रह्म दर्शन, भेद कुछ मत मान रे।
यह भक्ति है यह योग है, यह ही कहाता ज्ञान रे॥

(९)

पटरी अचल हलचल रहित, है रेल आवे जाय है॥
त्यों ब्रह्म अविचल एक रस, है विश्व आवे जाय है॥
मत विश्व का कर ध्यान, कर यिश्वेश अनुसन्धान रे।
यह भक्ति है यह योग है, यह ही कहाता ज्ञान रे॥

(१०)

जो है कनक, सो है कटक, जो है कटक सो है कनक।
है भेद कहने मात्र ही, नामंद उनमे है तनक॥
त्यों विश्व कहने मात्र भोला ! ब्रह्म सच्चा जान रे।
यह भक्ति है यह योग है, यह ही कहाता ज्ञान रे॥

अहिंसा

(१)

शम दम अहिंसा, सत्य भाषण, चाहना हित सर्व का।
सच्चा यही है तप, नही है, तप सुखाना देह का॥
मन कर्म वाणी से मती, पीडा किसी को दीजिये।
क्या शत्रु हो क्या मित्र होवे, प्यार सबसे कीजिये॥

(२)

शौचादि पाचो पालते, पालत अहिंसादिक सदा।
सच्चे अहिंसक धन्य वे, शिव भक्ति मे वे सर्वदा॥
सब मांहि शिव, शिव माहि सब, जो देखते वे धन्य हैं।
कैसे करे हिंसा भला, देखत नही जे अन्य है॥

[३]

आसक्ति करना देह मे, हिमा प्रथम है आपकी।
जो आपकी हिंसा करे, क्यो ना करे फिर अन्य की॥
अपनी नही हिंसा, करे, तो होय ना हिंसा कभी।
अपनी मती हिंसा करो, श्रुति सन्त कहते है सभी॥

[४]

हिंसक महा है क्रोध, क्रोधी आप हिंसक आप का॥
पीछे तपाता अन्य, पहिले आप पुतला ताप का।
पूरा अहिंसक धीर जो, वश क्रोध को कर लेय है।
शीतल रहे है आप, शीतल अन्य को कर देय है॥

(५)

जो मास नाही खाय है, वध ना करे न कराय है।
तो सर्व भूतो का सुहृद हो, मोक्ष पदवी पाय है॥
खादक न कोई हो जहा, घातक न कोई हो तहाँ।
घातक नरक मे जाय, खादक जाय है पहले वहां॥

(६)

ग्राहक करे वध द्रव्य से, खादक करे वध खाय के।
घातक करे वध बाध कर, सूना सदन में लाय के॥
मरना तुमको इष्ट है, मत दूसरे को मारिये।
है जान प्यारी आपकी, त्यो अन्य जान विचारिये॥

(७)

सुख दुःख देवे अन्य को, सो आप ही को होय है।
सुख देय नाही दुःख दे, पण्डित कहाता सोय है॥
जो आप नाहीं चाहते, सो अन्य को मत दीजिये।
हित चाहते हो अपना, तो अन्य का हित कीजिये॥

(८)

ज्यों आप का त्यों अन्स का, जो हित करे सो धन्य है।
सच्चा अहिंसक आत्मज्ञानी होय सो जग मन्य है॥
ना शान्ति सम तप अन्य है, सन्तोष सम सुख अन्य ना।
ना रोग तृष्णा से अधिक, बढकर दया से धर्म ना॥

(९)

यदि स्वार्थ अपना मानकर, ज्ञानी लगेगे ध्यान मे।
दु खार्थ जन को कौन फिर, ले जाय पथ कल्याण मे ॥
सम शान्त रहते आप, करते सर्व को सम शान्त है।
ऐसे विवेकी ही कहाते, साधु अथवा सन्त है ॥

(१०)

क्रोधी न बन, कामी न बन, लाभी न बन मानी न बन।
पीडा किसी को दे मतो, भोला ! सदा रख शान्त मन ॥
जब शान्त तू हो जायगा, तब शान्त जग हो जायगा।
ना दु ख पावेगा कही, सर्वत्र ही सुख पायेगा ॥

पादपों से शिक्षा।

[१]

हे पादपों ! यद्यपि सभी, यह विश्व शिव अवतार है।
शिव ने बनाकर विश्व यह, हम पर किया उपकार है ॥
उपकारियो के मध्य में, तुझको किया सरदार है।
जो धीर समझे गुण तुम्हारे, होय भव से पार है ॥

[२]

जैसे तपस्वो सिद्धि हित, दो पैर से रहता खडा।
हिम ताप वर्षा झेल कर, करता निरन्तर तप खडा ॥
सुनसान जगल मे खडे हिम, आदि तुम हो सह रहे।
जो कुछ मिले तप से मिले, मानो सभी से कह रहे ॥

(३)

सम काय ग्रीवा शीश योगी, प्राण जैसे रोक कर ।
इस लोक की परलोक की, कुछ भी नही रखता खबर ॥
सीधे सरल हो तुम खड़े, ना देह अनुसन्धान है ।
सिर पर कुल्हाडा बज रहा, तुमको न कुछ भी ध्यान है ॥

(४)

दानी गृही के आय घर, ज्यो अथिति पूजा जाय है ।
आवे तुम्हारी जो शरण, सन्मान सब विधि पाय है ॥
पंखा हिला कर नीद मीठी, तुम सुलाते हो उसे ।
फल फूल दे सत्कार कर, चगा बनाते हो उसे ॥

(५)

ज्यों शान्त सम दर्शी महात्मा, द्वन्द सहते सर्वदा ।
करते नही है क्रोध सबका, चाहते मंगल सदा ॥
तुम ईंट पत्थर खाय भी, करते नही हो खिन्न मन ।
जो ईंट मारे है उसे भी, देय फल करते नमन ॥

(६)

ज्ञानी अमानी सन्त ज्यों, सलग्न रहते आप मे ।
संतुष्ट रहते आप मे, सतृप्त रहते आप मे ॥
हो मग्न तुम एकान्त मे, ऐसा मुझे है भासता ।
सम्बन्ध ना रखते किसी से, ना किसी से वासता ॥

(७)

ज्यो सिद्धि योगी एक क्षण, आसन न अपना त्यागता।
मुख मोड कर ससार से, ईश्वर भजन मे लागता॥
आते न जाते तुम कही, हो सिद्ध योगी की तरह।
दर दर नही हो भटकते, नर मूड भोगी की तरह॥

(८)

जव देखता हूं मै तुम्हे, होता परम आल्हाद है।
नादानुरागी की तरह, भीतर सुने जव नाद है॥
यदि सार ग्राही गुण तुम्हारे, एक दो भी धार ले।
इस जन्म मे ही मुक्त हो, ना जन्म फिर दो चार ले॥

(९)

तत्वज्ञ कहते हैं कि यह, सव विश्व है अज्ञान मे।
मेरी समझ मे मग्न तुम हो, नित्य ही शिव ध्यान में॥
था कौनसा वह कर्म कह दो, मित्र ! मेरे कान मे।
जिस कर्म वश तुम हो खडे, सुनसान इए मैदान मे॥

(१०)

भोला ! धनी हम पूर्व मे, ऐश्वर्य मद से चूर थे।
ईश्वर विमुख कपटी कृपण, शम दम दया से दूर थे॥
परतन्त्र वन सुनसान मे, हिम वात तप नित सह रहे।
मद मान तज ईश्वर भजो, ऐसा सवो से कह रहे॥

सबसे बड़ा पाप ।

(१)

इस देह को 'मैं' मानता सबसे बड़ा यह पाप है
सब पाप इसके पुत्र है, सब पाप का यह बाप है ॥
इस देह को 'मैं' मानकर, बन्दी हुआ यह आप है ।
जो शुद्ध शाश्वत मुक्त है, अच्युत तथा निष्पाप है ॥

(२)

इस देह को 'मैं' मानने का नाम ही अज्ञान है ।
यह ही अविद्या आवरण, माया यही अभिमान है ॥
संसार की जड है यही, सब क्लेश की यह खान है ।
अध्यास यह कहलाय है, विपरीत यह ही ज्ञान है ॥

(३)

इस देह को 'मैं' मानकर, आनन्द अपना खो दिया ।
था सत्य सो मिथ्या हुआ, चतन्य का जड़ हो गया ॥
दश खूंट में जो पूर्ण था, सो खाट भर का बन गया ।
जो भूप था भिक्षुक हुआ, स्वराज्य था सो छिन गया ॥

(४)

इस देह को 'मैं' मानकर, निःसंग संगी बन गया ।
जो था अचल चचल हुआ, बिन अंग अंगी बन गया ॥
था शुद्ध सो मैला हुआ, हुशियार भी भोला हुआ ॥
जो पक्क था कच्चा हुआ, था ठोस सो पोला हुआ ॥

(५)

इस देह को 'मैं' मानकर, अज जन्मता सा दीखता।
जो काल का भी काल है,म रता हुआ सो दीखता॥
ऊंचा कभी नीचा कभी, चढता कभी गिर जाय है।
ससार रूपी चक्र मे, दिन रात चक्कर खाय है॥

(६)

इस देह को 'मैं' मानकर, कोई नही देखा सुखी।
देवार्षि अरु मुनि सिद्ध साधक, दीखते हैं सब दु खी॥
कैसे सुखी फिर हो सके, देहाभिमानी तुच्छ नर।
जो काल के हो गाल मैं, कैसे भला सो हो निडर॥

(७)

इस देह को 'मैं' माननें से, काम शत्रु सताय है।
पूरी न हो जो कामना, तो क्रोध चित्त जलाय है॥
हो क्रोध से बुद्धि मलिन, अति मोह मे फस जाय है।
मोहान्ध बुद्धि जीव को, नाना नरक दिखलाय है॥

(८)

इस देह को 'मै' मानने से, एक हो दो भासता।
दो से वहुत हो जाय फिर, यक दूसरे को त्रासता॥
दर्पण भवन कुत्ता घुसा, कुत्ते हि सब दिखलाय है।
वैरी समझ कर भोकता, ही भोकता मर जाय है॥

(६)

आत्मा सदा ही एक रस, घटता न बढ़ता है कभी।
मरता नही नहि जन्मता, श्रुति सन्त कहते हैं सभी ॥
श्रुति वाक्य पर विश्वास कर, मत देह में अध्यास कर।
अध्यास फिर भी होय यदि,वैराग्य कर अभ्यास कर ॥

(१०)

वैराग्य से अभ्यास से, अध्यास घटता जायगा।
अध्यास ज्यो-ज्यो होयगा, कम दुःख मिटत जायगा ॥
अध्यास जब मिट जायगा, 'मैं' का गला कट जायगा।
मै का गला कटते ही भोला ! आपमे डट जायगा ॥

अद्वैत होली।

(१)

होली जली तो क्या जली, पापिन अविद्या नहिं जली।
आशा जली नहिं राक्षसी, तृष्णा पिशाचो नहिं जली ॥
झुलसा न मुख आसक्ति का, नहिं भस्म ईर्षा की हुई।
ममता न झोंकी अग्नि मे, नहि वासना फूँकी गई ॥

(२)

नहि धूल डाली दम्भ पर, नहिं दर्प मे जूते दिये।
दुर्गति न की अभिमान की, नहिं क्रोध मे घूँसे दिये ॥
अज्ञान को खर पर चढ़ा, कर मुख नही काला किया।
ताली न पीटी काम की, तो खेल होली क्या लिया ॥

(३)

छाती मिलाते शत्रु से, सन्मित्र से मुख मोडते।
हितकर ईश्वर छोडकर, नाता जगत से जोडते॥
होली भली है देश की, अच्छी नही परदेश की।
सुनते हुए बहरे हुए, नहिं याद करते देश की॥

(४)

माजून खाई भग की, बौछार कीन्ही रंग की।
बाजार मे जूता उछाला, या किसी से जंग की॥
गाना सुना या नाच देखा, ध्वनि सुनी मौचग की।
सुध बुध भुलाई आपनी, बलिहारी ऐसे रग की॥

(५)

होली अगर हो खेलनी, तो सन्त सम्मत खेलिये।
सन्तान शुभ ऋषि मुनिन,की मत सन्त आज्ञा पेलिये॥
सच को ग्रहण कर लीजिये, ो झूठ हो तज दीजिये।
सच झूठ केनि र्णय बिना, नहिं काम कोई कीजिये॥

(६)

होली हुई तब जानिये, ससार जलती आग हो।
सारे विषय फीके लगे, नहिं लेश उनमे राग हो॥
हो शान्ति कैसे प्राप्त, निश दिन एक यह ही ध्यान हो।
ससार दु ख कैसे मिटे, किस भांति रो कल्याण हो॥

(७)

होली हुई तब जानिये, पिचकारि सद्गुरु की लगे।
सब रंग कच्चे जाँय उड़, यक रंग पक्के में रंगे॥
नहिं रंग फिर चढ़ें द्वैत का, अद्वैत मे रंग जाय मन।
है सेर जो चालीस सो, ही जानियेगा एक मन॥

(८)

होली हुई तब जानिये, श्रुति वाक्य जल मे स्नान हो।
विक्षेप मल सब जाँय धुल, निश्चिन्त मन अमलान हो॥
शोकाग्नि बुझ निर्मूल हो, मति स्वस्थ निर्मल शान्त हो।
शीतल हृदय आनन्दमय, तिहुँ ताप का पूर्णान्ति हो॥

(९)

होली हुई तब जानिये, सब दृश्य जल कर छार हो।
अज्ञान की भस्मी उडे, विज्ञानमय संसार हो॥
'हो' माहि हो लवलीन सब, है अर्थ होली का यही।
बाकी बचे सो तत्त्व अपना, आप सबका है वही॥

(१०)

भोला ! भली होली भयी, भ्रम भेद कूड़ा भर गया।
नहिं तू रहा, नहिं मै रहा, था आप सो ही रह गया॥
अद्वैत होली चित्त देकर, नित्य जो नर गायगा।
निश्चय अमर हो जायगा, नहिं गर्भ में फिर आयगा॥

(५)

संकल्प से मन है बना, मन का रचा संसार है।
यदि मन न होता विश्व नाहीं, ब्रह्म ही सुख सार है॥
सुविचार करते ही तुरत, मन होय पग से पग है।
संकल्प तजने के लिये, अच्छा निकाला ढग है॥

(६)

होता सगुण ना ब्रह्म निर्गुण, तत्व कौन बनावता।
बिनु तत्व के जाने हुए, नर मुक्ति कैसे पावता॥
बिनु अंग भी शिव शक्ति लेकर, धार लीन्ह अंग है।
निज धाम देने के लिये, अच्छा निकाला ढग है॥

(७)

होता नही यदि काम वैरी, क्रोध कैसे आवता।
आता नही यदि क्रोध तो यह लोभ कैसे जावता॥
जाते चले जब काम आदिक, होय मन निस्सग है।
मन शुद्ध करने के लिये, अच्छा निकाला ढग है॥

(८)

जो संग में है दोष वे, कोई नही यदि जानता।
निस्संग केवल बोध नर, किस भाँति से पहिचानता।
निस्संगता से शम्भु दुर्जय, भस्म कीन्ह अनंग है।
सम शान्त होने के लिये, अच्छा निकाला ढंग है॥

(९)

यदि हो सगुण ही ब्रह्म तो भी, वास कर सकते न हम।
जब सूर्य पर या चन्द्र पर भी, पैर धर सकते न हम॥
अवतार लेकर सगुण रचना, भेद अरु वैराग है।
नर को बनाते ब्रह्म यह, अच्छा निकाला ढंग है॥

(१०)

नर देह सुर दुर्लभ्य भोला ! क्यों गंवाता भोग में।
ये भोग अक्षय रोग हैं, मन दे लगा शिव योग में॥
सद्शास्त्र सद्गुरु मिल गये हैं, मिल गया सत्संग है।
गिरिजेश भज जिसने बहुत अच्छा निकाला ढंग है॥

बंध मोक्ष।

(१)

मन मान लेता बंध है मन मार देना मोक्ष है।
यदि मन न माना जाय तो ना बंध है ना मोक्ष है॥
मन मार देता वीर सो भव बंध से छुट जाय है।
जो मूढ़ मन ना मारता मरता रहे पछताय है॥

(२)

हे अग ! मन है ही नहीं क्यों व्यर्थ है मन कल्पना।
संकल्प यदि तू ना करे तो सिद्ध है तब मुक्तता॥
जब आपको तू भूलता होता तभी संकल्प है।
संकल्प उठता है तभी, उठता तभी मन सर्प है॥

(३)

तू आपको है जानता, कर आप में अनुराग रे।
संकल्प मन का हेतु है, संकल्प प्यारे ! त्याग रे॥
होगा कभी ना मुक्त यदि सकल्प से तू मुक्त है।
संकल्प देना त्याग तब, संशय विना तू युक्त है॥

(४)

करता ग्रहण यदि दृश्य है, तो बद्ध है तू मन सहित।
यदि दृश्य ना करता ग्रहण तो मुक्त है तू मन रहित॥
यह दृश्य जो कुछ दीखता गुण तीन का विस्तार है।
इसका ग्रहण ही बंध है यह ही महा ससार है॥

(५)

इन तीन गुण का त्याग देना ही कहाता मोक्ष है।
गुण तीन देता त्याग सो नर धीर पाता मोक्ष है॥
यदि मोक्ष तुझको इष्ट है यह दृश्य तज दे दूर से।
छुट जायगा जग जेल से मिल जायगा भरपूर से॥

[६]

मै हू नही यह है नहीं करता हुआ यह भावना।
जैसे अचल हो जा अचल मन से रहित निर्वासना॥
आकाश सम तू पूर्ण है आकाश सम है तब हृदय।
है तू हृदय का ईश रहता सर्वदा ही है उदय॥

(७)

मैं और मेरा त्याग दे, तू दृश्य द्रष्टा त्याग रे ।
दृग् मात्र अपने आप मे, हे अंग ! जा तू जाग रे ॥
तू आदि है तू मध्य है, होता न तेरा अन्त हे ।
होता सभी का अन्त है, त् देव एक अनन्त है ॥

(८)

ध्याता न वन मत ध्येय वन, धर ध्यान निश्चल ध्यान का
ज्ञाता न वन मत ज्ञेय वन, कर ज्ञान निश्फल ज्ञान का
द्रष्टा न वन, मत दृश्य वन, कर दर्श दर्शन मात्र का ।
चिन्मात्र होकर आप तू, कर दर्श शिव चिन्मात्र का ॥

(९)

अनुभव तथा अनुभाव्य के, जो मध्य मे चिन्मात्र है ।
सो शुद्ध तेरा तत्व है, सुखमात्र है सन्मात्र है ॥
मत दृश्य की कर भावना, कर तू उसी की भावना ।
सत् का ना होय अभाव है, होता असत् का भाव ना ॥

(१०)

जब त्याग देगा चित्त तू, चित्त आप तू हो जायगा ।
ससार का किंचित् कही, पर भी पता ना पायगा ॥
मिट जायगी जब भूल तब, भोला ! कहा से आयेगा ।
भोला नही ना भूल ही शिव एक ही जय पायगा ॥

दिव्य-जीवन

(१)

दिव् का उजाला अर्थ है, दिव् भाव है सो दिव्य है।
सच्चा उजाला ब्रह्म है, जो सर्वदा ही नित्य है॥
जो ब्रह्म है सो दिव्य है, जो दिव्य है सो ब्रह्म है।
जो ब्रह्म से देवे मिला, जीवन कहाता दिव्य है॥

(२)

पापी जनों के पाप धो, कर देय जो निष्पाप है।
जिससे मनुज सब जान जाता, अन्य क्या क्या आप है॥
कर्त्ता अकर्त्ता दे बता, भोक्ता अभोक्ता हेय कर।
संसार से देवे छुटा, सो दिव्य जीवन मित्रवर॥

(३)

काया तथा मन वाक्य से, करना सदा उपकार है।
नांही किसी का स्वप्न में, कहना कभी अपकार है॥
सद्ब्रह्म सब मे देखता, करता सभी से प्यार है।
जीवन उसी का दिव्य है, सीधा सरल व्यवहार है॥

(४)

जग है असत् या सत्य है- नाही कभी भी देह सत्।
सुर सिद्ध ऋषि मुनि देव आदिक, देह सबका है असत्॥
ममता अहता देह मे, करते नही जो धीर है।
जीवन उन्हीं का दिव्य है, वे ही नरो में वीर है॥

(५)

मिथ्या जगत् भी दुःख देता, देखने मे आय है।
जब तक न होय विवेक तब तक,दुःख नाही जाय है॥
जीता हुआ जो नर विवेको, दुःख सुख से मुक्त है।
सो दिव्य जीवन जीवता, शम दम दया से युक्त है॥

(६)

सब इन्द्रिया स्वाधीन है, ना भोग मे मन जाय है।
सम हानि मे सम लाभ मे,ना मन विषमता आय है॥
सम मित्र है सम शत्रु है, हित सर्व का है चाहता।
उस धीर का है दिव्य जीवन, वास्तविक कहलावता॥

(७)

सर्वत्र करता ब्रह्म दर्शन, ना किसी से वैर है।
आनन्द माही मग्न है, करता जगत की सैर है॥
ना दीन दुःखी होय है, करता कभी ना मान है।
उस धीर का है दिव्य जीवन, पाय सो निर्वाण है॥

(८)

कामी लहे दुर्गति सदा, क्रोधी जलाता चित्त है।
हो जाय लोभी अन्ध, होता दीन दुःखी नित्य है॥
तीनो तजे ईश्वर भजे, सुख शान्ति निश्चय पाय है।
जीवन सफल उस धीर का, ही दिव्य माना जाय है॥

(९)

तृष्णा सुखाती ना जिसे, चिन्ता जलाती ना जिसे ।
आशा रुलाती ना जिसे, ईर्ष्या सताती ना जिसे ॥
सम शान्त रहता सर्वदा, हलचल न मन में लाय है ।
सो दिव्य जीवन भोगता, साम्राज्य अक्षय पाय है ॥

(१०)

भोला ! कभी मत दीन हो, मत तू किसी की आश कर।
सतुष्ट हो रे आप मे, प्रारब्ध पर विश्वास कर ॥
भज दिव्य जीवन सर्वदा, शम दम दया से युक्त हो ।
विश्वेश की ले ले शरण, भव जेल से छुट मुक्त हो ॥

मोक्षोपाय !

(१)

गीता पढो या भागवत, उपनिषद यढ़ लीजिये ।
अथवा समाधी पर समाधी, रात दिन ही कीजिये ॥
मन माहि जब तक वासना, ना मोक्ष तब तक पाइये ।
यदि मोक्ष होवे इष्ट तो, निर्वासना हो जाइये ॥

(२)

जो वासना से है बंधा, सो मूढ़ बन्धन युक्त है ।
निर्वासना जो हो गया, सो धीर योगी मुक्त है ॥
भव-वासना है बाँधती, शिव वासना है छोड़ती ।
सब बन्धनों को तोड कर, शिव शान्ति से है जोड़ती ॥

(३)

जो भोग की है वासना, सो तामसी है वासना।
ससार वेडी माहि यह, दृढ बाधती है वासना॥
तज भोग की दो वासना, शुभ वासना प्रिय कीजिये।
शम दम दया आर्जव क्षमा, पीयूप के सम पीजिये॥

(४)

ये भी करो सब देह से, मत सग मन से कीजिए।
मन के सभी ये धर्म आत्मा तक न आने दीजिए॥
व्यवहार बाहर कीजिये, सम शान्त भीतर से रहो।
चिन्मात्र की कर भावना, सुख दुःख आदिक सब सहो॥

(५)

शम आदि की भी वासना, दो चित्त से फिर त्याग तुम।
चिन्मात्र मे ही नित्य हो, करते रहो अनुराग तुम॥
सब वासनाये त्याग जो, चिन्मात्र मे डट जाय है।
ससार से सो छूटता, सो ही परम हद पाय है॥

(६)

जो आत्म मे है रत सदा, जो आत्म मे सतृप्त है।
जो आत्म माही मग्न है, जो आत्म मे सतुष्ट है।
आस्था सभी की त्याग कर, निर्वासना सो धीर है॥
जीता हुआ ही मुक्त है, सशरीर भी अशरीर है।

(७)

वास्ता न उसका कर्म से ना अर्थ कुछ नैष्कर्म मे।
निर्वासना जो हो गया, सो छुट गया सब धर्म से॥
स्वाध्याय का श्रुति श्रवण का, अथवा मनन का ध्यान का
निर्वासना हो जावना, फल है यही विज्ञान का॥

(८)

जो दृष्ट या दृष्टत्व है, ये अंग सब ही भ्रान्ति है।
बिन तत्व के जाने हुए, होती कभी ना शान्ति है॥
जो तत्व लेता जान है, सो धीर होता शान्त है।
निर्वासना हो जाय है, होता न फिर सो भ्रान्त है॥

(९)

है कर्म जितने लोक में, सब कर्म है तन के लिये।
पाताल स्वलोक या, नर लोक जाने के लिये॥
जब तक करेगा कर्म, तब तक शान्ति नाही पायगा।
निर्वासना हो जायगा, तब कर्म से छुट जायगा॥

(१०)

भोला! नही है विश्व में, कुछ पंच - भूतों के सिवा।
यदि देख लीने वाहवा, देखे नही तो वाहवा॥
चिन्ता सभी की छोड, केवल आप मे तल्लीन हो।
मत देह धर, मत मर कभी, दुःखी न हो ना दीन हो॥

घड़ी कहती है ?

(१)

अब तक बहुत सुनते रहे, सब सुन लिया है आपने ।
केवल सुना ही है नहीं, सुन गुन लिया है आपने ॥
खट-खट करूँ हूँ मैं सदा, सो भी सुना है आपने ।
सुनते हुए भी कर दिया, पर अनसुना है आपने ॥

(२)

ना ध्यान देकर है सुना, अब ध्यान दे सुन लीजिये
चिल्ला रही हूँ आपको मैं, यह बताने के लिये ॥
रवि चन्द्र दोनो चल रहे है, रात दिन हे कर रहे ।
दिन रात करके रात दिन, आयुष सभी का हर रहे ॥

(३)

जो कार्य करना कल्ल हो, सो आज ही कर लीजिए ।
जो आज करना होय सो आरम्भ अब ही कीजिए ॥
ना देखता है काल- किसका, कार्य कितना शेष है ।
आ ग्रास झट कर जाय है, ज्यों खाय भेडिया मेष है ॥

(४)

कोई न इससे बच सके, यह काल सब को खाय है ।
कालेश शिव जो नर भजे, सो काल से बच जाय है ॥
कालेश शिव भजिए सदा ही, अन्य सब ही त्यागिए ।
बहु काल सोते हो गया, अब नीद तजिए जागिए ॥

(५)

जैसे करूँ खट–खट सदा मैं, आप शिव शिव कीजिए।
शिव की लगा दीजे ध्वनी, मत तार टूटन दीजिए॥
सविकल्प भी अविकल्प भी, कर सिद्ध दोनों लीजिए।
सुख से विचरिये नित्य, ब्रह्मानन्द रस में भीजिए॥

(६)

अभिमान मैं करती नहीं, त्यों आप भी मत कीजिए।
जो कर्म हो छोटा बड़ा, सब अर्प शिव को दीजिए॥
शिव शिव पदों की सन्धि में शिव शान्त शाश्वत ध्याइए।
शिव के शिवा ना अन्य कोई, चित्त माहीं लाइए॥

(७)

मै एक से बारह तलक हूं, नित्य रोज बजावती।
कितने बजाऊँ क्यो नही, ना एक हूँ पर त्यागती॥
त्यो दृश्य मे कितने भले, हो आप देखे भिन्नता।
शिव शान्त सब में देखिए, तजिए कभी मत एकता॥

(८)

ज्यों-ज्यों रटेगे आप शिव-शिव, आयगी मन शुद्धता।
ज्यो ज्यो बढ़ेगी शुद्धता, त्यों त्यो जचेगी एकता॥
जब दीखती है एकता, तब शान्त मन हो जाय है।
मन शान्त सम शिव तत्त्व माही, सहज ही डट जाय है।

(९)

श्रम है नही, कुछ खर्चना, फिर क्यो न शिव-शिव कीजिए ।
आसन, न तप, उपवासना, फिर शिव न क्यो भज लीजिए ॥
श्रम कुछ नही फल बहुत सा, भजिए सदा शिव सर्वदा ।
शिव आप सा लेंगे बना, सुख सिन्धु शाश्वत मोक्षदा ॥

(१०)

भोला घडी की बात सुन, नर मूढ नाही जागता ।
धन आदि की आसक्ति तज, शिव मे नही अनुरागता ॥
नर धीर सुनकर बात यह, आसक्ति सब की त्यागता ।
ससार से मन मोड कर, शिव के भजन मे लागता ॥

आत्म-चिन्ता ।

(१)

जो कुछ यहा है दीखता, सो सर्व नश्वर जानिए ।
है आत्मा सच्चा एक ही, सो ही अनश्वर मानिए ॥
चिन्ता करे जो अन्य की, सो मूढ पशु पहिचानिए ।
जो आत्म की चिन्ता करे, सो धीर नर सन्मानिए ॥

(२)

जो नर करे आत्म चिन्तन, भ्रान्ति से छुट जाय है ।
क्या सत्य है क्या है मृषा, सम्यक् समझ सो पाय है ॥
सो धीर है, सो वीर है, नर तनु सफल कर लेय है ।
नर अन्य अपयश पाय, आयुष व्यर्थ ही खो देय है ॥

(३)

अघ कोटि जन्मो मे किये, यह आत्म चिन्ता लेय हर ।
अघमूल है अज्ञान उस, अज्ञान को निर्मूल कर ॥
आनन्दमय निज आत्म जो, है सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर ।
दर्शन कर अधिकारियों को, मृत्यु से करती निडर ॥

(४)

जब आत्म-चिन्ता माहि यह, मन मग्नतम हो जाय है ।
जग जाय है तब आत्म मांहि, दृश्य में सो जाय है ॥
सुख सिन्धु मे डुबकी लगाकर, कुछ नही है जानता ।
ले स्वाद अद्भुत भक्ति का, सब रस विरस है मानता ॥

(५)

नर मूढ विषयासक्त यह, रस ना कभी भी पा सके ।
लोभी न पावे यश यहा, ना स्वर्ग में ज्यो जा सके ॥
नवरस वियोगी रस दशन, जो योगी चख सके ।
सो आत्मचिन्तक मृत्यु शिर पर, पैर अपना रख सके ॥

(६)

जो मोक्ष है, सो ब्रह्म है, ना अन्य कोई मोक्ष है ।
नाहो वहा से लौटते, तत्त्वज्ञ का अपरोक्ष है ॥
सर्वत्र ही है ब्रह्म तो भी, आत्म चिन्तक पाय है ।
सौ जन्म तक भी मन मलिन, नाही उसे लख पाय है ॥

(७)

कहते जिसे है आत्म चिन्ता, ब्रह्मनिष्ठा है वही।
कहलाय ब्रह्माभ्यास यह ही, मोक्ष दिलवाता यही॥
सब अन्य चिन्ता त्यागियेगा, आत्म चिन्ता कीजिये।
बढ कर न जिससे अन्य है, सो मोक्ष पदवी लीजिये॥

(८)

पुरुपार्थ यह ही है खरा, ना अन्य कुछ पुरुपार्थ है।
पाया नही पुरुपार्थ तो, नर जन्म लेना व्यर्थ है॥
नर जन्म सार्थक कीजिये, ब्रह्मत्व सार्थक कीजिये।
कुलश्रेष्ठ माही जन्म ले, मत जन्म दूजा लीजिये॥

(९)

भवसिन्धु से तर जाइये, आनन्द अक्षय पाइये।
चढ मोक्ष के प्रसाद पर, नीचे मती गिर जाइये॥
सनकादि ज्ञानी योगियो के, मार्ग सीधे चालिये।
कृमि कीट सम शुचि आपको, भवगर्त मे मत डालिये॥

(१०)

भोला ! सिखा मत अन्य को, ले सीख अपने आप भी।
ना आपके सीखे विना है, दुख से छूटता कभी॥
ले आत्म चिन्ता की शरण, मत कार्य कर कुछ अन्य तू।
हो आत्म से हो अन्य रे, मत अन्य से हो अन्य तू॥

कुम्भ से शिक्षा।

(१)

क्या देखता है कुम्भ को, क्यों कुम्भ में ना देखता।
यदि देख लेवे कुम्भ मे, निवृत्त हो सब मूर्खता॥
मिथ्यात्व सब भग जायगा, देगी दिखाई सत्यता।
यह ही दिखाने के लिए, इस कुम्भ की है कुम्भता॥

(२)

तू देख बाहर भी छुपा, अपनी महा सौंदर्यता।
मत देख बाहर देख भीतर, आपकी वैचित्रता॥
तब कुम्भ है पोला घड़ा, फिर भी दिखता ठोसता।
तब कुम्भ कच्चा हाड का, भीतर बनाता पक्कता॥

(३)

तब कुम्भ में है द्वैतता, तब कुम्भ में अद्वैतता।
तब कुम्भ है मिथ्या क्षणिक, फिर भी सिखाता लिप्तता॥
तब अल्प भोजी कुम्भ भी, देता बता सर्वज्ञता।
तब कुम्भ के भीतर भरी, है शून्यता सम्पूर्णता॥

(४)

तब कुम्भ मांहि राम बैठे, राम गीता गावते।
तब कुम्भ में ही कृष्ण बैठे, पार्थ शूर बनावते॥
इस कुम्भ में ही है चतुर्मुख, विश्व को उपजावते।
शंकर त्रिलोचन भी यहाँ हैं, मोक्ष जो दिलवावते॥

(५)

लक्ष्मी उमा अरु शारदा, आदिक सभी है देवियाँ ।
इन्द्रादि सब हैं देव भी, शचि आदि उनकी पत्निया ।।
सनकादि चारो कुम्भ मे, एकत्वदर्शी उक्तिया ।
तर्कादि षट् दर्शन यहाँ, उनकी हजारो युक्तियाँ ।।

(६)

देवर्षि नारद भी यहाँ है, नित्य हरि गुण गावते ।
व्यासादि वाल्मीक आदि भी, इतिहास सर्व सुनावते ।।
क्या ईश है क्या जीव है, यह भी सदा समझावते ।
क्या बंध है, क्या मोक्ष है, यह भी यहाँ बतलावते ।।

(७)

क्या धर्म और अधर्म क्या, क्या वस्तु शिष्टाचार है ।
यह कुम्भ ही सिखलावता, क्या त्याज्य दुष्टाचार है ।।
विद्या अविद्या साध्य साधन, का यहाँ विस्तार है ।
जो कुम्भ भीतर देखता, सो होय भव से पार है ।।

(८)

जो कुम्भ बाहर देखता, छुटती न उसकी मूढता ।
जो कुम्भ भीतर देखता, सो पाय है चातुर्यता ।।
जो शुद्ध होता कुम्भ है, बाहर नही सो देखता ।
गुरु शास्त्र ईश्वर की कृपा, से प्राप्त करता पूर्णता ।।

(९)

हो जाय है तो पूर्ण उसको, कुम्भ मे सब भासता।
होता नही जो पूर्ण उसको, भासती है भिन्नता॥
जो भिन्नता है देखता, पावे न क्यो सो खिन्नता।
जिस कुम्भ मे है खिन्नता, उसमे न होय प्रसन्नता॥

(१०)

जिसमे न होय प्रसन्नता, पावे नही सो मुक्तता।
सुख शान्ति भी पावे नहीं, पावे नही निर्वाणता॥
निर्वाण भोला ! सिद्ध कर, सच्ची यही है काव्यता।
सच्चा यही है कुम्भ अरु, सच्ची यही है कुम्भता॥

एकत्व दर्शन

(१)

बुदबुद् तरगे फेन जैसे, सिन्धु से ना भिन्न है।
नर सुर असुर अरु नाग, त्यो ही ब्रह्म से ना अन्य है॥
जो देखता या दीखता है, ब्रह्म ही चिन्मात्र है।
जो दीखता दर्पण नगर, सो नगर दर्पण मात्र है॥

(२)

मैं देह हूं, इस भावना से, जब कलंकित होय है।
मैं ब्रह्म हूं ना जानता, दु.खी अपण्डित होय है॥
गुरु शास्त्र अनुभव युक्ति से जो, ब्रह्म को है जानता।
नर स्वप्न में भी फिर कभी, सो देह निज को मानता॥

(३)

चित् ब्रह्म सागर पूर्ण है, ना वार है ना पार है।
है आप सबका आप सो ही, सर्व का आधार है॥
नर मूढ फिर भी ब्रह्म मे, जो मानता है भिन्नता।
सो आप होना तुच्छ है बहुयोनि मे है जन्मता॥

(४)

जब बोध रूपी ब्रह्म यह है, देह निज को मानता।
कर्ता तथा भोक्ता स्वयं को, भूल कर है जानता॥
फिर भी न यह कर्ता न भोक्ता, कभी परमार्थ से।
शिव शुद्ध संचित् मुक्त केवल, नित्य ही है तत्त्व से॥

(५)

संकल्प से कर्ता बने, सकल्प से भोक्ता बने।
संकल्प से दु खी सुखी, संकल्प से भर्ता बने॥
सकल्प से ऊँचा चढे, संकल्प से नीचे पडे।
संकल्प से रोवे, हँसे, सकल्प से जन्मे मरे॥

(६)

सकल्प से पापी बने, सकल्प से धर्मी बने।
सकल्प से हो नारकी, संकल्प से स्वर्गी बने॥
करता रहे सकल्प तब तक, भोक्ता संसार है।
हो जाय निस्संकल्प तब ही, होय भव से पार है॥

(७)

ले कीट से ब्रह्मा तलक, बहु जीव है संसार में।
होते रहें मरते रहें, ज्यों मछलियां जलधार मे॥
कितने बहुत ही स्वच्छ है, निर्मोह हरिहर है यथा।
कितने रजोगुण युक्त हैं, नर उरग अमरादिक तथा॥

(८)

कितने बहुत ही मुग्ध हैं, ज्यों वृक्ष पर्वत आदि हैं।
अज्ञान से सम्मूढ़ कितने, कृमि तथा कीटादि हैं॥
जो स्वच्छ है ब्रह्मादि वे तो, तत्व समयक् जानते।
सच्चा समझते ब्रह्म केवल, दृश्य मिथ्या मानते॥

(९)

कितने लगे है योग मांही, भूमिकाएँ चढ़ रहे।
आदर सहित अभ्यास कर, भवसिन्धु से हैं तर रहे॥
कितने लगे है भोग मे, वे ब्रह्म से बहु दूर है।
सुतदार सच्चे जानते, धन के नशे में चूर है॥

(१०)

भजते सदा जो ब्रह्म हैं, वे ब्रह्म ही हो जांय हैं।
जो मूढ नर भोगासक्त हैं, जन्मे मरे पछताय हैं॥
मत भेद भोला! देख यदि, तू चाहता कल्याण है।
भिन्नत्व दर्शन, भ्रांति है, एकत्व दर्शन ज्ञान है॥

कोई किसी को क्या कहै।

(१)

उपदेश देते है सभी उपदेश लेता एक ना।
उपदेश लेवे लेश भी, तो लेश पावे क्लेश ना।।
उपदेश लेवे आप है, उपदेश देता आप है।
है शिष्य यह अथवा गुरू, कोई किसी को क्या कहै।।

(२)

वातादि तीनो से बने है, देह हड्डी मास के।
आने कही, जाने कही, चल फिर रहे वश साँस के।।
परतन्त्र हैं सब भूख के, कोई नहीं निज तन्त्र है।
यह दास है, यह खास है, कोई किसी को क्या कहै।।

(३)

कल सेठ मालामाल था, जो आज सो कगाल है।
कंगाल था जो कल्ल, सो ही आज मालामाल है।।
हो सेठ या कगाल इक दिन, काल सब को खाय है।
है सेठ यह कगाल यह, कोई किसी को क्या कहै।।

(४)

राजा युधिष्ठिर ने कभी भी, झूठ बोला था नही।
बहु कष्ट पाये नगर बन मे, सत्य बोला हर कही।।
कुञ्जर मरा या मरा, नाही हुई पहिचान है।
यह सत्य ही है बोलता, कोई किसी को क्या कहै।।

(५)

जो वाक्य दुर्योधन कहे, वे वाक्य सब हैं ज्ञान के।
बर्ताव इसके देखिये, तो पर्ण हैं अभिमान के॥
मन राखता है अन्य कुछ, बाहर दिखाता अन्य है।
यह है बुरा, यह है भला, कोई किसी को क्या कहै॥

(६)

अक्रूर भगवद् भक्त थे, निर्लोभ थे, निष्काम थे।
शास्त्रज्ञ थे, धर्मज्ञ थे, नीतिज्ञ शुभ धाम थे॥
मणि लोभ से हिंसा कराई, कीन्ह हरि से वैर हैं।
हरिभक्त है, धनभक्त या, कोई किसी को क्या कहै॥

(७)

धन वस्त्र भूषण लूटता, वाल्मीकि था डाकू महा।
लेता पथिक की जान तक, कग और क्या लेना रहा॥
सत्संग से सर्वज्ञ हो, सा ही हुआ कवि मुख्य है।
है कौन अब, हो कौन फिर, किसी को क्या कहै॥

(८)

प्रहलाद बलि आदिक दनुज, बहु थे प्रकृति से तामसी।
आचार से थे सात्त्विकी, व्यवहार में थे राजसी॥
इनके चरित्र करके श्रवण, आनन्द अद्भुत आय है।
नर है दनुज है देव या, कोई किसी को क्या कहै॥

(९)

ससार सच्चा दीखता है सत्य ही सब जानते ।
ना दीखता है ब्रह्म मिथ्या, आप सब ही मानते ॥
जो पूर्व मे था जगत्, पीछे ब्रह्म सो हो जाय है ।
क्या सत्य है, क्या है मृषा, कोई किसी को क्या कहै ॥

(१०)

जो एक सब मे देखता, सो एक ही हो जाय है ।
ना स्वप्न मे भी दूसरा, उसको कही भी पाय है ॥
वाणी नही जहं जा सके, मन जाय गूंगा होय है ।
भोला ! वहा एकान्त मे, कोई किसी को क्या कहै ॥

भीतर सदा रह शान्त रे ।

(१)

इस देह से तेरा कभी, किंचित् नही सम्बन्ध है ।
चिद्रूप तुझ मे मोक्ष नाहीं, ना कभी भी बन्ध है ॥
मन देह मे आसक्त हो, कर्तव्य मे मन भ्रान्त रे ।
कर कर्म बाहर या न कर, भीतर सदा रह शान्त रे ॥

(२)

यह दृश्य बाहर दीखता, सो दृश्य सब मन माहि है ।
यदि दृश्य मन मे हो न तो, बाहर कही भी नाँहि है ॥
मन शुद्ध कर स्वाधीन कर, जब तक न हो देहान्त रे ।
कर कर्म पग से हाथ से, भीतर सदा रह शान्त रे ॥

(३)

कर्ता, करण अरु कर्म तीनो, देह के ये धर्म हैं।
ना ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय तू, सब चित्त के ये धर्म है॥
निस्संग आत्मा है सदा, यह है अटल सिद्धान्त रे।
ना लेप तुझ में कर्म का, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(४)

यदि होय भीतर खोट तो, सोना कलंकित होय है।
बाहर लगी हो कीच, ना कहता कलंकित कोय है॥
घर में सदा कर बास या, कर बास बन एकान्त रे।
मत क्षोभ मन में ला कभी, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(५)

जो होय काई से ढका, सो नीर पावन होय है।
रज आदि से हो लिप्त ऊपर सो अपावन होय है॥
देहेन्द्रियों के कर्म से, देही न होता क्रान्त रे।
रो पीट ले बाहर भले, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(६)

यदि दृश्य सच्चा मानता, सच्चा न होता नष्ट है।
यदि मानता है दृश्य मिथ्या, तो तुझे क्या कष्ट है॥
निर्वासना मन होय तो, हो जाय है दुःखान्त रे।
सुख होय अथवा दुःख हो, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(७)

कर्मेन्द्रिया तो रोकता है, त्यागता संकल्प ना।
यह है भला, यह है बुरा, करता रहे है कल्पना॥
उस मूढ के संसार का, होता कभी ना अन्त रे।
कर्मेन्द्रियो मे कर्म कर, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(८)

मन शुद्धि देता मोक्ष है, मन मलिन से है बन्ध रे।
ना मोक्ष से ना बन्ध से, है आत्म का सम्बन्ध रे॥
जो प्राप्त हो सो भोग ले, मत भोग मे हो सक्त रे।
नि.शंक हो निज धर्म कर, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(९)

गुण तीन का मन है बना, गुण तीन का संसार है।
गुण तीन का है देह यह, करता यही व्यापार है॥
आत्मा अचल निस्संग, ऐसा कह रहा वेदान्त रे।
यदि आत्म अनुभव इष्ट है, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(१०)

आत्मा छुपा है बुद्धि मे बाहर मिलेगा ना कभी।
कर खोज उसकी बुद्धि मे, भोला ! मिले आत्मा अभी॥
इतिहास आदिक कह रहे, कहते यही सब सन्त रे।
बाहर रहे या मत रहे, भीतर सदा रह शान्त रे॥

कुछ भी नहीं तेरा यहां

(१)

घर ईंट मिट्टी आदि का, तन मांस हड्डी आदि का।
है पाँच भूतों का जगत, या इन्द्र, यम, वरुणादि का।
गुण तीन का विस्तार है, काया यहा माया वहाँ।
तेरा रहा क्या है बता, कुछ भी नहीं तेरा यहाँ॥

(२)

लाया न था कुछ तू यहाँ, ले भी नही कुछ जायगा।
मुट्ठी बधा आया यहां था, हाथ खोले जायगा॥
क्यों वस्तु अपनी मानकर, तू दुख पाता है महा।
मत मान अपना कुछ सुखी रह कुछ भी नही तेरा यहां॥

[३]

विश्वेश का विश्व यह, कर सैर तू इस विश्व की।
मन इन्द्रियों को शान्त कर, रख याद अपने तत्व की॥
सुख रूप तेरा तत्व है, ना दुःख किंचित भी जहाँ।
भय रूप भव मे भय सिवा, कुछ भी नही तेरा यहा॥

[४]

साथी सगे सब है यहाँ के, देह के सम्बन्ध से।
तू देह ना, चिद्रूप ब्रह्मन्! मुक्त है भव बन्ध से॥
तू देह में आसक्त हो, आता यहाँ जाता वहा।
आसक्ति तज तू देह की कुछ भी नही तेरा यहाँ॥

(५)

भव वन्ध से यदि मुक्त मै हो, ब्रह्म चेतन आप हूँ ।
है ब्रह्म सव श्रुति कर रही, तो सर्व ही मैं आप हूँ ॥
मै आप ही जव सर्व हूँ, तो सर्व मेरा यहा ।
यदि सर्व है तू आप तो, कुछ भी नही तेरा यहा ॥

(६)

यदि सर्व मैं आप हो, तो सर्व कर्ता क्यो नही ।
यदि सर्व कर्ता मै हुआ, तो सर्व भोक्ता क्यो नही ॥
है कर्म कर्ता भिन्न दो, तू एक दोनो हो कहा ।
कर्ता न तू भोक्ता न तू, कुछ भी नही तेरा यहा ॥

(७)

तू सर्व है, तो कर्म कर्ता, सर्व तू होवे नही ।
हो एक कर्ता कर्म दोनो, है नही देखा कही ॥
सर्वस्व तेरा छुप गया, जब तू बना कर्ता यहाँ ।
मै और मेरा त्याग दो, कुछ भी नही तेरा यहाँ ॥

(८)

मै देह हूँ यह मानता, जब त्याग देगा हे सखे ।
मैं सर्व हूँ मै ब्रह्म हूँ, तव जान लेगा हे सखे ॥
सब ज्ञान, जब हो जायगा, तू ही यहाँ तू ही वहा ।
विश्वास कर, विश्वास कर, कुछ भी नही तेरा यहाँ ॥

(९)

यह विश्व जो है दीखता, आभास अपना जान रे।
आभास कुछ देता नही, सब विश्व मिथ्या मान रे॥
होता वहाँ ही दुःख है, कुछ मानना होता जहां।
कुछ मानकर, दुःखी न हो, कुछ भी नहीं तेरा यहां॥

(१०)

भोला ! किया ज्यों २ मनन, कुछ भी नहीं निकला यहां।
पाया कही ना दूसरा, शिव एक है इकला यहां॥
है एक ही शंकर जहाँ, दूजा वहां आवे कहां।
दे भ्रान्ति तज, शिव शांत भज, कुछ भो नहीं तेरा यहाँ॥

अब चित्त मेरा शान्त है।

(१)

ईश्वर कृपा से गुरु कृपा से, मर्म मैंने पा लिया।
ज्ञानाग्नि में अज्ञान कूड़ा, भस्म सब है कर दिया॥
अब हो गया है स्वस्थ सम्यक्, लेश नाही भ्रान्त है।
शंका हुई निर्मूल सब, अब चित्त मेरा शान्त है॥

(२)

था अब तलक अति मूढ़ मैं, कुछ भी नहीं था जानता।
सत् था समझता असत् को, अरु असत् को सत् मानता॥
जलता नही है चित्त अब, होता कभी ना भ्रान्त है।
सत् अरु असत् को जानकर, अब चित्त मेरा शान्त है॥

(३)

समता, क्षमा, मुदिता, दया, वहिने सदा दुःख देय हैं॥
सन्तोष अरु वैराग्य दोनो, भ्रात भय हर लेय हैं॥
है बोध, सम्यक् पुत्र पावन, शान्ति सुखदा मात है।
परिवार मम शम आदि है, अब चित्त मेरा शान्त है॥

(४)

आनन्दमय भण्डार मेरा, पार जिसका है नही।
दिन रात करता खर्च, तो भी लेश घटता है नही॥
होता सभी का है प्रलय, इसका न होता अन्त है।
यह कोष अद्भुत पाय के, अब चित्त मेरा शान्त है॥

(५)

सद्गुरु बिना संसार का, ना भेद कोई पा सके।
जब तक न पावे भेद, तब तक दुःख नाही जा सके॥
सद्गुरु बताता भेद है, होता सभी दुःखान्त है।
सद्गुरु बताता भेद है, अब चित्त मेरा शान्त है॥

(६)

जो कुछ यहां है दीखता, ना ब्रह्म से कुछ अन्य है।
जैसे कटक है कनक ही, ना कनक से कुछ भिन्न है॥
जब दूसरा है ही नही, तो सर्वथा एकान्त है।
एकांत मुझ को मिल गया, अब चित्त मेरा शान्त है॥

(७)

एकत्व में भी व्यर्थ ही नर, मूढ़ भय है खावता ॥
बेताल लेता कल्प बालक, मूढ़ फिर है कांपता ॥
अद्वैत है एकत्व है, ना देश है ना प्रान्त है।
ना काल है ना वस्तु है, अब चित्त मेरा शान्त है ॥

(८)

होता जहाँ पर दूसरा है, भय तहां ही होय है।
जब गाढ़ निद्रा आय है, तब भय न खाता कोय है ॥
जगता हुआ निद्रालु सा, जो शान्त है अरु दान्त है।
दुःखी नहीं सो हो सके, अब चित्त मेरा शान्त है ॥

(९)

कर्त्तव्य था सो कर लिया, करना नहीं कुछ शेष है।
जो जानना था जान लीना, जानना ना लेश है॥
प्राप्तव्य था सो पा लिया, चलना न आगे पन्थ है।
यात्रा महा पूरी हुई, अब चित्त मेरा शान्त है ॥

(१०)

तत्शास्त्र भोला! पढ़ सदा, सत्सग में जा नित्य रे।
आसक्त मत हो भोग मे, कर सूक्ष्म निर्मल चित्त रे ॥
मन शुद्ध देता मोक्ष है, यह वेद का सिद्धान्त है।
कर शुद्ध मन, निश्शक कह, अब चित्त मेरा शान्त है ॥

* समाप्तम् *

॥ ओ३म् ॥

पांचवां भाग

श्रुति की पुकार

—○—

वेदान्त चर्चा कर नित्य "भोला" !
एकत्व करले दृढ ठोस गोला ॥
दे तोड 'मायागढ' मात्र पोला ।
सार्थक्य होवे नर दिव्य चोला ॥

—भोला

प्रकाशक :-

[illegible] पुस्तक भंडार
दरीबा कलाँ-देहली

अध्यक्ष—लक्ष्मीचन्द तायला

मूल्य ।।) आठ आना

चौथी बार

जुलाई १९६२

मुद्रक—

कुमार फाइन आर्ट प्रेस,

११४३, चाह रहट, दिल्ली-६

॥ ओ३म् ॥

निवेदन

सब कार्य करते हुए भी तत्वज्ञ अकर्त्ता हो रहता है, क्योंकि अब उसे देह मे और देह के कार्य मे कर्त्तव्य का अभिमान नही होना । अब वह कुछ कार्य नही करता उसका देह ही काय करता है । जैसे दूसरे के किये हुए देह के कार्य से दूसरा कोई भियाय-मान नही होता, उसी प्रकार अपने किये हुए देह के कार्य से तत्वज्ञ भियायमान नही होता, क्योंकि अब तत्वज्ञ देह नही है किन्तु देह से भिन्न है। यथार्थ तो सब ही देह से भिन्न है, तो भी ज्ञाता-ज्ञेय रूप देही और देह को अपनी आत्मा अनात्मा का का विवेक न होने से अविवेकी देह से भिन्न होते हुए भी आपका अभिन्न मानता है, इसलिये बधन का अनुभव करता है और विवेकी आपको और देह को भिन्न मानता है, इसलिए जीवन्मुक्ति के आनन्द का अनुभय करता है । मुमुक्षु को चाहिये उपरोक्त भाषण वाले अभ्यास और वैराग्य का नित्य निरन्तर चिरकाल तक जब तक सिद्धि न हो प्रयत्न करे प्रमाण से भी इनका त्याग न करे, क्योंकि ससार से मुक्त करने के ये दो ही कारण हैं । कारण बिना कार्य सिद्ध नही होता । इसी प्रकार इनके बिना ज्ञान और मोक्ष सिद्ध नही होता ।

॥ इति ॥

सकलचराचरानुचर "भोला"

पद्य-सूची

पद्य	पृष्ठ-सख्या
मगला चरणम्	५
सच्चिदानद आत्मा तुही है	६
प्रार्थना	८
तुझको दुःख दे रहा है	१०
तृप्ति	१२
कामादि की दुर्दशा	१४
क्यो सो रहा है ?	१६
धन्य जीव	१८
प्रचण्ड अज्ञान	२०
नमस्कार	२२
वेदान्त-चर्चा	२४
ससार तमाशा	२६
क्रोध	२८
आत्म-स्वरूप	३०
कृषिकार (किसान)	३२
गुरु-वाक्य	३४
अच्छी दिवाली हमारी	३६
अज्ञानी जीव की दशा	३८
अज्ञानी को उपदेश	४०
व्यापार	४२
उद्धार	४४
महाभारत-युद्ध	४६
आत्म-प्राप्ति	४८
आत्मा मेरा वह ही नहीं है	५०

पद्य	पृष्ठ-सख्या
पश्चात्ताप	५२
क्यो तू जग माहि आया	५४
वृक्ष	५६
अज्ञान-निद्रा	५८
वेदान्त-डोडी	६०
स्नेह के दोष	६२
मन वश करने के सरल उपाय	६४
दीवाली प्रिय पूजियेगा	६६
सत्सग पीयूष	६८
पृथ्वी का गीत	७०
ज्ञान-छाता	७२
यह विचार कभी किया ना	७४
आत्म-स्वरूप रहे	७६
शिष्यप्रार्थना	७८
रग श्याम रग मे	८०
अवश्य हाथ आयगा	८२
सत्सग	८४
मैं कौन हू	८६
गुरु-स्तुति	८८
बोध वैराग्य और उपराम	९०
काम	९२
जय सद्गुरु देवन देव परम	९४

॥ ओ३म् ॥

वेदान्त-छन्दावली पांचवां भाग

श्रुति की पुकार

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

(१)

लक्ष्मीकौस्तुभवक्षसं मुररिपु शखासिकौमोदको,
हस्त पद्मपलाशताभ्रनयन पीताम्बर श ङ्गिणम् ।
मेघश्याममुदारपीवरचतुर्बाहुँ प्रधानात्परम्,
श्रीवत्सांकमनाथनाथममृत वन्दे मुकुन्द परम् ॥

(२)

योलक्ष्म्यानिखिलानुपक्ष्यविबुधानेकोवृत स्वेच्छया,
य सर्वान्स्मृतमात्र एव सतत सर्वात्मना रक्षति ।
यश्चक्रेण निकृत्य नक्रमकरोन्मुक्तं महाकुञ्जरं,
द्वेषेणापि ददाति यो निजपदं तस्मै नमो विष्णवे ॥

(३)

मेघश्याम निरवधिरसं पीतवासो दधानम्,
कान्तयाक्रान्तं त्रिभुवनवपुर्ध्येयपादारविन्दम् ।
सत्यज्ञानामितसुखमवाग्गोचरं बुद्ध्यतीतं,
भक्तया सिद्धयेस्वमपि कलयेश्रीमुकुन्द स्मितास्यम् ॥

सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ।

(१)

सदा सिद्ध योगी धरें ध्यान जाका ।
अमानी विरागी लहे ज्ञान जाका ।।
जिसे वेद वाणी सदा गा रही है ।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ।।

(२)

जिसे पूजते भोग के हेतु कर्मी ।
जिसे पूजके पांय ऐश्वर्य धर्मी ।।
जिसे जानता एक तत्त्वज्ञ ही है ।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ।।

(३)

जिसे यज्ञ दानादि से पूजते हैं ।
जिसे ढूंढते तीर्थ में घूमते हैं ।।
जिसे जानने भक्ति श्रद्धा कही है ।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ।।

(४)

नहीं आदि ना मध्य, ना अन्त जाका ।
उजाला सभी विश्व में व्याप्त जाका ।।
जहाँ सृष्टि अज्ञान से भासती है ।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ।।

(५)

सुनो देख भी लो कहा जाय नाँही ।
जिसे देख द्रष्टा रहे भिन्न नाँही ॥
जिसे पाय के शेप पाना नहीं हैं ।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ॥

(६)

नही जन्म लेवे मरे भी नही है ।
यहा भी वहा भी, वही एक ही है ॥
घनी दूर जो पास से पास भी है ॥
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ॥

(७)

महादेव जो सर्व का ही पिता है ।
सभी विश्व जो देव को भासता है ॥
जहाँ बुद्धि जाके बिला जावती है ।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ॥

(८)

जिसे शास्त्र बेमाप का है बताते ।
जिसे विष्णु का धाम है वेद गाते ॥
प्रमाता सभी का स्वय सिद्ध ही है ।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ॥

प्रार्थना

(१)

हैं रोग लाखो तन को गलाते ।
कामादि है चित्त सदा जलाते ॥
है मृत्यु से भी भय भीत भारी ।
हे ईश ! रक्षा करिये हमारी ॥

(२)

है छीजता नित्य शरीर रोगी ।
है खेद देता मन मूढ़ भोगी ॥
बुद्धि हुई है अति ही विकारी ।
हे राम ! रक्षा करिये हमारी ॥

(३)

आयु लगा पंख उड़े सदा है ।
आता जरा यौवन भागता है ॥
वारंट कीना यमराज जारी ।
हे कृष्ण ! रक्षा करिये हमारी ॥

(४)

सत्संग में चित्त नही लगाया ।
ना भक्ति भायी नहि योग भाया ॥
आयु वृथा भोगन में गुजारी ।
मायेश ! रक्षा करिये हमारी ।

(५)

ईर्षा तजी ना, समता भजी ना ।
निर्द्वन्द्वता मे नांहि चित्त दीना ।।
सन्तोष त्यागा नाहि शान्ति धारी ।
योगेश ! रक्षा करिये हमारी ।।

(६)

कीन्हा नही प्यार सुखी जनो पे ।
ना की दया दीन दुखी जनो पे ।।
त्यागी शुभेच्छा मुदिता विसारी ।
हे देव ! रक्षा करिये हमारी ।।

(७)

नेत्रादि दौड़े नित वाह्य ही है ।
अन्तरमुखी होय नहीं कभी है ।।
हे नाथ कैसे फिर हो सुखारी ।
विश्वेश रक्षा करिये हमारी ।।

(८)

सेवा गुरु की नर जो करे है ।
वे ज्ञान पाके भव से तरे है ।।
कैसे करे सो तन के पुजारी ।
भोलेश ! रक्षा करिये हमारी ।।

तुझको दुःख दे रहा है।

(१)

चिल्लाया अज्ञ दुःख से सुख पूर्ण ज्ञानी ।
ना दुःख वास्तविक है, केवल कहानी ।।
भासे ना एक सम, जो दुःख तो कहां है ।
तेरा अबोध तुझको दुःख दे रहा है ।।

(२)

संसार चक्र सम, घूमत है सदाई ।
आई अभी सुबह है, फिर साझ आई ।।
स्वाभाविकीय जग में, दुःख लापता है ।
तेरा अबोध तुझको, दुःख दे रहा है ।।

(३)

ना वाह्य है, न मनमें, निज अन्य में ना ।
ना दुःख है विषय माँहि, आभाव में ना ।।
ना दुःख, नारि, धन, योग, वियोग का है ।
तेरा अबोध तुझको दुःख दे रहा है ।।

(४)

आकार है ना दुःख का, नहिं जन्म होई ।
माता पिता ना दुःख दें, नहिं अन्य कोई ।।
तू खोज तो तनिक, दुःख रहे कहां है ।
तेरा अबोध तुझको दुःख दे रहा है ।।

(५)

शास्त्रादि दुःख जगमे, बतलाय है क्यो।
कैसे निवृत्त दुःख हो, न लखाय है क्यो॥
तू दुःख है पकडता, दुःख यो कहा है।
तेरा अबोध तुझको, दुःख दे रहा है॥

(६)

आये अभी जगत् मे, करने तमाशा।
सच्चा उसे समझ, होय रहे हिरासा॥
जो स्वाग मानि करिये, दुःख ना जरा है।
तेरा अबोध तुझको, दु.ख दे रहा है॥

(७)

चैतन्य मे न दुःख ना, जड मे बने है।
तीजा सिवाय इनके, नहि विश्व मे है॥
तू ही बता किधर, दुःख रहे कहा है।
तेरा अबोध तुझको, दुःख दे रहा है॥

(८)

नाशी प्रशान्ति भ्रमसे, दुःख भासता है।
भोला ! कृपा गुरुनसे, दुःख नाशता है॥
भासे स्वरूप अपना, दुःख भाग जाता।
आनन्द सिंधु जग मैं, परिपूर्ण पाता॥

तृप्ति

(१)

हजारों सुनी मैं कहानी सुवानी ।
सुनी सैकडों ही कथायें पुरानी ॥
किसी की बुराई किसी की भलाई ।
सुनी नित्य, तो भी नहीं तृप्ति पाई ॥

(२)

सदा मंच पे नर्म गद्दे बिछाये ।
किया प्यार बच्चे गले से लगाये ॥
रहा धारता पुष्प माला सदाई ।
नहीं स्पर्श से आज लों तृप्ति पाई ॥

(३)

अनेको तमाशे लिये देख आँखो ।
अनोखी अनोखी लखीवस्तु लाखों ॥
लई सुन्दरी देख देवागना सी ।
नही देखने की अभी चाह नाशी ॥

(४)

अलोनी सलोनी खटाई मिठाई ।
रसीली तथा चर्परी नित्य खाई ॥
नही स्वाद जिह्वा सके है बताई ।
अभी लों नही जीभ खाते धाई ॥

(५)

जुही मालती आदि सूंघा किया मैं।
मिला केवडा नीर पीता रहा मैं॥
लगा वस्त्र मैं इत्र आनन्द लूटा।
नही सूंघने का अभी प्रेम छूटा॥

(६)

सुने से छुए से तथा देखने से।
नहीं तृप्ति हो चाखने सूंघने से॥
नही भोग भोगै कभी तृप्ति होई।
जिसे भोग लो दुःख दे नित्य सोई॥

(७)

सदा दुःख दें तुच्छ हैं भोग पाँचो।
रहे मारते भोग है रोग पाचो॥
निजात्मा सुधा सिन्धु से तृप्ति कर्ता।
परा शान्ति दाता तिहू ताप हर्ता॥

(८)

सभी का वही तत्व है साथ ही है।
उसे दूर लेने न जाना कही है॥
हटा वाह्य से वृत्ति अन्तर्मुखी हो।
तभी होय सतृप्त, भोला ! सुखी हो॥

कामादि की दुर्दशा

(१)

अरे काम ! तू खिन्न क्यों है बता रे।
गर्म ज्येष्ठ की क्या तुझे लू सता रे॥
नही पूर्व का रंग ना रूप ही है।
न खेले, न कूदे, हंसे भी नही है॥

(२)

अरे क्रोध ! तू भी पड़ा सो रहा सा।
न भाजे न दौड़े, हुआ है मरा सा॥
जचे है हमे सर्प से तू डसा सा।
बता सोच क्या, क्यों हुआ है हिरसा॥

(३)

अरे लोभ ! तू भी गया सूख सा है।
बड़ा पेट छोटा हुआ, भों ठसा है॥
बता तो सही मित्र ! क्यो रो रहा है।
गिरी ओस है या कि पाला पड़ा हैं॥

(४)

सदा धूम तीनों मचाते रहे थे।
कभी कूदते थे, कधी फांदते थे॥
हुए आज तीनो महा दीन ऐसे।
बिना मा, बिना बाप के बाल जैसे॥

(५)

बडे प्रेम से मा हमे थी खिलाती ।
करे प्यार थी लाड भी थी लड़ाती ॥
हमें छोड के सो कहीं है पलायी ।
उसी से हुए है दुखी दीन भाई ॥

(६)

हमारे पिता ने वधू की नई है ।
खिलाती पिलाती हमे सो नही है ॥
कभी मागते तो दिखा दात देती ।
करें जिद्द तो पेट मे लात देती ॥

(७)

इसी से हमारी हुई दुर्दशा है ।
पिता भी हमे द्वेष से देखता है ॥
नही होयगी जो हमारी सुनाई ।
चले जायँगे छोड के गेह भाई ॥

(८)

अविद्या गयी प्राप्त विद्या भई है ।
तभी से त्रयी की दशा ये हुई है ॥
न कामादि मे राग भोला । करे है ।
निजानन्द मे तृप्त बैठा रहे है ॥

क्यों सो रहा है ?

(१)

सभी ठौर व्यभित्सता छा रही है ।
मरी ही मरी दृष्टि में आ रही है ॥
मरे एक है दूसरा हो रहा है ।
नहीं चेतता मूढ़ ! क्यों सो रहा है ॥

(२)

अरे यात्री ! डेरा किया मार्ग तेने
जहां चोर डाकू फिरे लूट लेने ॥
नही होश ! बेहोश क्यों हो रहा है ।
पड़ा नीद मे मूढ़ क्यों सो रहा है ॥

(३)

नही वास यां सज्जनो का कहीं है ।
यहाँ सोवने में भलाई नही है ॥
पड़ा नीद में शक्ति क्यों खो रहा है ।
अरे जाग जा मूढ़ ! क्यों सो रहा है ॥

(४)

सवेरे हि पादादि शक्ति बिना हो ।
नही चालना, हालना बोलना हो ॥
गला ! कीमती देह को क्यो रहा है ।
बजे चार हैं मूढ ! क्यों सो रहा है

(५)

पशु-पक्षी चैतन्य हो बोलते हैं।
चले हैं, फिरें, मान से डोलते हैं॥
जगे सर्व तू आंख मींचे हुआ है।
उठे क्यों नहीं मूढ ! क्यों सो रहा है॥

(६)

गया माल सारा, कुटम्बी गये हैं।
रहेगा न तू भी, सभी जा रहे हैं॥
न तोशा लिया है, न साथी किया है।
पड़ा ऊंघता मूढ ! क्यों सो रहा है।

(७)

नहीं पुत्र ना पौत्र ही काम देगा।
न सम्बन्धी ही साथ कोई चलेगा॥
सगे बाधकों में अंधा क्यों हुआ है।
अरे ! त्याग अज्ञान क्यों सो रहा है॥

(८)

सुनो वाक्य सत्शास्त्र का सद्गुरु का।
लिये वाक्य वेही, बना ठोस नौका॥
कृपा कीनि, आत्मादि साथी किया है।
जगा पार संसार से हो रहा है॥

धन्य जीव

(१)

करे सैर संसार बाड़ी सदा ही।
छुये फूल नाही नही तोडता ही ॥
सदा पुष्प की गन्ध ही लेय है जो।
वही जीव है धन्य ऐसे रहे जो ॥

(२)

जगत् वाटिका सैर के हेतु जाने।
सदा सैर ही मात्र में मोद माने ॥
बनाना यहाँ धाम नाही चहे जो।
वही जीव है धन्य ऐसे रहे जो ॥

(३)

जगत् में फिरे सर्व चेष्टा करे है।
निरालम्ब तो भी सदा ही रहे है ॥
तमाशा गिने मृत्यु औ जन्म दोऊ।
वही जीव है धन्य, ना अन्य कोऊ ॥

(४)

नही अन्य बाधे बधे आप ही है।
दु:खी भी सुखी भी करे चित्त ही है ॥
नही चित्त के होय स्वाधीन जोई।
वही जीव है धन्य ना अन्य कोई ॥

(५)

मदारी हजारो तमाशे करे है ।
न मोहे स्वयं अन्य कू मोहि दे है ॥
मदारी बना देखता जो तमाशा ।
वही धन्य ज्ञानी अमानी निराशा ॥

(६)

जगत् के नियता महादेव जैसे ।
अधिष्ठा न व्यक्तित्व का जीव तैसे ॥
न कर्ता न भोक्ता बने धीर जोई ।
स्वयं शुद्ध जाने महा धन्य सोई ॥

(७)

चले चक्र ही है धुरी नाहि हाले ।
चले चक्र संसार ना ईश चाले ॥
छुटे चक्र से ईश का ले सहारा ।
वही धन्य है जीव ब्रह्मादि प्यारा ॥

(८)

रमे आप माँही सुखी आप माही ।
सिवा आपके भाव ही अन्य नाही ॥
टिका आत्म के माहि संतुष्ट जो है ।
महा धन्य है सर्व से श्रेष्ठ सो है ॥

प्रचण्ड अज्ञान

(१)

सोही मरा जो नहीं आत्म जाना ।
सोही मरा जो तनु आप माना ॥
सोही मरा जो भव में भुलाया ।
प्रचण्ड अज्ञान यही कहाया ॥

(२)

ऐश्वर्य चाहा जिसने यहां का ।
सो दीन हो दास यहा वहाँ का ॥
मै मोर तेरा करि ख्वार होई ।
प्रचण्ड अज्ञान कहाय सोई ॥

(३)

मनुष्य काया बड़ पुण्य पाई ।
पापिष्ट सो भोगन में गुमाई ॥
संसार माँही घर है बनाया ।
प्रचण्ड अज्ञान यही कहाया ॥

(४)

जाने मरूंगा फिर भी डरे है ।
नाहीं मरूं चाह किया करे है ॥
सांचा कभी यत्न करे नही है ।
प्रचण्ड अज्ञान कहा यही है ॥

नमस्कार ।

(१)

अहंकार किंचित् बना है जहां लों ।
नमस्कार पूरा नही हो वहां लो ॥
अहंकार दे मेट ओंकार होई ।
नमस्कार पूरा कहे विज्ञ सोई ॥

(२)

जहां लों रहे लेश मैं और मेरा ।
मृषा है नमस्कार हे भक्त ! तेरा ।
'न मै हो न मेरा' नहीं अन्य होई ॥
नमस्कार सच्चा कहा जाय सोई ॥

(३)

नमस्कार क्या है दुई को मिटाना ।
मिटा द्वैत अद्वैत माही समाना ॥
मिटा आपको आप ही होय जाना ।
नमस्कार अत्यन्त ही है सुहाना ॥

(४)

जहां देह होवे तहां दुःख भासे ।
न हो देह तो सर्वथा दुःख नासे ॥
करे आप को देह से धीर न्यारा ।
नमस्कार का अर्थ सोही विचारा ॥

वेदान्त चर्चा ।

(१)

वेदान्त चर्चा सुख कारिणी है ।
विज्ञान दाता तम हारिणी है ॥
वैराग्य नौका भव तारिणी है ।
'रागादि' शत्रुन निवारिणी है ॥

(२)

वेदान्त चर्चा समता सिखाती ।
मेटै अहंता ममता छुड़ाती ॥
सन्तोष पीयूष सदा पिलाती ।
तृष्णा दुराशा जड़ता मिटाता ॥

(३)

वेदान्त चर्चा करते कराते ।
संसार सिन्धु तरले तराते ॥
श्रेयाभिलाषी सुनते सुनाते ।
आनन्द से जीवन हैं । बिताते ॥

(४)

वेदान्त चर्चा करिये सदा ही ।
ना अन्य चर्चा करिये कदा ही ॥
वेदान्त चर्चा जिनको सुहाई ।
सन्ताप नाशा सुख शान्ति पाई ॥

संसार तमाशा

(१)

संसार है नाटक का तमाशा ।
कीजें खुशी से तज सर्व आशा ॥
अच्छा तमाशा अथवा बुरा है ।
टोटा नफा ना कुछ पात्र का है ॥

(२)

आया यहाँ हूं करने तमाशा ।
जो जानता सो नहिं हो हिरासा ।
जो भूल जाता सुख सो न पाता ।
आनन्द जाता दु.ख हाथ आता ॥

(३)

कीजें तमाशा करिये न आशा ।
है व्यर्थ आशा जब है तमाशा ॥
तृष्णा किला जो चुनता रहेगा ।
माथा सदा सो धुनता रहेगा ।

(४)

हैं आज ठैरे, उठ कल्ल जाना ।
ऐसी सरा में मन क्यों लगाना ॥
हैं आज आये, कल राह लेंगे ।
ऐसे विदेशी कब साथ देंगे ॥

(५)

जो देह लाखो ज्वर से भरा है।
आसक्त होना उसमे बुरा है॥
आसक्तियायें तज मित्र दीजे।
पाओ न दूजो अस यत्न कीजे॥

(६)

डाकू लुटेरे बसते जहाँ हैं।
वा ग्राम मे खैर भला कहां है॥
दीखे हित ऊपर देखने मे।
सच्चे सयाने धन लूटने में॥

(७)

जो भोग आवे सब भोग लीजे।
आगे न हो दुःख उपाय कीजे।
ससार से चित्त हटाय दीजे।
अन्तर्मुखी वृत्ति बनाय लीजे॥

(८)

जो प्राप्त हो ईश प्रसाद जानो।
लो भोग आनन्द विनोद मानो॥
भोला ! जगत् मे दुःख न उठाओ।
आत्म निहारो सुख शान्ति पाओ॥

क्रोध

(१)

अरे क्रोध ! ब्रह्माण्ड माँही बसैया ।
पिता कामना विघ्न सम्मोह भैया ॥
प्रचंडाग्नि गुप्ताग्नि छाती जलैया ।
रजो, तामसी भूमि गाढा सुवैया ।

(२)

जहाँ जोश में क्रोध ! आ जाय है तू ॥
भुला आप को अन्य को देय है तू ।
बने सूर पूरा भुजा शस्त्र डाले ।
नही लेश चिन्ता मरे या कि मारे ॥

(३)

अरे क्रोध रक्तादि पीता सुखाता ।
इसी मे तुझे स्वाद हे दुष्ट आता ॥
भरे कंठ लों पेट हो पूर्ण ज्यों ही ।
गिरे आपही होय बेहोश त्योही ॥

(४)

अरे क्रोध ज्यों चाप से बाण धाई ।
पृथक् होय के दूर जावे पराई ॥
इसी भाति से ही उठे वेग से तू ।
करे है पृथक आपको देह मे तू ॥

(५)

अरे क्रोध ! तू भ्रष्ट बुद्धि करे है !
करे अन्ध है ज्ञान सम्यक् हरे है !!
भरे प्रेत आवेश से देह जैसे !
इसी भाति तू देह माही प्रवेशे !!

(६)

अरे क्रोध ! देवादि दैत्यादि मारे !
ऋषि औ मुनि सर्व तूने पछारे !!
जहा तू रहे है नही शान्ति आती !
नही अग्नि के पास ज्यो ठड जाती !!

(७)

पिता काम तेरा ! न नाशे जहाँ लो !
नही क्रोध अज्ञान नाशे तहाँ लो !!
तहाँ लो नही तू मरे दुष्ट स जी !
रचा धातृ तू ! क्या उन्हे हाय सूझी !!

(८)

अरे क्रोध ! जा ने तुझे जीत लीन्हा !
सभी जीते भोला ! बडा काम कीन्हा !!
वही धन्य जानो, वही विष्णु मानो !
वही भक्त ज्ञानी, वही मुक्त जानो !!

आत्म स्वरूप

(१)

रातों दिनों रेल चला करे है ।
सिगल गिरे और उठा करे है ॥
खंभा जरा भी सरके नही है ।
त्यों ठोस आत्मा खिसके नही है ॥

(२)

आ रेल गाड़ी टिक जावती है ।
जाती चली है फिर आवती है ॥
होले न चाले पटरी कभी है ।
त्यों स्वस्थ आत्मा डिगता नही है ॥

(३)

आया गया स्टेशन दीखता है ।
आता न जाता ध्रुव ज्यों डटा है ॥
है देह आता अरु देह जाता ।
आत्मा न जाता नहिं लौट आता ॥

(४)

गाड़ी हजारों चलती सदा ही ।
रास्ता न चाले रहता वहाँ ही ॥
है देह जन्मे, मर देह जाता ।
आत्मा मरे ना नहिं जन्म पाता ॥

(५)

गाडी लडे टूटत भी रहे हैं ।
या लैन पे से गिरती रहे है ।।
गाडी गिरे भूमि रहै वही है ।
त्यो आत्म भूमा हिलता नही है ।।

(६)

दे तार कोई अरु लेय कोई ।
वे तार ही ना कुछ कार्य होई ।।
स्वस्थान से ना विजली चले है ।
त्यों आत्म किंचित् न कभी हिले है ।

(७)

देके किराया चढती सवारी ।
पूरे हुए दाम गई सवारी ।।
ना आत्म गाडी नहिं है सवारी ।
सत्ता तथा स्फूर्ति प्रदान कारी ।।

(८)

आत्म भोला ! मैं सबमें भरा हू ।
है सर्व मिथ्या शिव मे खरा हूँ ।।
प्रज्ञान हू, सत्य अनन्त हू मैं ।
दुर्लक्ष्य, अव्यक्त, अचिन्त्य हूं मैं ।।

कृषि कार (किसान)

(१)

कृषिकार ! खेती तुझे बोवनी है ।
गुजारा उसी पे कमाई वही है ॥
तुझे चाहिये खेत ऐसा कमाना ।
रहे घास का बीज किंचित् वहां ना ॥

(२)

भला खेत जो कंडुवे से भरा हो ।
वहाँ अन्न अंकुर कैसे हरा हो ॥
नहीं अन्न हो, होय तो अल्प होई ।
नही लाभ पूरा उठाय पाय कोई ॥

(३)

लगा आग दे, बीज दूना जला दे ।
कमा खूब ले खाद तामे मिला दे ॥
वही अन्न बो दे जिसे बोवना हो ।
उगे बीज पूरी मनोकामना हो ॥

(४)

करे खेत ऐसा सदा हो सुखारी ।
बुझे प्यास सारी मिटे भूख सारी ॥
सदा के लिये पूर्ण भंडार होवे ।
मिटे दीनता विश्व आधार होवे ॥

(५)

कृषीकार हे ! आर्य सन्तान है तू ।
यहां आ गया है किसी पुण्य से तू ॥
करे कर्म अच्छे मिले सर्व ऋद्धि ।
करे कर्म निष्काम हो शुद्ध बुद्धि ॥

(६)

घनी कामनाये बसे बुद्धि मांही ।
जलाये बिना, बुद्धि हो शुद्ध नांही ॥
सदाचार जो तू करेगा सदाई ।
तभी बुद्धि मे आयगी शुद्धताई ॥

(७)

जगत् कामनाये सदा दुःख देती ।
भगा शान्ति देती, बुला शोक लेती ॥
विरह अग्नि मे कामनाये जलादे ।
विवेकादि का खाद खासा बिछादे ॥

(८)

तभी बोध का बीज भोले ! उगेगा ।
बडा वृक्ष हो फूल देगा फलेगा ॥
धनी होगया तू ! सुखी हो गया तू !
निजानन्द में मग्न हो सोयगा तू ॥

गुरु वाक्य

(१)

अरे शिष्य ! है कौन ? क्या पूछता है ?
तुझे देखि आश्चर्य होता महा है ।
सभी विश्व में एक तू ही भरा है ॥
यही जानने देह तूने धरा है ॥

(२)

जुदा विश्व से विश्व में तू मिला है ।
सभी से प्रथक् है सभी में बसा है ॥
छुपा था खजाना पता था न तेरा ।
स्वय को बताने बना रूप मेरा ॥

(३)

अनेकों हुआ, एक को, तू बताता ।
तुही । मान है मेय तुही प्रमाता ॥
तुही होय राजा किरीटादि धारे ।
तुही भिक्षु कौपीन कथा संभारे ॥

(४)

करे भोग तू ही तुही होय रोगी ।
करे योग तूही बने सिद्ध योगी ॥
तुही बैठि एकान्त माला घुमावे ।
सभा में तुही । कृष्ण के गीत गावे ॥

(५)

धरे ध्यान तू ही ! करे विष्णु पूजा ।
कथे ज्ञान तू ही ! नही अन्य दूजा ॥
तुही ! देह है रे, तुही ! विश्व है रे ।
तुही ! चन्द्र, अग्नि, तुही ! सूर्य है रे ॥

(६)

गुरु होय के सीख देता तुही है ।
गुरु पास जा सीख लेता तुही है ॥
तुही ! होय है जीव देहाभिमानी ।
बने है तुही ! ईश विश्वाभिमानी ॥

(७)

नही देह तेरा ! नही देह है तू ।
परे देह से है, परे विश्व से तू ॥
चिदानन्द, संदोह, अद्वैत है तू ।
सुखी गात, सर्वात्म, कूटस्थ है तू ॥

(८)

अहकार दे देह का त्याग प्यारे !
सभी विश्व में पूर्ण हो शिष्य जारे ॥
सुना शिष्य भोला ! गुरु वाक्य ऐसा ।
हुआ स्वस्थ, स्वच्छन्द था पूर्व जैसा ॥

अच्छी दिवाली हमारी ।

(१)

सभी इन्द्रियों मे हुई रोशनी है ।
यथा वस्तु है सो तथा भासती है ॥
विकारी जगत् ब्रह्म है निर्विकारी ।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी ॥

(२)

दिया दर्श ब्रह्मा जगत् सृष्टि करता ।
भवानी सदा शंभु औ विघ्न हर्ता ॥
महा विष्णु चिन्मूर्ति लक्ष्मी पधारी ।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी ॥

(३)

दिवाला सदा ही निकला किया मै ।
जहां पे गया हारता ही रहा मै ॥
गये हार है आज शब्दादि ज्वारी ।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी ॥

(४)

लगा दाव पे नारि शब्दादि देते ।
कमाया हुआ द्रव्य थे जीत लेते ॥
मुझे जीत के वे बनाते भिकारी ।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी ॥

(५)

गुरू का दिया मन्त्र मैं आज पाया ।
उसी मन्त्र से ज्वारियो को हराया ॥
लगा दाव वैराग्य ली जीत नारी ।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी ॥

(६)

सलौनी, सुहानी, रसीली मिठाई ।
वशिष्ठादि हलवाइयो की बनाई ॥
उसे खाय तृष्णा दुराशा निवारी ।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी ॥

(७)

हुई तृप्ति, सतुष्टता, पुष्टता भी ।
मिटी तुच्छता, दु खिना, दीनता भी ॥
मिटे ताप तीनो हुआ मै सुखारी ।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी ॥

(८]

करे वास भोला ! जहा ब्रह्म विद्या ।
वहा आ सके ना अ वैरी अविद्या ॥
मनावे सभी नित्य ऐसी दिवाली ।
हमारी मनी आज जैसी दिवाली ॥

अज्ञानी जीव की दशा ।

(१)

बिछा एक पर्यंक प्रसाद में है ।
वहां एक राजा पड़ा नीद में है ॥
नशे में हुआ चूर सोया हुआ है ।
नही होश क्या राज्य में हो रहा है ॥

(२)

हुई राज्य की ओर से है रुलाई ।
करी पास के भूप ने है चढ़ाई ॥
किला घेर के शत्रु सेना खडी है ।
चलो लूट लो, मार दो हो रही है ॥

(३)

मची राज्य में, सैन्य खलबली है ।
करें हाय क्या यत्न सूझे नहीं है ॥
करी रोक तो भी न पूरी पड़ी है ।
प्रजा लूटती आप सैना गई है ॥

(४)

प्रजा माल छोड़ा भगी जा रही है ।
गया हाय सर्वस्व चिल्ला रही है ॥
लगी लूटने द्रव्य को आप सेना ।
न दे माल तो जान ही होय देना ॥

(५)

पुरी लूट के भूप प्रासाद घेरा।
किया शत्रु चारो दिशा माँहि डेरा॥
प्रधानादि आ भूप को है जगाते।
न जागे घनी युक्तिया है लगाते॥

(६)

भरी शोक मे रानिया आ गई है।
दबा हाथ पैरादि चेता रही है॥
नही चेतता रो रही झींकती है।
दुखी हो रही छातिया पीटती है॥

(७)

विवेकी कहें योग्य राजा नही है।
बचा प्राण भागो भलाई यही है॥
नही रानियों को सके है बचाई।
खजाना लुटा आच भी पास आई॥

(८)

सुने कान से आँख से देखता है।
दुखी हो रहा है पडा औंघता है॥
यही दुर्दशा जीव की हो रही है।
न हो ज्ञान भोला ! न होता सुखी है॥

अज्ञानी को उपदेश।

(१)

संसार माँही कुछ सार नांही।
क्यों डुबोता है भव सिंधु मांहीं ॥
आया जिसे ढूढन ढूंढ सो रे।
आयु वृथा ही मत मूढ़ खो रे ॥

(२)

आया तमाशा करने यहा तू।
कर्तार सच्चा बन है गया तू ॥
मै तोर में तू जकडा हुआ है।
तू आपही बन्धन मैं पडा है ॥

(३)

पी मोह दारू नर है भुलाया।
जाने नही है अपना पराया ॥
कर्तव्य भूला फिरता फिरे है।
ज्यो वाँदरा नृत्य किया करे है ॥

(४)

है कौन साथी जग मांहि तेरा।
दो रात का है जग में वसेरा ॥
जीते मरे वन्धु रुलावते है।
चिन्ता चिता मांहि जलावते है ॥

(५)

आया सवेरा पुनि साझ आई।
क्या काम तूने करि लीन्ह भाई॥
जजाल माही प्रिय आयु खोई।
कीन्हा इकट्ठा नहिं पुण्य कोई॥

(६)

भाई भतीजे सुत वित्त दारा।
झूठा सभी है जग का पसारा॥
चीजे यहाँ की रहती यहाँ ही।
ना काम देवे यम लोक माही॥

(७)

साम्राज्य पाने जग माहि आया।
थोथी प्रशसा सुनि के लुभाया॥
साम्राज्य की खोज नही करे है।
अन्धा हुआ खावत ठोकरें हैं॥

(८)

मिथ्या तमाशा अब त्याग दे रे।
दे खोल आखे निरख आत्म ले रे॥
तल्लीन होजा सुख सिधु माँही।
कर्तव्य भोला! कुछ अन्य नाँही॥

व्यापार

(१)

ले पुण्य पूंजी जग जीव आया ।
व्यापार से द्रव्य करे सवाया ॥
पाले कुटुम्बी सुत दार भ्राता ।
है मूल पूंजी पहली गंवाता ॥

(२)

सार का माल भरा करे है ।
खा जाय है दीमक या सड़े है ॥
व्यापार ऐसा करि जीव प्यारे ।
हो जाय दूना धन चौगुना रे ॥

(३)

जो माल खोटा भरता रहेगा ।
टोटा सदा ही पड़ता रहेगा ॥
लाया हुआ भी धन जायगा रे ।
व्यापार ऐसा तज चेत जा रे ॥

(४)

राजा धनी भी जग नेहकारी ।
देखेऋणी है अति ही दुःखारी ॥
नाता न टूटे ऋण ना चुके है ।
ना जन्म छूटे भय ना छुटे है ॥

(५)

निर्मलमती से मन शोध ले रे।
वो ज्ञान का बीज अनूप दे रे ।।
सत्संग को दे जल सीच ले रे।
वैराग्य से नित्य रखा उसे रे ।।

(६)

पा काल ज्ञानाकुर वृक्ष होवे।
तू वृक्ष नीचे सुख नीद सोवे ।।
चारो दिशा मे भर जायगा रे।
ब्रह्मॉड से भी बढ जायगा रे ।।

(७)

था पाच या सात कुटुम्ब छोटा।
ब्रह्माड हो जाय कुटुम्ब मोटा ।।
भण्डार पूरा धन धान्य पूरा।
ऐश्वर्य हो अक्षय राज्य पूरा ।।

(८)

भाला ! पुराना धन जो बढाता।
हो सेठ पूरा सुख शान्ति पाता ।।
जो दूसरो को धन दान देता।
है आप सा सेठ बनाय लेता ।।

उद्धार ।

(१)

भूला स्वयं को जग सत्य भासा ।
लागी महा व्याधि क्षुधा पिपासा ॥
कामांध जो दीन दुःखी हुआ हो ।
उद्धार कैसे उस जीव का हो ॥

(२)

अज्ञान दारू जिसको चढ़ी हो ।
कैसे उसे जांच भली बुरी हो ॥
जो भ्रान्त होवे, नहि भ्राति जाने ।
उद्धार कैसे बिन सीख मानें ॥

(३)

जो कीट विष्टा, मल मे रहे हैं ।
ना पुष्प की बांस रूचे उसे है ॥
जो रोग में ही रत मानता हो ।
उद्धार कैसे उस मूढ़ का हो ॥

(४)

जो आज खाया फिर कल्ल खाया ।
जिह्वा जलाई मुख भी जलाया ॥
तो भी उसी में मन दौडता हो ।
उद्धार कैसे उस मूर्ख का हो ॥

(५)

जन्मे मरे उर्ध्व चढे गिरे है।
नाली तलो में गिरता फिरे है॥
जो चक्र पे मूढ चढा हुआ हो।
उद्धार कैसे उस का भला हो॥

(६)

ना पूर्व का पुण्य जगे जहा लौं।
संसार निस्सार न हो तहां लौं।
ससार के भोग न रोग भासे।
उद्धार होवे तब लौ कहाँ से॥

(७)

आदेश आता गुरू शास्त्र से है।
अज्ञान जाता पुरुषार्थ से है॥
विश्वास होवे गुरू शास्त्र माही।
उद्धार में है फिर देर नाही॥

(८)

भोला ! गुरू ईश्वर की कृपा हो।
अभ्यास वैराग्य प्रपूर्णता हो॥
ज्यो देह को वोध निजात्म का हो।
उद्धार त्यो ही इस जीव का हो॥

महाभारत युद्ध ।

(१)

हे जीव ! क्यों तू जग मांहि आया ।
भोगार्थ नाहिं नर देह पाया ॥
स्वाराज्य तेरा छल से छिना है ।
लेने उसी को नर तू बना है ॥

(२)

कामादि से युद्ध किये सरेगा ।
खोया हुआ राज्य तेरा मिलेगा ॥
कामादि के जो वध से डरा तू ।
श्री कृष्ण जैसा गुरु खोज ले तू ॥

(३)

कर्तव्य तेरा रण जीतना है ।
क्यों मोह से कायर तू बना है ॥
तू शुद्ध चैतन्य महा बली है ।
दौर्बल्यता, योग तुझे नहीं है ॥

(४)

भीष्मादि जैसे बल वीर्य वाले ।
कामादि नाही धृति शौर्य वाले ॥
अज्ञान के वे पुतले दिखैया ।
ले शब्द वेधी शर मार भैया ॥

(५)

कर्त्तव्य से जो नर जी चुराता।
ना स्वप्न में भी सुख शांति पाता॥
ना कर्म बाधे कर कर्म नाना।
आसक्ति किंचित् मन में न लाना॥

(६)

है पूर्व के पुण्य हुए सहाई।
है जीव तूने रण भूमि पाई॥
जी तोड के तू कर युद्ध शूरा।
स्वराज्य ले के बन भूप पूरा॥

(७)

सत्संग पाया नर जन्म पाया।
है तू विवेकी कुल श्रेष्ठ जाया॥
क्यों कूकता है कर युद्ध प्यारे।
है श्रेय जीते अरू प्रेय हारे॥

(८)

जो जीत जावे पद नित्य पावे॥
जो हार भी हो, चढ स्वर्ग जावे।
कर्त्तव्य तेरा जग-जीतना है
संकल्प भोला! यह आदि का है॥

आत्म प्राप्ति

(१)

वेदान्त वर्षासुख शान्ति कर्त्री ।
पापौघ छैनी भव ताप हर्त्री ॥
होती सदा गर्जन भो रहे हैं ।
तो भी उसे ना बहरा सुनें है ॥

(२)

त्वक् स्पर्श से ही कर शान्त देती ।
वेदान्त वाणी हर दुःख लेती ॥
शोकाग्नि से त्वक् जिसकी जाली है ।
छूता नही सो हित वाक्य भी है ।

(३)

संसार है मोहक दुःख दाता ।
संसारियो को नित ही रुलाता ॥
वेदान्त सिन्धु, सुख को दिखाता ।
ना आंख फूटा पर देख पाता ॥

(४)

जो स्वाद की कीचड़ मे फंसा है ।
खाली करे पेट भरे सदा है ॥
आत्मा रसों का रस है निराला ।
ना स्वाद ले है, नर भ्रान्ति वाला ॥

(५)

गन्दी हवा मे मर जो रहे हैं ।
गन्दी हवा ही जिसको रुचे है ।
सो सूघ सक्ता शुचि गन्ध नाही ।
आत्मा कहाँ जो श्रुति अंज नाही ॥

(६)

ज्यो गाय छूटी रहिया चरे है ।
जो देखता बाहर ही फिरे है ॥
वेदान्त का मर्म न जान सकता ।
न तत्व प्रत्येक पहिचान सकता ॥

(७)

स्वाधीन होवे मन इन्द्रिया भी ।
ना भोग मे राग रहे जरा भी ॥
वैराग्य आवे हट राग जावे ।
सच्चा मुमुक्षु तब ही कहावे ॥

(८)

निर्मल होती जब भोग इच्छा ।
उत्पन्न भला तब ही मुमुक्षा ॥
तीनो कृपा का बल पाय जोई ।
हो धोर योगी कृत् कृत्य सोई ॥

आत्म मेरा वह ही नहीं है ।

(१)

को देव ऐसा मम देह में है ।
जाका उजाला सब विश्व में है ॥
देखे सभी दीखता ना कही है ।
क्या आत्म मेरा वह ही नहीं है ॥

(२)

जो एक चेष्टा बहु से कराता ।
अद्वैत भी द्वैत जगत् दिखाता ॥
जो एक है और अनेक भी है ।
क्या आत्म मेरा वह ही नही है ॥

(३)

अज्ञान जाका जग है बनाता ।
है ज्ञान जाका जग को मिटाता ॥
माया न जामे अणु मात्र भी है ।
क्या आत्म मेरा वह ही नही है ॥

(४)

सर्वत्र जो है परिपूर्ण ज्योतिः ।
साक्षी सभी का स्थिर शुद्ध ज्योतिः ।
कूटस्थ भूमा ध्रुव एक ही है ।
क्या आत्म मेरा वह ही नहीं है ॥

(५)

ना सूर्य को मेघ कभी ढके है।
द्रष्टा न देखे फिर भी उसे है ॥
भासे छुपा सा न छुपे कभी है।
क्या आत्म मेरा वह ही नही है ॥

(६)

आये गये को स्थिर जान सकता।
जो चालता ना पहचान सकता ॥
उत्पत्ति जामि लय भासती है।
क्या आत्म मेरा वह ही नही है ॥

(७)

हैं वस्तुत दीपक का उजारा।
कीन्हा उसी चिमनी पसारा ॥
जो दीप जैसा चिमनी नही है।
क्या आत्म मेरा वह ही नही है ॥

(८)

आत्म अनात्मा पहिचान जावे।
भोला !अविद्या फिर ना सतावे ॥
अज्ञान मे नाच नचावती है।
विज्ञान देखता भग जावती है ॥

पश्चात्ताप ।

(१)

क्यों व्यर्थ मैने नर जन्म पाया ।
क्यों बोझ ढोने जग माँहि आया ।
प्रारब्ध मे था यदि भार ढोना ।
तो चाहिये था खर बैल होना ॥

(२)

मैने किया क्या नर देह पाके ।
भोगा किया भोग दिखा छुपा के ॥
आयुष वृथा भागन मैं बिताई ।
नि.श्रेय मे बुद्धि नाही लगाई ॥

(३)

था 'मै' जगत् मे जिस हेतु आया ।
सो मै अभी लो नहि जान पाया ॥
जो जो किया मैं श्रम ही उठाया ।
पानी मथे घी कब हाथ आया ॥

(४)

टोटे नफे को सब जानते हैं ।
पक्षी, पशु भी पहिचानते है ॥
बुद्धिमान सारी कर वे रहे हैं ।
प्रारब्ध पूरा अपना करें है ॥

(५)

होके मुमुक्षु नहिं आत्म चीन्हा ।
वैराग्य माँही नहिं चित दीन्हा ॥
कैसे मुमुक्षु बन वो सके था ।
जो देखके साधक को हंसे था ॥

(६)

ना दान दीन्हा नहिं धर्म कीन्हा ।
लोभी घमडी कब दान दीन्हा ॥
मैं दान देना जब चाहता था ।
पैसे तभी आ सुत मागता था ॥

(७)

ना सिद्ध कीन्हा पद मोक्ष 'मैने' ।
ना योग जाना नहि साख्य 'मैने' ॥
ना स्वर्ग के योग्य क्रिया करी 'मै' ।
हा चित दीन्हा युवती मरी 'मै' ॥

(८)

क्या जायगा निष्फल-जन्म मेरा ।
या, जा करूगा गुरु द्वार डेरा ।
रक्षा करो हे गुरु मुक्ति दाता ।
मै दीन भोला ! तुम दीन त्राता ॥

क्यों तू जग मांहि जाया ?

(१)

ना दान दींना, नहिं ध्यान कीन्हा ।
संसार चक्का विच शीश दीन्हा ॥
ना श्रेय कीन्हा अपना पराया ।
रे मूढ़ ! क्यों तू जग माहि जाया ॥

(२)

काया फुलाना पुरुषार्थ जाने ।
या बाल बच्चों रत्न मोद माने ॥
झूंठी बड़ाई यश मे भुलाया ।
रे मूढ़ ! क्यों तू जग माँहि जाया ॥

(३)

लोभी महा लोलुप हो रहा है।
क्रोधाग्नि मांहि जलता सदा हैं ॥
मै और मेरा तम घोर छाया ।
रे मूढ़ तू क्यों जग माँहि जाया ॥

(४)

आया कहा से चलना कहा है ।
लेना किसे क्या तजना यहाँ है ॥
है कौन तू आप पता न पाया ।
रे मूढ़ ! क्यों तू जग मांहि जाया ॥

(५)

थे भोग पाचों जन्म यदि भोगना ही ।
क्यो जन्म लेता नर देह माही ॥
कीटादि होता नर क्यों बनाया ।
रे मूढ ! क्यो तू जग माहि जाया ।

(६)

था पाप खोने जग माहि आया ।
ना पाप खोये, अघ ही बढाया ॥
ले काच लीन्हा मणि को गवाया ।
रे मूढ क्यो तू जग माहि जाया ॥

(७)

रागादि कीन्हा शुभ कर्म छोडा ।
ना ईश माही मन लेश जोडा ॥
ऐश्वर्य चाहा धन मे भुलाया ।
रे मूढ ! क्यो तू जग माहि जाया ।

(८)

जा चेत भोले ! तज मूढता दे ।
विश्वेश माही मन को लगा दे ॥
कल्याण होवे तज तुच्छ माया ।
आत्मज्ञ ही पण्डित है कहाया ॥

वृक्ष

(१)

रे वृक्ष ! तेरे गुण क्या गिनाऊँ ।
वर्षों लिखे भी नहि अन्त पाऊँ ॥
दानी महा, याचकता न भावे ।
पक्षीन पोषे, सुख से सुलावे ॥

(२)

दे फूल पत्ते, फल, काष्ठ, छाँई ।
तो भी जरा भी अभिमान नाही ॥
आयुष्य माँही उपकार करता ।
जीते मरो का हितकार भर्ता ॥

(३)

छाया घनी आ तपसी बसे है ।
भक्ति करें है, तप आचरे हैं ॥
तानी हवा शीतल है बनता ।
तप्ते हुओ को तप है मिटाता ॥

(४)

ज्ञानी सभी देह क्रिया करे है ।
निर्लेप तो भी सबसे रहे है ॥
हे वृक्ष ! तू भी करता वही है ।
क्या सन्त ज्ञानी यह सीख दी है ।

(५)

है शान्त त्यागी ! पुनिदात भी है ।
शाखादि नाना, जड एक ही है ॥
जो ब्रह्म के लक्षण वेद गाते ।
हे वृक्ष ! वे ही तुझ में दिखाते ॥

(६)

तूने नही शास्त्र कभी पढा है ।
शास्त्रानुसारी फिर भी सदा है ॥
ज्ञानी, अमानी अवधूत जैसा ।
गम्भीर तू निश्चल, धीर तैसा ॥

(७)

रे वृक्ष ! तेरे गुण प्राप्त जाको ।
मैं मानता हू, भगवान ताको ॥
सो धन्य प्राणी जग मे अनूठा ।
जीता हुआ ही भव बन्ध छूटा ॥

(८)

तेरे गुणो को नर जो विचारे ।
एकाग्र हो के मन माँहि धारे ॥
ससार से निश्चय पार जावे ।
भोला ! वो निष्कटक, राज्य पावे ॥

अज्ञान निद्रा ।

(१)

क्यों मूढ़ ! सोता, नहिं जागता क्यों ।
अज्ञान निद्रा नहि, त्यागता क्यों ॥
संसार सारा मरता लखे है ।
आसक्ति तो भी तनु में रखे है ॥

(२)

संसार, ससार पदार्थ चिन्ता ।
दे छोड़ होजा जग से निश्चिन्ता ॥
व्यक्तित्व से भोगत कष्ट सारे ।
व्यक्तित्व त्यागे नहि कष्ट प्यारे ॥

(३)

है तू असंगी पर संग माने ।
भंगी हुआ है, निज को न जाने ॥
आया यहां देखन तू तमाशा ।
जन्मे मरे होवत है हिरासा ।

(४)

चाले जगत् निश्चल तू खड़ा है ।
होके जगत् का भ्रम में पड़ा है ॥
अध्यक्ष होके पुतली भया है ।
गावे, नचे, ज्ञान गुमा दिया है ।

(५)

है दृश्य दीखे सब लय हो जावे ।
द्रष्टा न तू जावत है न आवे ॥
ना भेद की गंध यहाँ कहीं है ।
मैं तू नहीं है दुःख भी नहीं है ॥

(६)

काया कभी भी थिर ना रहे है ।
साठो घडी ही बदला करे है ॥
ना साथ तेरे यह देह जावे ।
क्यो देह माहीं ममता बढावे ॥

(७)

विक्राल मृत्यु शिर पर डटा है ।
खा जाय कैसे कब क्या पता है ॥
खाया हुआ ही क्षण मे धरा है ।
तैयार होजा अब देर है क्या ॥

(८)

संसार आपत्ति भोला ! भरा है ।
जो जानता पण्डित सो खरा है ॥
अज्ञान निद्रा तजता वही है ।
ब्रह्मात्म माँही टिकता वही है ॥

वेदान्त डोंडी।

(१)

वेदान्त शोधा स्वस्वरूप चीन्हा।
कामादि जीते सम मृत्यु, जीना॥
है शान्त सो ही सबसे सुखी है।
वेदान्त डोडी कहती यही है॥

(२)

ब्रह्मांड सारा घर है बनाया।
निःशकता आसन है जमाया॥
तत्वज्ञ सो ही, यति भी वही है।
वेदान्त डोंडी कहती यही है॥

(३)

संसार नाँही दु.ख लेश नाँही।
हो दुःख कैसे सुख सिंधु मांही॥
अज्ञान स्वप्ना तज शीघ्र दीजे।
वेदान्त डोंडी सुन मित्र लीजे।

(४)

है चाह खोटी जग में घुमाती।
तृष्णा बढ़ाती सबको रुलाती॥
ब्रह्मादि मिथ्या पद त्यागियेगा।
वेदान्त डोडी सुनि लीजियेगा॥

(५)

धर्मादि कोई नहिं आत्म माही
ध्यानादि होते सब अन्य माही ॥
विज्ञान या ज्ञान कहा न जावे ।
वेदान्त डोडी हमको सुनावे ॥

(६)

माया मरी का सब है पसारा ।
है ब्रह्म आत्मा सम सर्व प्यारा ॥
सो ब्रह्म न्यारा तुमसे नही है ।
वेदान्त डोडी कहती यही है ॥

(७)

क्या चाहता है किस खोज मे है ।
तू साक्ष्य साक्षी सब विश्व मे है ॥
ना मोक्ष, ना बन्ध, ना विश्व ही है ।
वेदान्त डोडी कहती यही है ॥

(८)

है मुक्त भोला ! बन्धन मानता तू ।
अन्धा बना क्यो वन सूझता तू ॥
सच्चित् तुही है सुखसिन्धु भी है ।
वेदान्त डोडी कहती यही है ॥

देह के दोष ।

(१)

जो वस्तुत: शोभन देह होता ।
कोई कभी ना मलता न धोता ॥
धोवे मले है सजते इसे है ॥
वस्त्रादि से दोषन कू ढकें है ।

(२)

दुर्गन्ध वाला घर व्याधियो का ॥
जीता मरा भोजन हिसको का ॥
जो अन्त मे ईंधन आग का है ।
तो देह में शोभन वस्तु क्या है ॥

(३)

या देह मे काल सदा बसे है ।
होता हमेशा झगड़ा रहे है ॥
एकाध ही भूत करे दु:खारी ।
हों पाँच तो क्यो कर हों सुखारी ?

(४)

है गर्भवासा दृढ़ जेलखाना ।
वर्षो रहे बालक है अयाना ॥
पूरी जहाँ पे परतन्त्रता है ॥
बालापना सो किस काम का है ?

(५)

अन्धा करे 'यौवन', सूझतो को।
देता बना पागल पण्डितो को॥
पापौघ सारे उपजे जहां से।
ऐसी जवानी सुख दे कहा से॥

(६)

है गाल बैठे मुख पोपला है।
हड्डी गली है तन खोखला है।
देखे सुने नाहि चला न जावे।
सो वृद्ध 'काया' किसको सुहावे!

(७)

लागै सदा ही भय मृत्यु से है।
इच्छा बिना ही मरना पड़े है॥
ऊंचा गया तो गिरता वहाँ से।
है 'दुःख नीचे' सुख हो कहां से?

(८)

जन्मा करे देह मरा करे है।
पाता रहे दुःख डरा करे है॥
वैराग्य भोला! कर देह से रे।
विश्वेश माहि मन जोड दे रे॥

मन वश करने के सरल उपाय।

(१)

जो चित्त एकाग्र न हो प्यारे।
तो वस्तु प्यारो मन में बसा रे॥
ध्या तू ! उसे ही मत अन्य ध्यावे॥
एकाग्र हो चित्त कही न जावे॥

(२)

संसार स्वपना सम जान प्यारे।
सोता हुआ सा कर कर्म सारे॥
तो शान्ति पूरी मन मांहि होगी।
हो जायगा साधक, सिद्ध, योगी॥

(३)

मैत्री सुखी से, करू ना दुःखी पे।
हो धम मैं प्रेम, दया सभी पे॥
देखे किसी के नहिं पाप जो है।
होता सुखी, स्वस्थ, सुशान्त सो है॥

(४)

अद्वैतता जो सब में निहारे।
किचित कही द्वैत नाही विचारे॥
ना राग जामे नही द्वेष ही है।
एकाग्रता का मन नित्य ही है॥

(५)

शब्दादि पांचों विष ज्यो विचारे।
ना ध्यान में भी उनको निहारे॥
तो चित्त तेरा स्थिरता लहेगा।
जामे लगावे तिसमें लगेगा॥

(६)

विश्वेश के हेतु क्रिया सभी हो।
इच्छा किसी भी फल की नही हो॥
सो चित्त जल्दी वश होई जावे।
लागे वहां ही जह तू लगावे॥

(७)

ओंकार का जाप करे सदा ही।
या नाम रामादि रटे तथा ही॥
थोडे दिनो मे मन शान्ति पावे।
एकाग्र होवे रुक तात ! जावे॥

(८)

ओंकार का अर्थ सदा विचारे।
सर्वत्र ही ब्रह्म सदा निहारे॥
तो चित्त भोला ! सम शान्त होवे।
हो सिद्ध योगी सुख नींद सोवे॥

दिवाली प्रिय पूजियेगा ।

(१)

वर्षों दिवाली करते रहे हो

तो भी अन्धेर घुप में पडे हो ॥

माया अन्धेर अब त्यागियेगा ।

प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा ॥

(२)

पूजा अनात्मा नहिं आत्म पूजा ।

पूजा करे 'हो' नित भूत दूजा ॥

ना दूसरे से सुख पाईयेगा ।

प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा ॥

(३)

क्या सूर्य को धूप छुपा सके है ।

क्या सिन्धु को तरग दबा सके है ॥

ना झूठ से सत्य छिपाइयेगा ।

प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा ॥

(४)

द्रष्टा तथा दृश्य जुदे जुदे है ।

अज्ञान से भासते एक से हैं ॥

अज्ञान की ऐनक तोडियेगा ।

प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा ॥

(५)

बाले दिये बाह्य किया उजेरा।

फैला हुआ है घर में अंधेरा॥

अन्धेर ऐसा मत कीजियेगा।

प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा॥

(६)

'योगाग झाडू' धर चित्त झाडो।

विक्षेप कूडा, 'सब झाड काढा॥

अभ्यास पोता फिर फेरियेगा।

प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा॥

(७)

प्रज्ञा मिला प्राणन बत्ती घालो।

वैराग्य घी दीपक ज्ञान बालो॥

जो वस्तु जैसी तस देखियेगा।

प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा॥

(८)

ऐसी दिवाली श्रुति सन्त गाई।

अत्रेय योगी करके दिखाई॥

भोला कहे मित्र न चूकियेगा।

प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा॥

सत्संग पीयूष ।

(१)

सत्संग पीयूष पिया जिन्होंने ।
कैवल्य साम्राज्य लिया तिन्होंने ॥
सत्संग में है यदि प्रीति तेरी ।
तो मुक्ति में है अब नांहि-देरी ॥

(२)

हैंगे घने साधन मोक्ष के रे ।
सत्संग है उत्तम सब से रे ॥
होंं सर्व हो साधन सिद्ध याये ।
इच्छा सभी होय निवृत्त या से ॥

(३)

जो सर्वदा ही हरि पाद ध्यावे ।
व्यापार दूजा न करे करावे ॥
तत्त्वज्ञ, योगो, सम दर्शी, ज्ञानी ।
है सेव्य वे सन्त निराभिमानी ॥

(४)

जो दर्शनो से अघपुञ्ज धोते ।
जो वाक्य से सशय सर्व खोते ॥
श्रद्धा बढाते तब मोक्ष में रे ।
वे सन्त ही सेवन योग्य है रे ॥

(५)

तात्पर्य के लिंग छओ बताते ।
तात्पर्य का निर्णय हैं कराते ।।
सामान्यता और विशेषता से ।
शास्त्रार्थ खोले परिपूर्णता से ।।

(६)

काटै विरोधी मत वेद के जो ।
कैवल्य का मार्ग दिखाय हैं जो ।।
जो मेट देते मत भेद सारे ।
वे सन्त है सेवन योग्य प्यारे ।।

(७)

जो पूर्व औ उत्तर पक्ष भाषै ।
संदेह कोई नहिं शेष राखै ।।
जो तार देते भव-सिंधु से रे ।
मल्लाह वे सेवन योग्य है रे ।।

(८)

भोला ! उन्ही से कर प्रश्न जाके ।
माथा झुका के मन को मिला के ।
अज्ञान तेरा हर शीघ्र लेंगे ।
सर्वत्र ही ईश दिखाय देंगे ।।

पृथ्वी का गीत ।

(१)

राजे करें राजन पे चढ़ाई ।
पृथ्वी हँसे है लखि मूर्खताई ॥
है ये खिलौने यमराज के हा ।
तो भी लड़ें है मम हेतु ये हा ॥

(२)

है लोभ बैरी हर बुद्धि लेता ।
दे मीच आँखे करि अंध देता ॥
है देह जैसे मृत कुम्भ कच्चा ।
जाने उसे है नर मूढ़ सच्चा ॥

(३)

कामादि शत्रु जब जीत लेंगे ।
स्वाधीन पीछे पृथ्वी करेंगे ॥
ऐसा विचारे नर मूड जो है ।
देखें नही मृत्यु समीप वे है ॥

(४)

कामादि जीते महि राज्य पाया ।
तो क्या हुआ मृत्यु नहीं हराया ॥
कामादि जीतें पद विष्णु पावे ।
वे धीर ही पंडित हैं कहावे ॥

(५)

आये घने ही मनु आदि राजा।
सारे हुए वे यमराज खाजा ॥
छोड़ा यहाँ ही पृथु आदि जा कूँ।
जीता चहे है नर मूढ़ ता कूँ ॥

(६)

मेरे लिये मूढ करें लडाई।
चाचा, भतीजे, पितु, पुत्र, भाई ॥
है राज्य माहि ममता जिन्हो को।
आखे हुई है धु धली तिन्हो की ॥

(७)

है भूमि मेरी नहि अन्य की है।
ऐसा कहै सो मतिमन्द ही है ॥
मेरी ही मेरी करते रहे है।
ले साथ कोई न मुझे गए हैं ॥

(८)

गाथा मरो की इतिहास गावे।
वैराग्य कीजे यह ही सिखावे ॥
भोला! यहाँ पे मन ना लगारे।
भूमेश के पावन गीत गारे ॥

ज्ञान छाता।

(१)

वर्षाति, शीत, गरमी तिहु ताप हर्ता।
नेत्रादि इन्द्रियन कूं स्थिर कर्ता ॥
संसार धूलि करि दूर विवेक दाता।
तेरी हमेशा जय हो जय ज्ञान छाता

(२)

धारे तुझे चतुर जो नहिं दुःख पाता।
आनन्द पूर्ण जल में दिन रात नहाता ॥
दो लोक माहि सुख शान्ति सुकीर्ति पाता।
तेरी हमेश जय हो, जय ज्ञान छाता ॥

(३)

ज्यों आठ तान बल से, तन जाय छाता।
विस्तार से खुलत या कम होय जाता ॥
पुर्यष्टि का मरण, जीवन तू बताता।
तेरी हमेश जय हो, जय ज्ञान छाता ॥

(४)

रक्षा करे रिपुन से, भय तू भगाता।
मोहादि मार सब ही, सुख से सुलाता ॥
मिथ्या बता जगत् रोवत कूं हंसाता।
तेरी हमेष जय हो, जय ज्ञान छात ॥

(५)

योधा लड़े कवच कूँ तनु माहि धारे।
रक्षा करे स्व तनु को, निज शत्रु मारे॥
कीन्हा तुझे कवच जे, नहिं हारते वे।
माया गढो सहित, सैन्य विदारते वे॥

(६)

धारे तुझे न धन का कुछ खर्च होई।
ओझा न होय तन या, मन माहिं कोई॥
वैराग्य भूख लगती, भव रोग जाता।
तेरी हमेश जय हो, जय ज्ञान दाता॥

(७)

संसार ताप, भय, शोक सभी छुडाता।
ऐश्वर्य वान करता, यश कीर्ति दाता॥
तेरे सिवा जगत् मे, नहिं अन्य त्राता।
तेरी हमेश जय हो, जय ज्ञान दाता॥

(८)

है धन्य पुरुष भोला ! तव छाह आया।
है पुण्य देश जह है, तव पूर्ण छाया॥
है धन्य शिष्य गुरु का, तुझको लगाता।
तेरी हमेश जय हो, जय ज्ञान दाता॥

यह विचार कभी किया ना।

(१)

ज्ञानी स्वय बनत तू, सबको सिखाता।
निन्दा करे गुणिन की, गुण है छिपाता ॥
है ठौर-ठौर भ्रमता, धन में लुभाना।
मै कौन हूं, यह विचार कभी किया ना॥

(२)

खोजे पदार्थ जग के, मणि भी बनाया।
ले कार्य वायु जल से, नभ घूम छाया॥
तेजादि कीन्ह बश में, मन मोद माना।
मैं कौन हूँ, यह विचार कभी किया ना॥

(३)

ऊँचे बना महल मित्रन को बुलाया।
खाने खिलाय बहु भांति उन्हें रिझाया॥
ऐश्वर्य, मान, मद मे फिरता दिवाना।
मै कौन हूं, यह विचार कभी कीया ना।

(४)

आभूषणों वसन से तन है सजाया।
भोगा करे विषय गायन, नृत्य भाया॥
ऐश्वर्य, नाम, धन चाहत है कमाना।
मैं कौन हूं, यह विचार कभी कीया ना॥

(५)

होगा कभी मरण ना, मन मे वसी है।
हो स्वार्थ सिद्ध जिसमे, करता वही है॥
हू मान्य विश्व भर मे, असकार्य ठाना।
मै कौन हूँ, यह विचार कभी किया ना॥

(६)

है सन्त साधु जन को, ठग तू वताता।
विद्याभिमान करता, वन धूत जाता॥
ससार न्याय करता, बनता सयाना।
मैं कौन हू, यह विचार कभी किया ना॥

(७)

हाथी तुरग चढता उड़ता हवा मे।
सैरे करे अखिल यूरुप अमरीका में॥
चीजे नवीन नित ही घड लेय नाना।
मै कौन हू, यह विचार कभी किया ना॥

(८)

मापी समस्त पृथ्वी नभ ढूढ डाला।
भोला! चढा गिरिन सागर खूद डाला॥
माया कभी ना हटती न स्वरुप जाना।
चैतन्य हूँ, कि जड हू, इतना पता ना॥

आत्म स्वरूप ।

(१)

बहु रूप बने, बहु नाम धरे।
बहु बार जिये, बहु बार मरे ॥
बहु लोक फिरे, बहु भोग लहै ।
रस एक हि आत्म स्वरूप रहै ॥

(२)

मन धर्म सुखादिक द्वन्द्व यथा ।
घटना बढना तनु धर्म तथा ॥
नर नारि पना जामदार पना ।
रस एक हि आत्म स्वरूप बना ॥

(३)

सुर दैत्य, मनुष्य, ग्रहस्थ बनी ।
भल रूप कूरूप, दरिद्र धनी ॥
रत योग कभी, रत भोग कदा ।
रस एक हि आत्म स्वरूप सदा ॥

(४)

शव भूमि भले शिव मन्दिर हो ।
नदी, सागर, या गिरि, कन्दर हो ॥
रज, कंचन, वृक्ष, लता, सुखदा ।
रस एक हि आत्म स्वरूप सदा ॥

(५)

बनता मिटता यह दृश्य जगत् ।
क्षण नश्वर देखत मात्र असत् ॥
उपजे जिसमे लय होवत है ।
रस एक हि आत्म स्वरूप रहै ॥

(६)

दिन रात्त घने रवि चन्द्र भये ।
युग कल्प हजारन बीत गये ॥
अविकार विकार न पावत है ।
रस एक हि आत्म स्वरूप रहै ॥

(७)

यम ध्यान समाधि सु सयम मे ।
लय उत्पत्ति माहि, बलाबल मे ॥
सबका अपना नित अच्युत है ।
रस एक हि आत्म स्वरूप रहै ॥

(८)

सब देखत सर्व दिखावत है ।
नहि देखन मे पर आवत है ॥
जिस शक्ति लई जग चालत है ।
रस एक हि भोले स्वरूप रहै ॥

शिष्य प्रार्थना।

(१)

गुरु मै बहु कष्ट उठाय रहा।
बहु भांति दरिद्र सताय रहा।
रह हाड़ गये रह चाम गया
गुरु देव ! करो अब आप दया ॥

(२)

तुम से नहि मैं कुछ मांगत हू।
कर जोड़ता हूं पग जागत हूँ ॥
मम कोष मुझे तुम देओ बता।
जिहि भाति मिले प्रभु देओ जता ॥

(३)

मम है धन सो बतला मुझको।
कुछ हानि नही श्रम भी तुझको ॥
उपकार करो दुःख दीन हरो।
प्रभु वाक्य सुनाय धनाढ्य करो ॥

(४)

बहु लोग धनी बतलाय मुझे।
निज बातन मे फुसलाय मुझे ॥
चिकनी चुपडी कहि मूंड़ लिया।
धन छीन लिया कर दीन दिया।

(५)

बहु धूर्त रहे ठगते अब लौ ।
नहि ठाकुर आप मिले जब लौ ॥
अब ठाकुर केवल जान तुम्हे ।
धन याचन दो प्रभु ! दान हमे ॥

(६)

परमेश्वर विश्व बनावत है ।
जन अर्थिन भोग भुगावत है ॥
जप से तप से नर ध्यावत है ।
पदवी ध्रुव की तव पावत है ॥

(७)

तुम हो धन लोक अलौक परम् ।
परमानन्द नित्य अनादि चिरम् ॥
परिपूर्ण अखण्ड बतावत हो ।
धन देय धनेश बनावत हो ॥

(८)

नहि केवल भोला ! धनेश करें ।
बहु विश्व अधीश परेश करे ॥
अपरोक्त खडे तुम हो फलदा ।
अज ईश्वर दृष्टि परोक्ष सदा ॥

रंग श्याम रंग में।

(१)

अरे अचेत! चेत जा, न जा कभी कुसंग में।
सके न त्याग संग तो, हमेश जा सुसग में॥
न द्रव्य में, न दार में न राग राख अंग में।
समस्त रग छोड, एक रङ्ग श्याम रंग में॥

(२)

'कुरोग भोग जान' सर्व भोग दूर त्याग रे।
न खान में, न पान में, न आय माहि लाग रे॥
यथा गजेन्द्र लोट-लोट न्हाय देव गंग में।
समस्त विश्व भूल, नित्य रग श्याम रग मे॥

(३)

न नृत्य में न गान में, न ताल में, न तान में।
न राग राख अश्व मे, न नाम में, न यान में॥
न पुष्प में, न माल में, न राग हो पलग में।
विसार सर्व भोग, रोग, रंग श्याम रंग में॥

(४)

न धर्म में, न अर्थ मे, न काम राख काम में।
न ऋद्धि में, न सिद्धि मे, न कीर्ति में, न नाम में॥
विरक्त भक्त मत्त नित्य कृष्ण भक्ति भग मे।
अशेष वासना मिटाय, रंग श्याम रग में॥

(५)

उच्चार राम नाम रे, वृथा न वाक्य वोल रे ।
पधार साधु सग मे, यहाँ वहा न डोल रे ॥
सुना चरित्र कृष्ण नित्य, भक्ति की उमग मे ।
न सांख्य मे, न योग माहि, रग श्याम रंग मे ॥

(६)

न भेद लेश है कही, चिदात्म एक तत्त्व है ।
न शोक है, न मोह है, सुखात्म सर्व विश्व है ॥
न भेद देख विप्र, गाय, स्वान में, कुरग मैं ।
असग निर्विकल्प नित्य, रग श्याम रग में ॥

(७)

जहा समस्त रग होय, श्वेत सो प्रसिद्ध है ।
जहां न कोई रग होय, श्याम रग सिद्ध है ॥
समस्त माहि कृष्ण देख, व्याघ्र मे भुजंग में ।
विसार सर्व रूप रग, रग श्याम रग मे ॥

(८)

अशुद्ध चित्त भ्रान्ति से, अनेक रग देखता ।
विशुद्ध चित्त सर्व माँहि, एक तत्त्व पेखता ॥
सुचित्त ! त्याग मूढता, न भूल भेद भग में ।
अपक्व रंग त्याग भोला ! रंग श्याम रग मे ॥

अवश्य हाथ आयगा ।

(१)

असन्त सग कीजिये, असत ही कहाइये ।
महन्त सन्त संग से, सुसंत होय जाइये ॥
असत्य नित्य ध्याइये, असत्य में समाइये ।
अनन्त देव पूज के, अनन्त क्या न पाइये ॥

(२)

महान ठ सेवता महान मान पाय है ।
न सोच होय है कभी, न रंज पास आय है ॥
सुखीहि प्रातः में उठे, सुखीहि रात सोय है ।
भजे सदाहि ईश जो, सुखारि क्या न होय हैं ॥

(३)

सुनीति, शास्त्र जान भूप राज को सभालता ।
स्व शत्रु सर्व जीतता, प्रजा सदैव पालता ॥
अमोघ शक्ति ईश पूज शान्ति क्या नप ायगा ।
प्रमाद आदि शत्रु जीत दूर न भगायगा ॥

(४)

मनुष्य चाकरी किये अवश्य दाम देय है ।
मजूरि के दिये बिना न कोई काम लेय है ॥
मनुष्य देय दाम तो महेश क्यो न देयगा ।
अवश्य देयगा सही न मुफ्त काम लेयगा ॥

(५)

निकाल शत्रु काम आदि, दूर फैंक दीजिये ।
निवास ईश का तहां विशुद्ध होय कीजिये ॥
न काम पास आयगा, न क्रोध ही सतायगा ।
सदा विराजमान ईश चित्त मांहि पायगा ॥

(६)

न तुच्छ भोग चाहि-चाहि, तुच्छ चित्त कीजिये ।
करे न भूप चाकरी, विचार खूब लीजिये ॥
विकार को निकार वाह्य, स्वच्छ चित्त हो जाइये ।
स्वचित माहि ईश दर्श, क्यों न आप पाईये ॥

(७)

विवेक अग्नि बाल के कुवासना जलाइये ।
विराग की लगाय फूँक, राख को उडाइये ॥
स्वयं प्रकाश दिव्य देव, दीख साफ जायगा ।
जगत् पिचाश का पता कहीं न लेश पायगा ॥

(८)

विकार जन्म लेय है, विकार ही मरा करे ।
अखण्ड निर्विकार तू, न जन्म लेय ना मरे ॥
स्वराज भोला ! आपका, अवश्य हाथ आयगा ।
न कष्ट कोई भी रहे, स्वरूप में समायगा ॥

संत संग

(१)

अनेक जन्म, पाप पुंज, संत संग धोय है।
असत्य से विराग, सत्य मांहि राग होय है॥
हजार मांहि कोय एक संग संत पाय है।
अनेक जन्म पुण्य से सुसग हाथ आय है॥

(२)

असंख्य द्रव्य, धान्य, धाम, पुत्र, पौत्र दार हो।
न शान्ति होय लेश भी, कुटुम्ब भी अपार हो॥
सिवाय संत संग के न शान्ति हाथ आय है।
वही पिलाय सत् सुधा मृषा, तृषा बुझाय है॥

(३)

फिरे हमेश काल चक्र ऊँच नीच जाय है।
विचित्र योनि मैं भ्रमाय कष्ट दे सताय है॥
बिना महंत, सन्त, संग जन्म, मृत्यु जाय ना॥
जहाँ सुखी मरे जिये, अखंड शान्ति पाय ना॥

(४)

कुमार हो, जवान होय, वृद्ध होय जाय है।
तहां-तहाँ तपा करे, अनेक दुःख पाय है॥
सुसंत संग शान्ति दे, अशान्ति कूं मिटाय है।
मिलाय नित्य ईश मांहि, नित्य ही बनाय है॥

(५)

नदी सुशुष्क होय-होय, पहाड टूट जाय है ।
धनी दरिद्र देश भी, विदेश होय जाय है ।।
मरे समस्त जन्मि-जन्मि, सन्त एक ना मरे ।
कृपा सुसन्त पाय धीर, जन्म मृत्यु से तरे ।,

(६)

सुवर्ण वृष्टि नित्य होय, रत्न पूर्ण हो मही ।
भले ही राम राज्य होय, हो विभूति सर्व ही ।।
न डाकू हो, न चोर, खोल द्वार सोय जाइये ।
न सत सग के समान, किन्तु शान्ति पाइये ।।

(७)

अथाह भी समुद्र मुक्त, होय है न ज्वारि ते ।
अडिग सूर्य चन्द्र आदि काल पाय टूटते ।।
समस्त भूत धारिणी, मही विनिष्ट होय हैं ।
जिसे मिला सुसन्त सो, कभी न नष्ट होय है ।।

(८)

न एकहू जगत्पदार्थ, जन्म नाश हीन है ।
सभी मरा जिया करे, दुखी, दरिद्र, दीन है ।।
मरे नही जिये सदा, यहाँ न लौट आय है ।
भोला ! सत संग से, अनन्त होय जाय है ।।

मैं कौन हूँ ।

(१)

असँग हूं, मै अनँग हू, मै अमरपुरी का वासी ।
जीव भाव धारण कर लीन्हा, इससे हुआ उदासी ॥
जन्म मरण से मुक्त सदा हूँ, नहिं आधि नहिं व्याधि ।
मोह नीद जब से है आयी, तबसे लगी उदासी ॥

(२)

वँध्यासुत यह जग है मिथ्या, भ्रम से देय दिखाई ।
स्वप्न समान दृश्य यह सारा, क्षण के माहि नसाई ॥
तृष्णा काली नागिन विषधर, डसकर सबको खाई ।
वह ही इससे बचे मनोहर, जो गुरु शरण मे जाई ॥

(३)

क्यों विलब करता है प्यारे, ले गुरू शरण सुहाई ;
ऋषि मुनि संत यति योगी जन, सबके ही मन भाई ॥
गुरू शरण जिस जिसने लीन्ही, मुक्ति उसी ने पाई ।
विद्या मत मत्सर में भूले, सो रौरव भटकाई ॥

(४)

घर बैठे गुरू दर्शन दीन्हे, भगवत हुए सहाई ।
सुना-सुना 'वेदान्त केशरी' ईश्वर दिया दिखाई ॥
आत्म धन जो लूट लिय, था, दश चोरो ने आई ।
सद्गुरू ने सो तुरत दिलाया दीन्हा सेठ बनाई ॥

(५)

ऐसे गुरु जो देय विसारी, उस सम अज्ञ न कोई।
पापी, दुष्ट, प्रमादी, स्वार्थी, शठ कहलावे सोई॥
गगा तट पर गुरूजी बैठे, असरण शरण सुहाई।
अब तुम लोगे शरण मनोहर, भवनाशक सुखदाई॥

(६)

भोगो प्यारे, जल्दी त्यागो, विश्व प्रीति दु खदाई।
धावो-धावो देर करो मत, आयुष बीती जाई॥
देर करोगे तो रोवोगे, कर मल-मल पछताई।
भ्राता दारा, सुत परिवारा, कोई हो न सहाई॥

(७)

प्राण अचानक देह त्याग कर, जब परलोक सिधाई।
जला अग्नि मे भस्म करेंगे, प्यारे बाधव भाई॥
आये प्यारे यहा अकेले, जाओगे इकलाई।
मोह फास झटपट से काटो, गुरु चरणन लिपटाई॥

(८)

अटल राज्य सुखमय पाओगे, शोक, मोह, भय जाई।
करो शीघ्रता देर करो ना, रहो ईश शरणाई॥
भज लो राम, रामगुण गाओ, रामरूप लवलाई।
है वेद शास्त्र का सार ये भोला ! महिमा सतन गाई

गुरु स्तुति ।

(१)

जिसके बिना न ज्ञान, ध्यान भक्ति फलती है ।
जिसके बिना न युक्ति, मुक्ति की कुछ चलती है ॥
पढे शास्त्र भी लाख, खाक पर काम न आते ।
होता नेक न बोध, शोध शोध सत पथ मर जाते ॥
पर जिसकी टुक हो कृपा, सब क्लेशो को टालती ।
महा मोह, तुम पुँज में, मखर ज्ञान कण डालती ।

(२)

सरल चित्त, गतमान, दान विद्या करते ।
'हटा मोह अज्ञान' मान मद जन का हरते ॥
प्रकटाते स्वस्वरूप, रूप तम का दिखलाके ।
बिना हेतु, 'जगहेतु' सेतु भव सिन्धु बनाके ॥
हम भी सुनते नित्य पर, हटता तब अज्ञान है ।
निश्चय श्रद्धा, गुरु कृपा बिना हुआ क्या ज्ञान है ॥

(३)

जे है शकर रूप, भूप, सब जग के सच्चे ।
जगत् ज्ञान मद मत्त, दत्त, जिन सन्मुख बच्चे ॥
निर्विकार, अक्षोभ, क्षोभ, जन का हर लेते ।
हो करके आते सदय, अभय जग को कर देते ।
यम के भी जो काल है, संसृति सागर सेतु हैं ।
हम न जानते मोह वश, प्रकटे प्रभु जग हेतु हैं ॥

(४)

नित ही भ्रम का सर्प, दर्प से सबको डसता ।
क्लीव नर पर मिटता जीव, क्लीव उठ कमर न कसता ॥
दु ख मे ही सुख जान, मान वश शरण न आता ।
नही कही भी शान्ति, भ्रान्ति मय जग मे पाता ॥
जब गुरू के शरण, रहता न लेश न क्लेश है ।
भ्रम मिटता विश्वास से, सुनकर गुरू उपदेश है ॥

(५)

जो है नित सम चित्त, वित्त भर जिनको जाने ।
जिन निज श्रद्धा अनुरूप, रूप हम जिनका माने ॥
परम ज्ञान के सिन्धु, विन्दु कर मान रहे हम ।
इससे मिटैं न पाप, ताप त्रय ताप रहे हम ॥
बस गुरू को पहिचानते, लक्ष्य तुरत मिल जायगा ।
क्षण भर के उपदेश से, सब परदा खुल जायगा ॥

(६)

आओ बस हम सभी, अभी मिल गुरू गुण गावे ।
कर श्रद्धा विश्वास शरण मे, गुरू की जावें ॥
हटै मोह अज्ञान, ज्ञान का भानु प्रकाशे ।
अन्तर तम के सुप्त, गुण निधि पूर्ण प्रकाशे ॥
मल-विक्षेप औ आवरण, गुरू कृपा पा तोड दे ।
भोला ! शुद्ध स्वरूप से, चटपट नाता तोड दे ॥

बोध, वैराग्य और उपराम ।

(१)

कहते किसको बोध, तत्त्व सम्यक् पहिचाने ।
सत् को जाने सत्य, असत् को मिथ्या जाने ॥
कैसे होवे बोध, ब्रह्म विद्या सुन लीजे ।
सुनकर कीजे मनन, ध्यान फिर सादर कीजे ॥
फल क्या होवे बोध का, आत्मा बुद्धि भिन्न हो ।
रह अन्त तक भिन्न हो, नांही कभी अभिन्न हो ॥

(२)

कहते किसे विराग, राग भोगो का तजना ।
प्राप्त होय जो भोग, उन्हे भी नाही भजना ॥
कैसे होय विराग, दोष देखे भोगन मे ।
जितने भी है भोग, रोग करते तन मन मे ॥
क्या फल होय विराग का, भोगों मांहि अदीनता ।
सदा रहे मन पीन ही, कभी न हो मन दीनता ॥

(३)

कहे किसे उपराम, जाय कैसे पहिचाना ।
मन का होय निरोध, तत्त्व मांहि टिक जाना ॥
कैसे हो उपराम, यमादिक पाँचों पीजे ।
करो धारणा ध्यान, समाधी मे मन दीजे ॥
फल क्या है उपराम का, क्षय होवे व्यवहार का ।
ब्रह्मलीन हो चित्त, कुछ कार्य न हो ससार का ॥

(४)

तत्त्व बोध है मुख्य, मोक्ष का साक्षात् दायक ।
विराग अरू उपराम, बोध के दोय सहायक ।।
तीनो होवे साथ, पुण्य यदि होवे पूरा ।
कही-कही पे कोय, पाप से रहे अधूरा ।।
पिछले दो हो सिद्ध जो, बोध एक रुक जाय है ।
तो ना होवे मुक्ति सो, उच्चलोक मे जाय है ।।

(५)

बोध होय यदि पक्क, अन्य दो नाही पकते ।
तो हो निश्चय मोक्ष दृष्ट, दुःख नाही रुकते ।।
है विराग का अन्त, तीन गुण माहि न ममता ।
पक्का जानो बोध, देह सम 'ब्रह्म अहन्ता' ।।
जैसे सोने पुरुष को, जगत् जाय सब भूल जब ।
सीमा यह उपराम की, जान लेय नर चतुर तब ।।

(६)

बोध यद्यपि है एक, भिन्न प्रारब्ध बना है ।
जैसा है प्रारब्ध प्राज्ञ वर्ते तैसा है ।।
कोई माँगे भीख, राज्य कोई है करता ।
कोई दे उपदेश, ध्यान कोई है धरता ।।
भोला ! तज सदेह दे, भेद न किंचित मान रे ।
सबमे आत्मा देख रे, आत्मा मे सब ज्ञान रे ।।

काम ।

(१)

बहु योंनिन जन्म असख्य लहे ।
तहं भोगत भोग अनेक रहे ॥
दिन ही दिन भोगत आयु गई ।
अब लो नहि चाह निवृत भई ॥

(२)

हम भोगत भोग कहे मन में ।
उलटै पर भोगत भोग हमें ।
यह भोग हमें बिनु सत्त्व करे ।
तनु तेज हरे पुनि प्राण हरे ॥

(३)

हम कूकर ज्यो वश काम फिरे ।
नित कास परायरा धर्म करे ॥
सब वृद्ध भये एक काम युवा ।
जब देखत देखत नित्य नव ॥

(५)

जय तोहि नहीं करि कोय सके ।
सब कू करि सँठ हराय सके ॥
जिन जीतन तू सव सठ सहो ।
तोहे जीतत जो नर मर्द वही ॥

(५)

मद नारि तुझे वध भस्म किया ।
पुनि व्यापक हो वरदान दिया ॥
फिर मोहित तू करि दीन उन्हे ।
तब भूल मिटावत शान्ति तिन्हे ॥

(६)

शठ काम तुझे विधि जन्म दिया ।
तिन माहि महा अपमान किया ॥
जब है अशरीर बली इतना ?
सशरीर न जान बली कितना ?

(७)

बड मन्मथ जादु भरा तुझमे ।
क्षण माहि बनावत अन्ध हमे ॥
बलबीरन कूँ बलहीन करे ।
नर कूँ युवती वश दीन करे ॥

(८)

नहि जीत, न हार तुझे जग मे ।
प्रति बन्धक तू शम के मग मै ॥
सुर, दानव ऊपर चोट करे ।
बन वासी मुनी तप भ्रष्ट करे ॥

(९)

रति नाथ ! तुही शुभ नाशक है ।
अघ पोषक, दुःख विकासक है ॥
जहं होवत तू तहं राम कहाँ ?
सुख शान्ति न आवन देत तहां ॥

(१०)

तब शक्ति महा भव कारक है ।
शुभ हारक जीवन मारक है ॥
प्रमात्म अभेद प्रबोध बिना ।
तब नाश समूल न हो मदना ॥

जय सद्गुरु देवन देव परम ।

(१)

जय हद्गुरु देवन देव वर ।
निज भक्तन रक्षण, देह धरम ॥
पर दुःख हरं सुख शान्ति करं ।
निरुपाधि, निरामय, दिव्य परम् ॥

(२)

जय काल अबांधित शान्ति मय ।
जन पोषक शोषक ताप त्रयम् ॥
भय भंजन देत परं अभयं ।
मन रजन भाविक भाव प्रियम् ॥

(३)

ममतादिक दोष नशावत है।
शम आदिक भाव सिखावत हैं ।।
जग जीवन पाप निवारत हैं।
भव सागर पार उतारत है ।।

(४)

कहु धर्म बतावत ध्यान कहीं।
कहूं भक्ति सिखावत ज्ञान कहो ।।
उपदेशत नेम अरु प्रेम तुम्हीं।
करते प्रभु योग अरुक्षेम तुम्हीं ।।

(५)

मन इन्द्रिय जाहि न जान सके।
नहिं बुद्धि जिसे पहिचान सके ।।
नहिं शब्द जहाँ पर जाय सके।
बिनु सद्गुरु कौन लखाय सके ।।

(६)

नहिं ध्यान न ध्यातृ न ध्येय जहाँ।
नहिं ज्ञातृ न ज्ञान न ज्ञेय जहा ।।
नहिं देश न काल न वस्तु तहाँ।
बिन सद्गुरु को पहुँचाय वहाँ ।।

(७)

नहिं रूप न लक्षण ही जिसका।
नहिं नाम न धाम कहीं जिसका॥
नहिं सत्य असत्य कहाय सके।
गुरुदेव हि ताहि जनाय सके॥

(८)

गुरु कीन कृपा भव त्रास गई।
मिट भूख गई छुट प्यास गई॥
नहि काम रहा नहिं कर्म रहा।
नहि मृत्यु रहा नहिं जन्म रहा॥

(९)

भग राग गया, हट द्वेष गया।
अघ चूर्ण भया, अणु पूर्ण भया॥
नहिं द्वैत रहा; सम एक भयो।
भ्रम भेद मिटा, मम तोर गया॥

(१०)

नहिं मैं नहि तू नहिं अन्य रहा।
गुरु शाश्वत आप अनन्य रहा॥
गुरु सेवत ते नर धन्य यहाँ।
तिनकूं नहि दुःख यहां न वहाँ॥

॥ समाप्तम् ॥